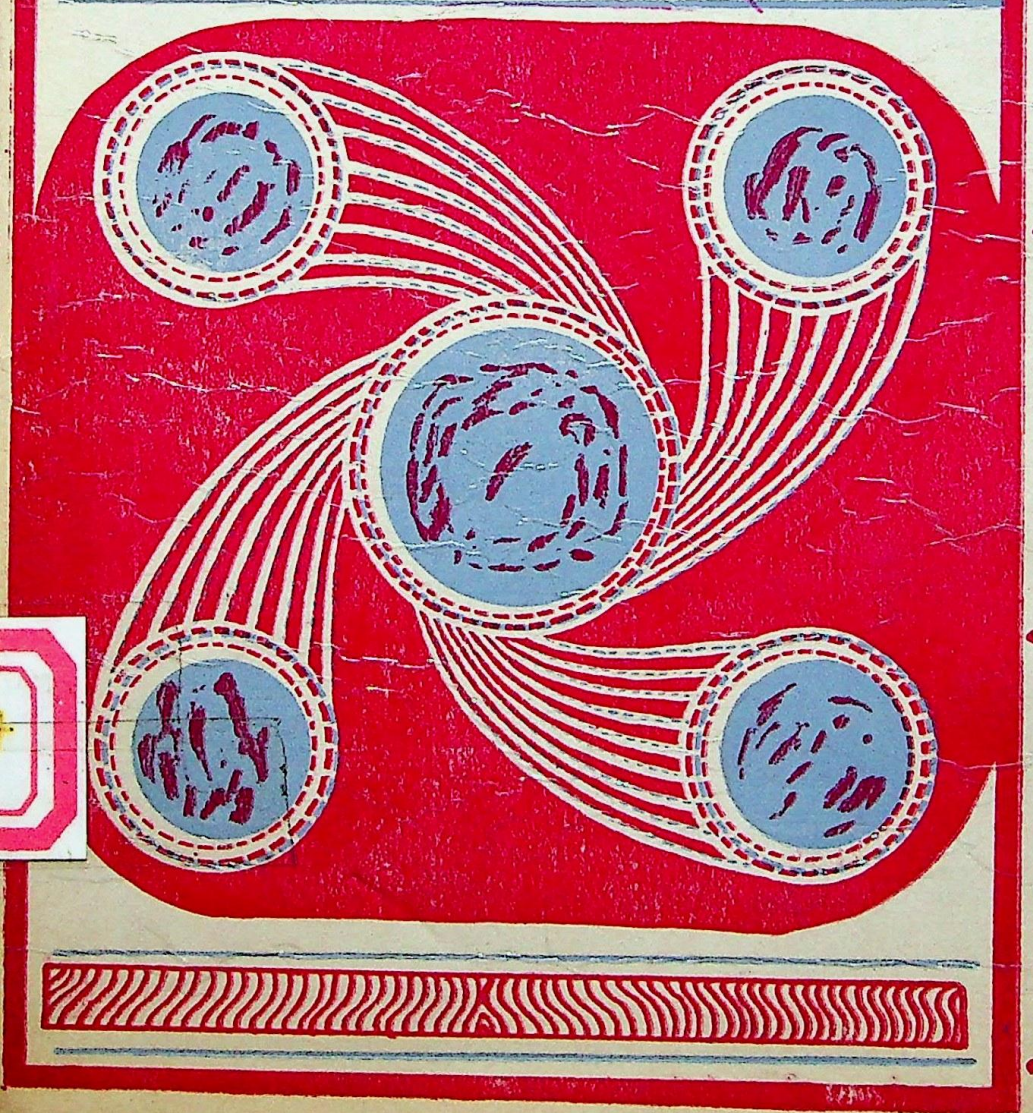
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा. विष्णु कांत वर्मा

वैदिक सृष्टि उत्पत्ति रहस्य



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

14
वर्मा-वे

181386

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक सृष्टि उत्पत्ति रहस्य

भाग २

वेद में महाविस्फोट की परिकल्पना एवं नक्षत्र ग्रह की उत्पत्ति का विज्ञान



रचयिता–

डॉ. विष्णुकान्त वर्मा

एम. एस. सी., एल एल. बी., पी एच. डी. (लखनऊ विश्वविद्यालय)

भू. पू. विभागाध्यक्ष गणित विभाग एवं प्र. प्राचार्य

शासकीय अभियांत्रिक महाविद्यालय

बिलासपुर (म. प्र.)





CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक प्रकाशन

सर्वाधिकार रचयिता द्वारा सुरक्षित

प्रथम संस्करण — महाशिवरात्रि विक्रम संवत २०४४
१६ फरवरी सन् १९८८

मूल्य — ८० रुपया

प्राप्ति स्थल — 'इन्द्रप्रस्थ सोपत रोड सरकंडा
बिलासपुर (म. प्र.)

* *

मुद्रक—
वैदिक प्रिंटिंग प्रेस
सोपत रोड सरकंडा, बिलासपुर (म. प्र.)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vedic Cosmological Secrets

Part 2

Vedic Conception of big bang and the Science of the origin of stars and planets



BY

Dr. Vishnukant Verma

M. Sc, LL B, Ph· D. (Lucknow Univ.)
Ex. Head of the dept. of Mathematics & Off. Principal
Govt Engineering College,
BILASPUR (M. P.)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

VEDIC PRAKASHAN

All rtghts reserved by the auther.

First Edition – *Published*
on Vasant Panchami
Vikram Samvat 2044
the 16th February 1988.

Available At – *'Indrapraestha'*
Sipat Road, Sarkanda
Bilaspur [M. P-]

Printers—
Vedic Printing Press
Sipat Road, Bilaspur (M. P.)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वस्त्ययन

डॉ. विष्णुकान्त वर्मा की कृति 'वैदिक सृष्टि उत्पत्ति रहस्य' उनकी लगभग दो वर्ष पूर्व प्रकाशित इसी नामधेय की रचना की सम्पूरक है। प्रथम भाग में वैदिक रसायन और नाभिकीय विज्ञान के अन्तर्गत ऋग्वैदिक एवं वैज्ञानिक पदार्थ की अवस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन तथा शक्ति संरक्षण सिद्धान्त, मूल तत्त्व का स्वरूप निर्धारण, वैदिक सोम, परमाणु एवं दृश्य जगत् के सप्तवर्गी सिद्धान्त जैसी बातों पर विचार करते समय कुछ चौंका देने वाले निष्कर्ष प्रस्तुत किये थे और साथ ही पुरुरवा, उर्वशी, वसिष्ठ, अगस्त्य और महावसु जैसे परिचित शब्दों के भीतर निहित कुछ वैज्ञानिक रहस्य-संकेतों को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया था।

प्रस्तुत ग्रन्थ में पूर्वोक्त चिन्तन को आगे बढ़ाते हुए डॉ. वर्मा ने वृत्र, इन्द्र, अग्नि, वज्र, त्वष्टा, शम्बर, हिरण्यगर्भः, भृगु, मातरिश्वन, वैश्वानर, अङ्गिरस मरुतः, सप्तसिन्धु और ऋभु जैसे महत्वपूर्ण ऋग्वैदिक नामों के वैज्ञानिक प्रतीकों के आधार पर सृष्टि के आदिकालीन महाविस्फोट, वृहदग्नि काण्ड आपः तत्त्व का विभाजन, नक्षत्र ग्रहादि की उत्पत्ति, क्षाकाशीय पिण्डों का गुरुत्वाकर्षण, काल स्थान आदि का महत्वपूर्ण विश्लेषण किया है और इन वैज्ञानिक तत्त्वों एव घटनाओं का मूल ऋग्वेद की ऋचाओं में ढूंढने का विपुल-श्रम-साध्य प्रयत्न किया है।

डॉ. वर्मा का यह प्रयत्न वेदों के देशी विदेशी भाष्यकारों के ठीक विरुद्ध इस मान्यता पर आश्रित है कि ऋचाएं परस्पर विच्छिन्न न होकर सम्बद्ध हैं। एक ऋचा की व्याख्या में अन्य ऋचायें सहायक या साधनभूत हैं। वर्मा जी के मत में ऋचाओं मेंनिहित प्रतिपाद्य भी अविच्छिन्न रूप से परस्पर सम्बद्ध हैं। अतः किसी भी ऋचा को अन्य ऋचाओं से अलग करके स्वतन्त्र रुप से उनके प्रतिपाद्य को ग्रहण करना संभव नहीं है। दूसरे ऋचाओं को ठीक समझने के लिये उनमें निहित प्रतीकों को समझना आवश्यक है क्योंकि वेद प्रतीकों द्वारा अपनी बात कहता है। जब तक हम प्रतीकों को न समझ लें उनका रहस्य नहीं समझा जा सकता है। हर गूढ़ विषय के संबंध में, चाहे वह विज्ञान हो या दर्शन, यह बात कही जा सकती है। विज्ञान प्रचलित भाषा से शब्द ग्रहण करता है किन्तु उनके प्रचलित अर्थ के स्थान पर उसे नया अर्थ प्रदान करता है। आयुर्विज्ञान, अभियांत्रिकी आकाश विज्ञान, दर्शन, साहित्य आदि ज्ञान की सभी शाखाओं में ऐसे बहुत से शब्द से ढूंढे जा सकते हैं जिनका प्रयोग सर्वथा लोक मे भिन्न अर्थ में होता है। वैदिक विज्ञान के विषय में भी यह बात उतनी ही सच है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि हम इन प्रतीकों के वास्तविक अर्थ का उद्घाटन कर सके तो पायेंगे कि ऋग्वेद में क्रमबद्ध-सृष्टि विज्ञान का निरूपण तो है ही, उन तथ्यों की भी चर्चा है जहां तक आधुनिक विज्ञान अभी नहीं पहुँच पाया हैं। डॉ. वर्मा ने इस दिशा में गम्भीर चिन्तन के द्वारा अनेक शब्दों का अन्तः साक्षात्कार करके पाया है कि अदिति तीन मौलिक तत्त्वों-मित्र, वरुण, अर्यमा-के संघात का प्रतीक है। आपः इस तत्त्वमयी की उद्वेलित अवस्था है। यही सलिल, माया या असत् है। वृहती आपः इनकी यौगिक अवस्था (plasma) है। वृत्र क्रियात्मक मूल तत्वों की चक्रीय विवर्तन वाली स्थिति (Cyclic reversible reaction) है। त्वष्टा मौलिक किरण मंडल, वज्र वृहती आपः (प्लाज्मा) के दो भागों के बीच नियोजित टक्कर, हिरण्यगर्भ वृहती आपः में हुआ अग्नि ताण्डव या वैज्ञानिक बिग बैंग उषा सृष्टिकाल नक्त प्रलय, अश्व ऊर्जा, सोम विकिरण ऊर्जा, मातरिश्वा संवेग जन्य द्रव्य मण्डल का प्रसार है। ऐसे अनेकों प्रतीक ऋग्वेद में ढूंढे जा सकते हैं।

विज्ञान के अनुसार महाविस्फोट के पश्चात् द्रव्य में जो मण्डलाकार (Spherical) प्रसार आदि काल में प्रारम्भ हुआ, वह आज भी जारी है। इसे हम गैलेक्सियों के प्रसार के रूप में जानते हैं। इस प्रसार के कारण तापमान में गिरावट आती है और कुछ काल बाद परमाणु रचना प्रारम्भ हो जाती है। ऋग्वेद इसे अर्धगर्भा स्थिति कहता है। यह परमाणु अवस्था नाभिकीय (Nuclear) और अणु (Molecular) अवस्था की मध्यगामिनी है। ऋग्वेद के अनुसार यह सप्तवर्गी अवस्था है। दर्शन में इसे तन्मात्रिक स्थिति कहते हैं। ऋग्वेद में सप्तवर्गी परमाणु अवस्था को सप्तसिन्धु कहा है। मेण्डलीफ के पारियाडिक वर्गीकरण के अनुसार समस्त प्रकार के परमाणुओं को भी संख्या (Valancy) के अनुसार सात अवस्थाओं (Periods) में विभाजित किया जाता है। इस प्रकार डॉ. वर्मा ने ऋग्वेदीय सृष्टि विज्ञान और आधुनिक सृष्टि संरचना विज्ञान में तालमेल बिठाने का सार्थक प्रयत्न किया है।

यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि यह प्रयत्न व्यापक अध्ययन, गम्भीर चिन्तन और उभय विषयक तुलनात्मक विश्लेषण की मांग करता है। डॉ. वर्मा ने इसकी उपलब्धि के प्रमाण भी पदे पदे प्रस्तुत किये हैं। ऋग्वेद के अद्यावधि सारे भाष्यों को नकारकर यास्क के सहारे (और वह भी सर्वत्र नहीं) तथा अपने गणितीय अध्ययन और स्वीयमान्यताओं के बीच तालमेल बिठाकर अपने बलबूते पर यह क्रान्तिकारी प्रासाद खड़ा किया है। मैं इसके लिये उन्हें सर्वात्मना साधुवाद देता हूँ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुत ग्रन्थ अनेक प्रश्नों को जन्म देता है। ये प्रश्न अन्तरंग भी हैं और वहिरंग भी। मैं यहां न तो उन मान्त्रिक व्याख्याओं पर ही वैदिक शोध शास्त्रियों द्वारा सम्मानित प्रश्नचिह्नों की ओर संकेत करना चाहता हूँ और न इस बात की ओर कि चारों संहिताओं के अन्य सैकड़ों मंत्र में जहां इन प्रतीकिक शब्दों का उल्लेख हुआ है वहां इन अर्थों का संगति बैठती है या नहीं। यह प्रश्न भी यहां शायद समीचीन न लगे कि वेदों को सर्व विद्याओं का आगार मानने वाले ऋषि कल्प मनीषियों को यह बात अद्यावधि क्यों नहीं सूझी या इन व्याख्याओं का पारंपरिक आधार क्यों नहीं है। लेखक में इन प्रश्नों को समाधान करने की क्षमता तो होगी ही और इन तथा ऐसे अन्य सम्मानित प्रश्नों को कल्पना और उनके निराकरण का विश्वास लेकर ही डॉ. वर्मा ही क्यों, प्रत्येक सत्यशोधक अपनी धारणाओं को सार्वजनिक वंचारिकी प्रज्ञा की चतुष्पदी पर प्रतिष्ठित करता है।

फिर भी यह चिन्ता तो रहेगी ही कि यदि निरन्तर परिसोधन की प्रक्रिया से गुजर रहे आधुनिक विज्ञान ने परीक्षणों के आधार पर अपनी मान्यताओं में काट छांट की तो उसका इन 'इत्थभूत' विश्वासों प्रेरित वैदिक व्याख्याओं पर क्या प्रभाव पड़ेगा। यदि ऐसा हुआ तो भी डॉ. वर्मा की उपलब्धि का महत्व अक्षत रहेगा। सत्य की शोध प्रक्रिया शश्वद् वाहिनी सरिता के समान ध्रुव गतिका होती है। नयी मिलती जलराशि पुराने जल में वासीपन को जन्म नहीं देती। जो लोग डॉ. वर्मा के निष्कर्षों को अतिरेक या अतिरंजना की कोटि में ग्रहण करेंगे उन्हें भी इस महान् वैदिक अध्येता और चिन्तक के साहस को, यदि वे वस्तुतः सत्यान्वेषक होंगे, नत मस्तक प्रणाम करने के लिये उनका मन प्रेरित करेगा ही।

ऋग्वेद के अतिरिक्त अन्य महान् वैदिक ग्रन्थों के भी इस गम्भीर अध्येता और साहसी चिन्तक विद्वान् का मैं अभिनन्दन करता हूँ।

ई-२/७३
अरोरा कालोनी
भोपाल

डॉ. प्रभदयालु अग्निहोत्री
साहित्य वाचस्पति
भू. पू. उपकुलपति
जबलपुर विश्वविद्यालय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मति

आपके अमूल्य ग्रन्थ 'वैदिक सृष्टि उत्पत्ति रहस्य' भाग २ को मैं अधिकांश पढ़ गया हूँ आपका चिन्तन सर्वथा मौलिक है एवञ्च वैदिक वाङ्मय के अनेक अनुद्घाटित पक्षों पर प्रकाश डालता है। आधुनिक विज्ञान के परिपेक्ष्य में वेदों की व्याख्या का आपका प्रयास सुतरां स्तुत्य है। आपकी अपूर्व कृति के लिये आपको शत शत वर्धापन।

डॉ. सत्यव्रत शास्त्री
प्रोफेसर
संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
भू. पू. उपकुलपति
श्री जगन्नाथ संस्कृत विश्वविद्यालय, पुरी उड़िसा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तावना

इसके पूर्व आपकी सेवा में वैदिक सृष्टि उत्पत्ति रहस्य भाग १ प्रस्तुत कर चुका हूँ उस भाग में रसायन शास्त्र एवं नाभिकीय विज्ञान - विषय के संबंध में वेद में आये विचारों को प्रकाश में लाया गया है। मूल भौतिक सत्ता से यह दृश्य जगत् कितने चरणों में और कैसे-कैसे प्रादुर्भूत हुआ अब इस विषय की क्रमबद्ध रूपरेखा आपके समक्ष 'वैदिक सृष्टि उत्पत्ति रहस्य' भाग २ के माध्यम से प्रस्तुत करते हुए आन्तरिक आनन्द की अनुभूति हो रही है।

कुछ विद्वानों का विचार है कि वेद में विज्ञान कैसे हो सकती है यह ऋचाओं की व्याख्या में प्रतिरोपित की गयी है इस मत पर समुचित विचार करना आवश्यक है।

यह प्रश्न बहुत स्वभाविक ही है क्योंकि वेद को एक सतत विचारक्रम के ग्रन्थ के रूप में आज तक नहीं देखा जा सक है। सम्पूर्ण वेद तो दूर की वस्तु है किसी सूक्त से एक प्रवाहमान विचारधारा उद्भव हो रही हो ऐसी व्याख्या का भी अभाव है। प्रश्न यह है कि यदि एक ही सूक्त में इतने असम्बद्ध विचार विद्यमान हैं तो ऋषि ने उन ऋचाओं को एक सूक्त के अन्तर्गत क्यों रखा, उन ऋचाओं को एक सूक्त की संज्ञा ही क्यों दी। स्पष्टतयः हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि कम से कम इस वर्तमान युग में वेद में विद्यमान विद्यायें प्रकाश में नहीं आ सकी हैं भूतकाल की स्थिति का हमें ज्ञान नहीं है। अतः यह विश्वास-पूर्वक कैसे कहा जा सकता है कि वेद में अमुक विद्या है अथवा नहीं है जब एक सूक्त की ऋचाओं के मध्य भी कोई सतत प्रवाहमान विचार क्रम नहीं देखा जा सका तो किसी विद्या का विकास व विस्तार वेद में किस प्रकार हुआ है यह कैसे देखा जा सकता है।

सबसे प्रमुख बात यह है कि किसी भी ऋचा की अच्छी से अच्छी व्याख्या करने का प्रयास तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक व्याख्याकार अपने आप को उस ऋचा विशेष के शब्द और शब्दार्थ तक सीमित रखता है तथा विचारान्तर्गत ऋचा के बाहर अन्य ऋचाओं में उस ऋचा के रहस्य की खोज नहीं करता. इसके लिये यह स्वीकार करना आवश्यक है कि ऋचाएँ परस्पर सबंधित हैं तथा एक ऋचा की व्याख्या करने में अन्य ऋचाएँ निर्णायक भूमिका निभाती हैं। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण पक्ष है जिस पर लेखक ने अत्यन्त गहरायी से अन्वेषण किया है और ऋचाओं के मध्य जो परस्पर संबंध है तथा जो क्रमबद्धता है उसे उभारकर प्रकाश में लाने का प्रयास किया है। विद्या चाहे वह भौतिक विज्ञान हो, या

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनीति शास्त्र हो, समाज शास्त्र हो, नीतिशास्त्र हो, या दर्शन या सृष्टि उत्पत्ति विषय हो या कोई अन्य, विद्या एक क्रमबद्ध विषय ही होता है व्यवस्थित विषय का विकास भी क्रमपूर्वक ही होता है। यदि ऋचाओं के विषय परस्पर असम्बद्ध हैं उनमें परस्पर कोई तालमेल नहीं है तो परस्पर विच्छिन्न (unconcerned), अयुक्त (unconnected), सामञ्जस्यरहित (uncompromising) ऋचाओं की व्याख्या करके किसी विद्या के अल्प स्वरूप को भी नहीं उभारा जा सकता फिर विज्ञान की तरह क्रमबद्ध विषय के व्यवस्थित रूप को प्रस्तुत करना तो एक दूर की बात है।

वेद की ऋचाओं के मध्य परस्पर संबंध है तथा परस्पर निर्भरता है यह पक्ष आजतक अनदेखा रहा है इसका कारण जो भी हो पर यह एक सत्य है। कदाचित् परंपरावादी यह मानते आये हैं कि वेद की प्रत्येक ऋचा अपने आप में पूर्ण है जो कि एक सर्वथा भ्रम है। वहीं आधुनिक विचारक इस पूर्वाग्रह से ग्रसित रहे हैं कि वेद में कोई क्रमबद्ध विषय हो ही नहीं सकता जैसा कि प्रसिद्ध विचारक प्रोफेसर मेक्समूलर ने कहा है I कि जो हमारे समक्ष एक क्रमरहित एवं अत्यन्त अव्यवस्थित रूप में आया है उसे क्रमबद्ध करने के प्रयास से दूर ही रहें अर्थात् उसे क्रमबद्ध विषय के रूप में प्रस्तुत करना असभव ही है।

In all such matters, however, we must be careful not to go beyond the evidence before us, and abstain as much possible from attempting to systematise and generalise what comes to us in an unsystematised, nay often chaotic form

Six systems of Indian
Philosophy.

जहाँ मान्यता ऐसी हो वहाँ वेद की ऋचाओं से क्रमबद्ध विज्ञान विषय को प्रस्तुत हुआ देखकर आश्चर्य चकित हो जाना अत्यन्त स्वभाविक ही है। लेखक को वेद में प्रतिपादित हुआ भौतिक विज्ञान का विषय व सृष्टि उत्पत्ति विषय अपने मूल सहज रूप में अल्प श्रम में उपलब्ध हुआ है जिस विज्ञान को बटोरने में लेखक को आश्चर्य मिश्रित आनन्द की अनुभूति हुई है।

इस संदर्भ में निम्न लिखित तथ्य ध्यातव्य हैं

प्रथम यह कि विज्ञान को जानने वाला ही विज्ञान के विषय को समझने की क्षमता रखता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय तथ्य यह है कि वेद में प्रतीकवाद (ymbolism) है किन्तु वेद के प्रतीकों को समझा नहीं जा सका इस कारण वेद की विज्ञान प्रकाश में नहीं आ सकी। आधुनिक विज्ञान में भी भाषा के अनेक शब्द ऐसे हैं जिनका विज्ञान में विशिष्ट अर्थ है उन्हें उसी प्रकार समझने से ही विज्ञान के तथ्य समझे जा पाते हैं। विज्ञान में न्यूक्लेयर पार्टिकिल्स का अर्थ परमाणु की संरचना में भाग लेने वाले कणों से है इसी प्रकार हेवीवाटर (heavywater) पोटेन्शियल (Potential) कान्टीन्यूटी (continuty) आदि का विशिष्ट अर्थ हैं वैसे ये भाषा के साधारण शब्द भी हैं किन्तु विज्ञान में इनके वास्तविक तात्पर्य को समझे बिना विज्ञान का विषय अर्थहीन ही रहता है जैसे हेवी वाटर विज्ञान का विशेष न्यूक्लेयर विज्ञान संबंधी रसायन है उसे साधारण पानी समझ लेने से विज्ञान का तथ्य अर्थहीन हो जाता है वैसी ही बात वेद के प्रतीकों के लिये भी प्रयुक्त होती है। अतः वेद के प्रतीकों के वास्तविक ज्ञान का वेद की विज्ञान को समझने में महत्वपूर्ण योगदान है प्रत्युत इनका ज्ञान वेद के विज्ञान की चाबी है।

उदाहरण के लिये अप् या आपः वेद में क्रियात्मक मूल तत्त्व (The active fundamental principle from which creation originates) का प्रतीक है किन्तु अप् को पानी मान लेने से संबंधित विज्ञान पक्ष पूर्णतयः तिरोहित हो जाता है। वैदिक सृष्टि उत्पत्ति रहस्य भाग १ में अप् के इस रहस्यमयी वैज्ञानिक स्वरूप पर अनेक स्रोतों से प्रकाश डाला गया है किन्तु इसके सत्य होते हुए भी कुछ विद्वान् इसे मानने में तत्पर दिखाई नहीं दिये। उनको कल्पना इतनी कुण्ठित (crude) दिखाई दी कि वे परंपरागत हिन्दू दर्शन के सामान्य तथ्यों से भी अपरिचित हैं आधुनिक विज्ञान समझने की क्षमता का तो प्रश्न ही नहीं उठता। वे जल महाभूत से सृष्टि उत्पत्ति क्रम का आरंभ मानते हैं जब जल को महाभूत कहा गया है जो स्वंय सक्ष्म भूत अर्थात् तन्मात्रा का परिणाम (finished Product) है तो यह कहना कि शास्त्र में जल महाभूत से सृष्टि आरंभ होना कहा गया है ऋषि को भी ज्ञान से शून्य दर्शाना है। जल से पृथ्वी अग्नि, आकाश, वायु का निर्माण कैसे होगा। जल तो स्वंय अन्तिम परिणाम है। अन्तिम से क्रम का आरंभ कैसे होगा, क्रम तो सूक्ष्म से स्थूल की ओर जाता है। स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाने वाला क्रम विसर्जन है सृजन नहीं है। अतः इस पक्ष पर कुछ प्रकाश डालना यहाँ उपादेय है शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है –

वज्रो हि वा आपः। (वै. व्या. पृ. ३३३),

जल वस्तुतः वज्र है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वज्र कठोरतम द्रव्य है, जल तरल है मृदु है जल वज्र कैसे हो सकता है यहाँ दोनों के गुणों में मौलिक विरोध है। तो, या तो वज्र की परिभाषा बदलना पड़ेगी या फिर आपः की अन्यथा इस वचन में पागलों के प्रलाप के अतिरिक्त कुछ और नहीं है।

द्रव्य का घनत्व सूक्ष्मता के साथ बढ़ता है यदि आपः मूलतत्त्व है तो इसका घनत्व सर्वाधिक होगा तथा यह सर्वाधिक कठोर होगा वज्र रचना आदि सृष्टि काल में होती है और वह मौलिक द्रव्यों से होती है यही वेद की परिकल्पना है। जल को वज्र कहना पागलों का प्रलाप है किन्तु अप् संज्ञक मूल तत्त्व को वज्र कहना आधुनिक विज्ञान के नाभिकीय द्रव्य (nuclear substance) की रहस्यमयी संरचना संबंधी उच्चतम विज्ञान है जिसका उद्घाटन इस २० वीं सदी में हुआ है कि मौलिक कण व विकिरण (Fundamental Particles & radiation) का घनत्व सर्वाधिक है। इस प्रकार यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि वेद के स्वरूप की सत्य जानकारी के अभाव में वेद की समस्त विज्ञान तिरोभूत हो जाती है।

इस संदर्भ में हठधर्मी का प्रश्न उठता ही नहीं है स्मृति ने सर्वप्रथम अप् की उत्पत्ति कही है (म. स्मृ. १-८) किन्तु जल महाभूत की उत्पत्ति महत्तत्त्व, तन्मात्रा के पश्चात् आकाश वायु आदि के क्रम के अन्त में कही है (श्लोक ५५-७८) इस प्रकार ऋषियों के संकेतों को न समझना उनके द्वारा प्रोक्त सत्य विज्ञान को नष्ट भ्रष्ट व चौपट करना है। इस दिशा में सावधानी की आवश्यकता है। लेखक ने वैदिक सृष्टि रहस्य भाग १ व इस ग्रन्थ में अनेक प्रतीकों में निहित वैज्ञानिक अर्थों का अनावरण किया है जो वैदिक विज्ञान को प्रकाश में लाने का प्रथम सोपान है।

तीसरा तथ्य यह है कि ऋचाओं में निहित विषय अविच्छिन्न रूप से परस्पर संबद्ध हैं किसी ऋचा को अन्य ऋचाओं से परिच्छिन्न करके उसकी व्याख्या नहीं की जा सकती। लेखक ने इस विधि का व्यापक स्तर पर प्रयोग किया है। ग्रन्थ के प्रथम भाग में तदनुसार इस भाग में सैकड़ों ऋचाओं के विषयों के मध्य प्रगाढ़ संबंध को प्रकाश में लाते हुए विज्ञान के विषय को प्रस्तुत किया गया है। इन ऋचाओं की व्याख्या से जो विचार उभरकर सामने आये है उन विचारों में एक तारतम्य है एक क्रमबद्धता है एक व्यवस्था है तथा उन विचारों में परस्पर

---

१ आदि काल में महाविस्फोट के समय विकिरण का घनत्व ४ हजार टन प्रतिघन सेन्टीमीटर तक होता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामञ्जस्य है, परस्पर निर्भरता है, परस्पर गहन संबंध है जिससे अध्यायों के विषय को पढ़ने से, सूक्तों की ऋचाओं की व्याख्या को पढ़ने से एक धारावाही विचारधारा सामने प्रस्तुत होती है। इस कारण लेखक ने स्थल २ पर पूरे सूक्त की व्याख्या प्रस्तुत की है ताकि विषय के धारावाहिक - विचार क्रम का स्वरूप भंग न हो।

उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए यह आक्षेप कि ऋचाओं की व्याख्या में विज्ञान प्रतिरोपित की गयी है समीचीन नहीं है क्योंकि सैकडों ऋचाओं की व्याख्या में वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विज्ञान के सिद्धान्तों, तथ्यों को इस सीमा तक प्रतिरोपित कर देना कि उनमें परस्पर प्रगाढ़ संबंध व क्रमबद्धता तथा एक व्यवस्था स्थापित हो जावे एक असम्भाव्य कार्य ही है। यदि ऋचाओं के सहज स्वरूप में, उनकी मौलिक व्यवस्था में विज्ञान के तथ्य उस अवर्ण्य कौशल के साथ निहित न हों तो प्रतिरोपित की हुई कृत्तिम व्याख्या में सैकड़ों ऋचाओं से भौतिक विज्ञान सतत धारावाही क्रमबद्ध व व्यवस्थित विषय के रूप में उभरकर सामने नहीं आ सकती। लेखक ने यत्र तत्र जिस भी ऋचा से विज्ञान के विषय को प्रस्तुत किया है उस ऋचा के आगे पीछे की ऋचा की भी, साथ ही, इस लक्ष्य को दृष्टि में रखकर व्याख्या की है कि विषय का तारतम्य बना रहे। यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य है कि किसी सूक्त की ऋचाओं की व्याख्या से एक सहज धारावाही विचारधारा प्रवाहमान हो और यही कसौटी है कि ऋचाओं में निहित मूल विचार प्रकाश में आ गये हैं। जब पाठक सूक्तों की ऋचाओं के विषय को धारावाहिक विचार क्रम के रूप में प्रस्तुत हुआ देखता है तो वह इस सत्य से आश्वास्त हुए बिना न रह सकता कि ऋचाओं में निहित वास्तविक भाव प्रकट हो गया है। यदि यह कसौटी नहीं है तो अन्य कोई कसौटी हो ही नहीं सकती इसे ही वैज्ञानिक भाषा में कम्प्यूटेशन (computation) या कम्प्यूटर की विज्ञान (science of computer) कहते हैं इसे ही वेद ने ऋत् या स्वप्रवाहमान सत्य कहा गया है। तो यह ऋत् ही सत्य व्याख्या की कसौटी है। इस ऋत् के आधार पर वेद में आये विज्ञान विषय की परख अच्छी प्रकार हो जाती है, अब ये प्रश्न, कि वेद में विज्ञान क्यों है, कैसे है, गौण हैं इस प्रत्यक्ष सत्य के सामने कि वेद में विज्ञान है गौण प्रश्नों का समाधान इतिहास का विषय है जो अंधकार से आवृत्त है।

प्राचीन काल में अनेक उन्नत सभ्यताएँ हो चुकी हैं दजला फेरात घाटी (ईराक) की असीरियन (असुर) सभ्यता, मिश्र की सभ्यता, दक्षिण अमेरिका और मेक्सिको की मायन सभ्यता तथा सिन्धु घाटी (महेन्जोदड़ो, हड़प्पा लोथल,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालीबंगन आदि) की आर्य सभ्यता के अवशेष आज भी विद्यमान हैं। अनेक ख्याति प्राप्त पुस्तकों के लेखक जर्मन विद्वान एरिक वान डेनीकन ने अपनी पुस्तकों में सहस्रों अकाट्य प्रमाण प्रस्तुत किये हैं जो इस तथ्य को प्रस्थापित करते हैं कि प्राचीन सभ्यताएँ पर्याप्त विकसित थीं। क्या यह तथ्य कम महत्वपूर्ण है कि जापान, एशिया और अमेरिका की सम्मिलित वैज्ञानिक टेकनालाजी भी मिश्र के पिरामिडों के निर्माण में सक्षम नहीं है। तो मिश्र के उन निर्माणों को असभ्य युग का अवशेष कैसे कहा जा सकता है। मिश्र के पिरामिडों में एक और चमत्कार पाया गया है वह यह है कि उन पिरामिडों के अन्दर के कक्ष में फल, फूल, दूध रख देने पर फूल सूखते नहीं, फल सड़ते नहीं और दूध फटता नहीं है वरन् दही के रूप में जम जाता है तो विज्ञान के सिद्धान्तों का कितना गहरायी से अध्ययन व प्रयोग किया गया है ये तथ्य आज भी उस सत्य के साक्षी हैं। इसी प्रकार महरौली स्थित लोहे की लाट धातु रसायन विद्या का एक ज्वलंत नमूना है।

वालमीकि रामायण (१७/५-२०) में अनेक विचित्र अस्त्रों का वर्णन है जो विश्वामित्र ने राम को दिये थे इनमें आग्नेयास्त्र, वायव्यास्त्र, सुलानेवाले, प्रशमन, वर्षण, शोषण, रुलानेवाले, मोहित करने वाले (अर्थात् मस्तिष्क को सुन्न करने वाले) पैशाचास्त्र आदि अनेक अस्त्रों का वर्णन है। यह कवि की निरी कल्पना नहीं है ऐसे अस्त्रों के विवरण अरेबियन नाईट्स की कहानियों में भी नहीं मिलते। रामायण युद्ध काण्ड (सर्ग ६७) में पुष्पक विमान का विवरण है जिसमें पर्याप्त स्थान था और जो एक ही दिन में लंका से किष्किन्धा में रुकते हुए अयोध्या पहुंच गया था। लंका से अयोध्या तक की यात्रा एक ही दिन में हो सकती है इस वास्तविकता का ज्ञान प्रत्यक्ष अनुभव के बिना नहीं हो सकता। महाभारत में ब्रह्मास्त्र के प्रभाव का सजीव चित्रण है जो न्यूक्लेयर डिवाईस (nuclear) के अनुरूप है ब्रह्मास्त्र का प्रयोग वर्जित था न्यूक्लेयर का प्रयोग आज वर्जित है। क्या यह साम्य कल्पना पर आधारित है। संजय का हस्तिनपुर में बैठे-बैठे कुरुक्षेत्र के युद्ध का विवरण देखना टेलीविजन के समक्ष किसी यन्त्र पर आधारित है। यदि दिव्य दृष्टि को वरदान माना जाय तो वह वरदान धृतराष्ट्र को भी दिया जा सकता था दैवी चमत्कार के लिये भौतिक चक्षु की आवश्यकता नहीं होती अतः संजय का कार्य यन्त्र के द्वारा सम्पन्न हुआ था। आकाश वाणियों के द्वारा सूचनाओं का प्रसारण भी यान्त्रिक विधि के प्रयोग की ओर इंगित करता है। हो सकता है कि ये ज्ञान कुछ व्यक्तियों तक सीमित रहे उन व्यक्तियों ने इन्हें व्यक्तिगत उपलब्धि बनाकर रखा जैसा कि हमें ज्ञात होता है कि ब्रह्मास्त्र का ज्ञान केवल भार्गवों को था, ऐसे ही कुछ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्त्रों का ज्ञान केवल अगस्त्यों को था विमानादि का ज्ञान भरतद्वाजों व मय दावन जाति के कुछ लोगों को था । व्यक्तिवादी धरोहर होने से यह ज्ञान कालान्तर में क्षीण होकर लुप्त हो गया है यही हाल आयुर्विज्ञान एवं ज्योतिष शास्त्र का हुआ । हाल ही में विश्व विख्यात वैज्ञानिक सर कार्ल सागन ने टेली-विजन पर प्राचीन सभ्यताओं के ज्योतिष संबंधी सूक्ष्म यन्त्रों का जो परिचय दिया उससे यह विदित होता है कि पृथ्वी पर सभ्यताएँ और असभ्यताएँ साथ-साथ पनपती व नष्ट होती रहीं हैं । एक ही काल में समस्त पृथ्वी पर मानव एकसी असभ्य दशा में रहा हो ऐसा कभी नहीं हुआ । आज भी जहाँ दिल्ली और बम्बई में आधुनिक सभ्यता चरम सीमा पर है वहीं कुल्लू की घाटी, बस्तर के अबूझमांड, लद्दाख सरगुजा, नागालैंड आदि में १० से २० सहस्र वर्ष पुरानी कही जाने वाली धातु प्रस्तर युग की सभ्यता विद्यमान है जहाँ आज भी नर नारी हड्डी, कौड़ी और पत्तों से शृंगार करते हैं । अतः यह कहना कि प्राचीन काल में सभ्यताएँ पर्याप्त विकसित नहीं थी एक मन गढ़न्त कल्पना है जो इस तथ्य को प्रस्थापित करने के लिये की गयी है कि पृथ्वी पर प्रथम बार सभ्यता ने ग्रीस से रोम, रोम से यूरोप और यूरोप से विश्व में पदार्पण किया है । किन्तु यह कहानी निरा झूठ साबित होती है जब हम ग्रीस के इतिहास में पढ़ते हैं कि ग्रीस के विद्वान् सुकरात, प्लेटो आदि ज्ञान प्राप्त करने सिकन्दरिया (मिश्र) जाया करते थे । तो ग्रीस के ज्ञान का स्रोत मिश्र था मिश्र की परम्परा में कहा गया है कि सहस्रों वर्ष पूर्व मिश्र का ओपनिवेश स्थापित करने वाले पूर्व से आये (secrets inside Egpyt-Paul Brunton) इस शृंखला की आदि कड़ी क्या थी वह कितनी प्राचीन है उसमें मानव कितना विकसित था यह सब गढ़न अंधकार से आवृत है । इस संक्षिप्त चर्चा में इस विषय में अधिक कुछ कह सकना संभव नहीं है ।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि विज्ञान के किसी सिद्धान्त को लेकर उसकी खोज वेद में नहीं की गयी है वरन् ऋचाओं से स्वाभाविक रूप में जिस विज्ञान की अभिव्यक्ति हुई है, जो विज्ञान सहज ही ऋचाओं से प्रस्फुटित हुई है उसे ही प्रकाश में लाना लेखक का उद्देश्य रहा है । मूल प्रकृति के विकसित होते हुए आयामों (पक्षों) के स्वरूप का विवरण विज्ञान है । यदि ऋषियों द्वारा प्रस्तुत किया गया वह विवरण सत्य है तो यह स्वाभाविक परिणाम ही है कि वह आधुनिक विज्ञान से वहाँ तक मेल खावे जहाँ तक दोनों परस्परा सत्य का प्रतिपादन करती हैं किन्तु यह ध्यान रहे कि वेद प्रतिपादित ज्ञान अपरिवर्तनशील है, स्थायी है अतः जो ज्ञान - विज्ञान धारा ऋचाओं से सहज ही प्रवाहित हो रही है वही सदैव प्रवाहित होती रहेगी, विज्ञान के बदलते हुए आयामों से उसे कुछ लेना देना नहीं है ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान यदि वेद प्रतिपादित सत्य पर ही घूमफिर कर आ जावे तो इसमें क्या संशय

वेद में संपूर्ण विज्ञान नहीं है इसमें मूलभूत सिद्धान्तों को तथा सृष्टि उत्पत्ति के तारतम्य में प्रकृति के परिवर्तित होते हुए स्वरूप के सोपानों की महत्वपूर्ण जानकारियां सन्निहित हैं जिसे आधुनिक विज्ञान की पृष्ठभूमि कहा जा सकता है। सुदूर भूतकाल में यह ज्ञान प्रयोग-सिद्ध अनुभव के आधार पर प्राप्त किया गया हो ऐसा प्रतीत नहीं होता अतः वेद ज्ञान के रहस्यमयी स्रोत की ओर ध्यान जाना अत्यन्त स्वाभाविक है। जैसा कि परंपरा से कहा चला आ रहा है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है यदि यह सत्य है तो इसकी सबसे बड़ी कसौटी भी यही है कि इसमें सृष्टि उत्पत्ति के चरणों की रूपरेखा होना ही चाहिये, क्योंकि ईश्वर के ज्ञान में सब कुछ है अतः उसकी प्रेरणा से जिस ज्ञान का उद्भव हुआ है उसमें यदि सृष्टि उत्पत्ति का ज्ञान न हो तो वह ज्ञान ईश्वरीय है इसमें सन्देह को स्थान होना सर्वथा स्वाभाविक है।

वेद में कुछ ऐसा भी विज्ञान है जिसका ज्ञान आधुनिक विज्ञान में नहीं है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार सृष्टि का आरंभ एक महाविस्फोट से होता है वैज्ञानिक भाषा में इसे बिग बैंग थियोरी कहते हैं। इस महा विस्फोट का सिद्धान्त वेद में भी है जिसका विवरण अध्याय ९ में दिया गया है इस महा विस्फोट के पूर्व की परिस्थितियों का ज्ञान, कि जिनके कारण महा विस्फोट हुआ था आधुनिक विज्ञान में नहीं है किन्तु वेद है महा विस्फोट का कारण इन्द्र (ईश्वर) द्वारा वज्र संचालन कहा गया है। इन्द्र का यह कृत्य ऊर्जाओं के नियोजित संघर्षण का द्योतक है। वेद की यह परिकल्पना कि महा विस्फोट उर्जाओं का टक्कर का परिणाम है विज्ञान के क्षेत्र में अज्ञात है। इसी प्रकार विज्ञान में सृष्टि उत्पत्ति लय के अनवरत क्रम का सिद्धान्त भी अज्ञात है वेद का यह सिद्धान्त अनादि अनन्त काल के मध्य को खाई को पाटता है। किन्तु इस सृष्टि के आरंभ होने (अर्थात् १० से २० अरब वर्ष) के पूर्व प्रकृति में क्या हो रहा था विज्ञान इस तथ्य से सर्वथा अनभिज्ञ है।

ऋग्वेद में इन्द्र वृत्र संबंधी अनेक ऋचाएँ हैं। कुछ विद्वानों ने वृत्र के एतिहासिक व्यक्तित्व की कल्पना करते हुए उसे एक असुर माना है तदनुसार इन्द्र को देवों के अधिपति पद पर आसीन करते हुए ऋचाओं में देवासुर संग्राम की कल्पना की है। पौराणिक गाथाओं में स्पष्टतयः कथानक या इतिहास का विवेचन है किन्तु ऋचाओं में इन्द्र वृत्र का जो विवरण है उसका बुद्धिपूर्वक विश्लेषण करने पर इतिहास या कथानक के सादृश्य कोई विवरण उपलब्ध नहीं होता। उदाहरण के लिये वृत्र कौन था, कहाँ उसका साम्राज्य था, उसकी सेना कैसी थी, उनके अस्त्र कैसे थे, उसका इन्द्र से क्या विवाद था आदि ऐतिहासिक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घटना के लिये जिन सूचनाओं की आवश्यकता होती है उन सभी का, इन्द्र वृत्र संबंधी हजारों ऋचाओं के होते हुए भी अभाव रहस्यमयी एवं आश्चर्यजनक है और इस रहस्योद्घाटन का द्योतक है कि (मानव आकृति, रहित-अपात्-अहस्तः क्र. ४६) वेद का वृत्र किसी कथानक का पात्र नहीं हो सकता वरन् वह सृष्टि रचना संबंधी एक प्राकृतिक घटना का प्रतीक है। इन्द्र, वृत्र, वज्र, संबंधी समस्त वैदिक विज्ञान अध्याय ५ से ८ में विवेचित है।

निरुक्त ने वृत्र को बादल कहा है तथा आवरण करने वाला कहा है किन्तु यह पृथ्वी पर छाये रहने वाला वर्षा का बादल नहीं है जो सूर्य प्रकाश को अवरुद्ध करता है इस आये दिन होने वाली साधारण घटना को बालक वृद्ध सभी जानते हैं वेद में स्थान पाकर उस साधारण घटना का गौरव नहीं बढ़ता वरन् वेद के ऋषियों के सम्मान को ठेस अवश्य पहुंचती है। वास्तविक तथ्य कुछ और है वृत्र बादल अवश्य है किन्तु वह वर्षा का पार्थिव बादल नहीं है वरन् वह आदि सृष्टि-काल की ऊर्जा का बादल है जो सूर्यादि लोकों की उत्पत्ति के पूर्व (आत् इत्-सूर्यम् दिवि आरोयो दृशे. क्र. ५९) आकाश में, गैलेक्टिक केन्द्र में नक्षत्रों, आकाश गंगाओं के मध्य भाग में (रजसः इन्द्र पारे क्र. ५४) मूल तत्त्व अप् (fundamental plasma substance) के सघन मंडलाका बादल में अपनी स्वशक्ति के कारण घुमड़-घुमड़ कर सृष्टि विकास का स्वाभाविक अवरोध करता है प्रारंभिक ऊर्जा के बादल को विज्ञान में सुपर नोभा, सुपर नेबुला कहा जाती है वेद में उसे बादल कहना अनुरूप कल्पना है वृत्र उस आदि मूल तत्त्व के बादल की विकास अवरोधक कला है जो अन्ततः प्रकृति में ही लीन हो जाती है (सूः उत्तरा पुत्रः अधरः आसीत् क्र. ८७)। तत्त्व की चरम सघनता के कारण उस मंडलाकार बादल को पर्वत की संज्ञा (पर्वतं महां उरूं क्र. ७१ पर्वतेषु क्षियन्तं क्र. ८९) दी गयी है। इस प्रकार अध्याय ४ से ७ तक वृत्र संबंधी अनेक पक्षों को प्रकाश में लाकर यह अकाट्य रूप से निश्चय हुआ है कि वृत्र सृजन अवरोधक प्राकृतिक व्यवधान है जिसका उच्छेद कर सृजन को गति देने हेतु प्रारंभिक उर्जा को दिशा प्रदान करना अनिवार्य कदम है। यह कृत्य ईश्वर द्वारा वज्र संचालन के नाम से कहा गया है। यह वज्र संचालन आदि सृष्टि काल की उर्जाओं के सघन बादलों की नियोजित टक्कर का द्योतक है। इस टक्कर में सृष्टि उत्पादन की सामर्थ्य व गति है जो स्वाभाविक रूप से उसी तरह विकास पाती है जैसे प्रक्षेपित किया गया राकेट निर्धारित लक्ष्य पर प्रयाण करता है। इन्द्र वृत्र के माध्यम से कही गयी सृष्टि विकास हेतु प्रक्षेपण की इस विज्ञान को अध्याय ४ से ७ तक प्रकाश में लाया गया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान के अनुसार सृष्टि से पूर्व विश्व में जितना पदार्थ है वह उस समय एक महामंडल के रूप में सघन होकर प्रज्वलित हो गया था जो आकार में हमारे सूर्य से सौ गुना बड़ा था। ऋग्वेद में इस घटना के प्रतीक हिरण्यगर्भः एवं मार्तण्डम् हैं। इस विषय की विस्तृत विवेचना अध्याय ६ में की गयी है।

लेखक की विवेचना सर्वथा मौलिक एवं क्रान्तिकारी है यहां तक कि लेखक ने प्रसंग रहित होने से कहीं-कहीं निरुक्त भाष्य को भी त्याज्य और हेय माना है। उदाहरणार्थ मंडल ३ सूक्त ३१ की प्रथम दो ऋचाओं के निरुक्त भाष्य की निस्सारता को यहां प्रकाश में लाया जाता है जिस भाष्य में दायभाग की कल्पना की गयी है। ऋचा है—

शासद्वह्निर्दुहितुर्नप्त्यं गाद् विद्वाँ ऋतस्य दीधितिम् सपर्यन।
पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जन्त्सं शग्म्येन मनसा दधन्वे॥

अर्थ— यज्ञ के निधान को आदर भाव से देखते हुए ज्ञानी वहन करने वाला पति घोषित करता है कि वह पुत्री से नाती या दौहित्र पायेगा, जहां पिता पुत्री के लिये पति खोजता है वहां शान्त मन से अपने को रखता है। (निरु. भाष्य)

पुरुष ज्ञानी हो या अज्ञानी वह अपनी पुत्री से उत्पन्न पुत्र को नाती रूप में पायेगा ही। अतः यहां ज्ञानी विशेषण सर्वथा निरर्थक है पुत्री के लिये पति खोजते समय शान्त मन से रहता है (या नहीं रहता) इस प्रतिज्ञा (*statement*) में कौन सी असाधारण बात है जिसके लिये ऋचा रची गयी है। एतदर्थ यह भाष्य पूर्णतयः निष्प्रयोजन एवं निस्सार है, इसमें ऋचोक्त आशय प्रकट हो नहीं हो सका है अतः स्वीकार करने योग्य नहीं है। शब्दार्थ भी दोषपूर्ण है दीधिति का अर्थ विधान नहीं है अपितु √ दीधि = चमकना से दीधिति का अर्थ किरण है, ऋत् का अर्थ यज्ञ नहीं है प्राकृतिक प्रवाह है तथा (दुहितुः सेकं) का अर्थ पुत्री के लिये पति प्रतिरोपित किया हुआ अर्थ है सेकः का अर्थ प्रसार है और वह्निः का अर्थ अग्नि (कोष) इस प्रकार यह अर्थ प्रतिरोपित है यथार्थ से कहीं दूर है।

वास्तव में ऋचा की विषयवस्तु के निर्धारण के अभाव में ऋचा में कहा गया तथ्य उद्भाषित हो नहीं हो सका है सूक्त की ३ री और ४ थी ऋचा में—

— सूक्त प्रोक्त विषय वस्तु (*subject matter*) का अति स्पष्ट प्रतिपादन हुआ है प्रथम दो ऋचाओं की विषय वस्तु उसी संदर्भ में है, उसी तारतम्य में ऋचा में चर्चित विषय को प्रकाश में लाना आवश्यक है सूक्त की ३ री ऋचा है—

---

* निरुक्तम् खण्ड १ डॉ. उमाशङ्कर शर्मा ऋषि पृष्ठ ७०-७६

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्निर्जज्ञे जुह्वा रेजमानो महस्पुत्राँ अरुषस्य प्रयन्ते ।
महान् गर्भो मह्या जातमेषां महो प्रवृद्धयेरवस्य यज्ञैः ॥

ज्वालाओं से लपलपाती हुई अग्नि उत्पन्न हुई प्रदीप्त किरणों के महान् शोले संयुक्त हुए। इन ऊर्जाओं को वहन करने वाले ज्वाला यज्ञ के महान् गर्भ से संग्रहीत हुई शीर्षस्थ शक्ति उद्भूत हुई।

ऋचा में महः शब्द चार बार आया है जो असाधारण स्थिति का द्योतक है। ऋचा में आदि सृष्टि में उद्भूत महाग्नि काण्ड का सजीव चित्रण है जिसे आधुनिक विज्ञान ने महाविस्फोट (*big bang*) की संज्ञा दी है। यही वेद की हिरण्यगर्भः स्थिति है आगामी ऋचा में इसी विषय की चर्चा हुई है।
सूक्त के विषय का आरंभ दायभाग की चर्चा से होकर उस विषय का विकास व अभिवृद्धि अग्नि ताण्डव में होना महान् आश्चर्य का प्रसंग है व सूक्त के ऋषि के विवरण में क्रमबद्धता के सामान्य विवेक के अभाव का सूचक है। किन्तु वस्तु स्थिति ऐसी नहीं है जैसी कि भाष्यकारों ने ऋचोक्त विषय को न समझकर वेद पर थोपी है। सूक्त के ३ रो और ४ थी ऋचा की व्याख्या से यह बात स्पस्ट प्रकाश में आती है कि सूक्त के आरम्भ से ही महाविस्फोट का प्रसंग चला आ रहा है तदनुसार ही ऋचाओं का भाष्य अपेक्षित है

उपरोक्त प्रथम ऋचा का भाष्य इस प्रकार है—

पुत्री = क्रियात्मक प्रकृति आपः का शासन करता हुआ ज्ञानवान् ईश्वर विद्युन्मय किरण के सत्य प्राकृतिक बहाव अर्थात् प्रकृति के गुण स्वरूप का मान करता हुआ अग्निमय नाती (अपां नपात्) को प्राप्त होवेगी। जहां पिता ईश्वर पुत्री आपः के प्रसार का मार्ग निर्दिष्ट करता हुआ सामर्थ्य के साथ ज्ञान के द्वारा सम्यक् रूप से तीव्रता से गया था।

वेद के रूपक में ईश्वर पिता, मूल प्रकृति पत्नी, प्रकृति का प्रथम विकार (परिणाम) आपः ईश्वर की पुत्री है तथा प्रकृति का द्वितीय विकार अपां नपात् नाती है। इन्हीं के सबंध में ऋचा में चर्चा है *१।

आदिकाल में क्रियात्मक प्रकृति आपः (ईश्वर की पुत्री) जब सृष्टि रचना हेतु नियोजित होती है तब उसमें अवस्थाओं का परिवर्तन अत्यन्त तीव्र गति से होता है विज्ञान के अनुसार उस समय क्षण के दस हजारवें भाग में भी प्रकृति की अवस्था में परिवर्तन हो रहा था। ऋचा में इसी तथ्य को प्रकाश में लाया गया है।

---

*१ इन ऋचाओं के पूर्ण भाष्य अध्याय ६ में देखें।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और यह कहा गया है की इतनी द्रुतगति से होने वाले प्रकृति के परिवर्तन ईश्वरीय इच्छा, ज्ञान, और सामर्थ्य का अतिक्रमण करके नहीं हुए थे वरन् ईश्वरीय इच्छा ज्ञान व योजना-नुसार ही हुए थे।

आदि सृष्टिकाल में प्रकृति की दशा क्या थी इस विषय को अत्यन्त सूक्ष्म जानकारी ऋचा में दी गयी है जिसका ज्ञान अत्यन्त आधुनिक समय में सर आईन्सटोन को विग बैंग थियोरी के बाद हुआ है। इस प्रकार पूर्वोक्त निरुक्त भाष्य में ऋचोक्त ज्ञान विज्ञान पूर्णरूप से तिरोहित हो गया है।

इसी प्रकार आगामी ऋचा का भाष्य तोड़ मरोड़ कर रखा गया है ऋचा है—

न जामये तान्वो रिक्थमारेकचकार गर्भं सनितुर्निधानम्।
यदि मातरो जनयन्त वह्निमन्यः कर्त्ता सुकृतोरन्य ऋन्धन्॥

निरु. भाष्य— शरीर से उत्पन्न अपने पुत्र ने अपनी बहन को उत्तराधिकार धन नहीं दिया, उसने उसके गर्भ को उसके पति के भण्डार गृह के रूप में बना दिया। जब माताएँ सन्तान को उत्पन्न करती हैं तब उन पुण्यकर्त्ताओं में एक तो काम करने वाला होता है और एक लाभ उठाने वाला। टिप्पणी में लिखते हैं — इस मंत्र में पुत्री का अधिकार निषेध दिखलाया है।

यह भाष्य पूर्णतयः ऋचोक्त विषय से भिन्न है।

इस ऋचा में अत्यन्त उच्च विज्ञान व सृष्टि रहस्य है। सृष्टि आरंभ होने के पूर्व समस्त द्रव्य (*matter*) मूल आद्या अवस्था में होता है इसे अदिति या माता कहा गया है। सृष्टि रचना के अन्तराल में मूल आद्या प्रकृति दो भागों में विभक्त हो जाती है एक भाग पूर्णरूप से अणु रूप में (*in the form of atoms the*) होता हुआ जगत के द्रव्यों (*so called elements- oxygen, hydrogen Nitrogen Iron, Silver, Aluminium other metals carbon and their combounds in which form these are found on planets*) के रूप में विकसित होता है प्रकृति के इसी अंश को (सनितुः) भोक्ता कहा गया है। प्रकृति का दूसरा बहुत बड़ा भाग सूर्यादि नक्षत्रों में नाभिक (*Nuclear*) रूप में तथा विश्व में व्याप्त ऊर्जा के अन्य रूपों में रहता है पूर्वोक्त ग्रहों के रूप में विकसित भाग उर्जा के रूप में रहने वाले भाग पर पोषित है। प्रकृति का प्रथम परिणाम आपः जो ऊर्जा रूप है प्रकृति की पुत्री कही गई है और दूसरा द्रव्य रूप विकसित (*further evolved*) अंश पुत्री का पुत्र अर्थात् नाती कहा गया है जो

---

* गेल्डनर ने सनितुः का अर्थ विजेता, पाणिग्रहण करने वाला किया है इस प्रकार अर्थ को मरोड़ा गया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोक्ता है। ऊर्जा के रूप में सुरक्षित रहने वाला अंश कर्ता है, जो विकसित हुए भोक्ता अंश को निरन्तर शक्ति प्रदान करता है इस प्रकार जगत में ऊर्जा (*energy*) और द्रव्य (*matter*) के परस्पर संबंध से विकसित जगत (*in molecular & compound form called matter*) चल रहा है टिका हुआ है। इस परम सूक्ष्म वैज्ञानिक तथ्य को निष्प्रयोजन ही पारिवारिक दायभाग पर घटाया गया है और वेद के ज्ञान की ज्योति को अंधकार से आवृत्त कर दिया गया है।

पुराणों में इसी ऊर्जा भाग को शेष नाग कहा गया है द्रव्य रचना से बचा भाग शेष है जो गैलेक्सियों में कुण्डलाकार (*spiral shaped*) है। इसी के आधार पर द्रव्य जगत है।

इस प्रकार प्रकृति के दो भाग हैं ऊर्जा (*energy*) और द्रव्य (*matter*)। ऊर्जा प्रकृति की पुत्री और द्रव्य ऊर्जा का पुत्र अर्थात प्रकृति का नाती है। यदि ऊर्जा पूरी की पूरी द्रव्य रूप में परिणत हो जावे तो जगत ठहर नहीं सकता, चल नहीं सकता। यह सभी को विदित है कि पृथ्वी पर वनस्पति व प्राणि जीवन सूर्य ऊर्जा पर आधारित है। संपूर्ण ऊर्जा द्रव्य में परिवर्तित न हो जावे इसे ही ऋचा ने अपने सांकेतिक रूपक में कहा है की प्रकृति (द्रव्य रूप को) नाती को समस्त ऊर्जा कोष देकर रिक्त न करे। ऊर्जा और द्रव्य का सन्तुलन जगत स्थायित्व के लिये परमावश्यक वैज्ञानिक सत्य है जो ऋचा के रहस्यमयी वाणी में पूर्णरूप से सुरक्षित है। इस प्रकार वेद मन्त्रों में अत्यन्त सूक्ष्म एवं गम्भीर ज्ञान छिपा हुआ है जिसे आंशिक रूप में से प्रकाश में लाना लेखक का उद्देश्य है।

इस सूक्त (मंडल ३ सूक्त ३१) की अन्य ऋचाओं की व्याख्या आकाशीय पिण्डों के गुरुत्वाकर्षण संबंधी अध्याय १७ में देखें और विषय के अटूट तारतम्य पर विचार करते हुए वैदिक ज्ञानधारा को हृदयङ्गम करें। तब आपको प्रो मेक्स-मूलर का यह कथन सर्वथा अयुक्त ही प्रतीत होगा कि -

वेद के सूक्तों की एक बड़ी संख्या बचकाना पन की पराकाष्टा लिये हुए, जटिल व निम्न सामान्य कोटि की है *।

---

* *A Large number of vedic hymns are childish in extreme, tedius, of low common place*
Chips from a German Workshop p. 27, by F. max muller

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभी मेरे देखने में एक पुस्तक आई है इस पुस्तक के लेखक ने स्वतंत्र रूप से लिखा है —

'इनमें अन्तिम विगवैंग सिद्धान्त प्राचीन सनातन भारतीय सिद्धान्त के निकट है अिसके अनुसार सर्वप्रथम एक वृहदन्ड या महदण्ड उत्पन्न हुआ जिससे समस्त लोक उत्पन्न हुए।

इसके प्रमाण में विद्वान् लेखक ने निम्न लिखित शास्त्र वचन उद्धृत किये–

निष्प्रभेऽस्मिन् निरालोके सर्वतस्तमसावृत्ते ।
बृहदण्डमभूदेकं प्रजानां बीजमव्ययम् ॥
युगस्यादौ निमित्तं तन्महद्दिव्यं प्रचक्षते ।
यस्मिन् संश्रूयते सत्यं ज्योतिर्ब्रह्म सनातनम् ॥
अद्भुतं चाप्यचिन्त्यं च सर्वत्र समतां गतम् ।
अव्यक्तं कारणं सूक्ष्मं यत् तत् सदसदात्मकम् ॥ महाभारत १/१/२९,

तासु तपस्तप्यमानासु हिरण्यमाण्डं संबभूव·
शत. ब्रा. ११/१/६

पुरूषाधिष्ठितत्वाकच्च अव्यक्तानुग्रहेण च ।
महदादयो विशेषान्ता अण्डमुत्पादयन्ति ते ॥
वायु. पु. ४/७४

उपरोक्त सभी प्रमाण मेरे द्वारा अध्याय ९ में विवेचित विग वैंग के सिद्धान्त को पुष्टि करते हैं साथ ही इस तथ्य की भी कि आदि सृष्टि काल में ईश्वर से अधिष्ठित अव्यक्त प्रकृति के अनुग्रह से महदण्ड की उत्पत्ति हुई थी अर्थात् अव्यक्त प्रकृति इस महदण्ड का उपादान कारण रूप आधारभूत द्रव्य थी। वह सूक्ष्म अव्यक्त कारण सत् असत् (आत्मकम्) स्वरूप वाला था अतः सत् असत् आद्या प्रकृति के भेद विशेष हैं इन्हें ही वेद में अप् और बृहतीः आपः कहा गया है। अप् मूल आद्या शक्ति प्रकृति की उद्वेलित अवस्था है इसलिये सत् कही गयी है और बृहतीः आपः मूल अवस्था का प्रथम विकार एवं विस्तृत स्वरूप है जिसे असत् कहा गया है।

विद्वान् लेखक ने ऋग्वेद मंडल १० के सूक्त १२१ की प्रथम ऋचा – हिरण्यगर्भः समवर्ततागे – – –।
को भी उद्धरित किया है जिसके यह स्वतंत्र मत अभिव्यक्त हुआ है कि हिरण्यगर्भः आदि प्रज्वलित महदण्ड का प्रतीक है।

अध्याय ९ में इस ग्रन्थ के लेखक ने इस ऋचा पर जो प्रकाश डाला है उससे पूर्वोक्त लेखक के विचार का पूर्ण साम्य यह दर्शाता है कि सत्य में भेद को स्थान

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं होता। ईश्वर के नाम भी वेद में अकारण नहीं रखे गये हैं अतः यदि ईश्वर को ही हिरण्यगर्भ कहा गया है तो वह भी इसलिये कि वह 'हिरण्यमाण्ड' का अधिपति था।

उपरोक्त पुस्तक में ब्राह्मण ग्रन्थों और ब्रह्माण्ड पुराण के कुछ अत्यन्त चौंकाने वाले उद्धरणों का उल्लेख हुआ है उन पर कुछ कहना अत्यन्त आवश्यक है। मैं इन उद्धरणों को दो भागों में रखता हूँ। प्रथम वे उद्धरण हैं जो लोकों के चक्राकार व्यूहबद्ध भ्रमण और गुरुत्वाकर्षण पर प्रकाश डालते हैं तथा—

भ्रमन्ति कथमेतानि ज्योतिंषि दिवमण्डनम्।
अव्यूहेन च सर्वाणि तथैवासंकरेण वा॥
ध्रुवस्य मनसा चासौ सर्पते ज्योतिषां गणः।
सूर्याचन्द्रमसौ तारा नक्षत्राणि ग्रहैः सह॥

ब्रह्माण्ड पु. अध्या, २२

सूर्य चन्द्र ग्रह नक्षत्र सहित समस्त ज्योतिष- मंडल- समस्त ब्रह्माण्ड एक धुरे पर भ्रमण कर रहा है, घूम रहा है पुराण रचनाकाल में इस ज्ञान का होना अति आश्चर्य जनक है क्योंकि विज्ञान को इस ज्ञान की उपलब्धि २० वीं सदी के पूर्व नहीं थी। पुनश्च यह ज्ञान कि ग्रह, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी यहां तक अन्तरिक्ष अर्थात् ब्रह्माण्ड का आकार मंडलाकार अर्थात् गोलाकार (*spherical*) है पुरातत्त्व वेत्ताओं की इस समस्त परिकल्पना को पूर्णरूप से ध्वस्त कर देता है की प्राचीन मानव असभ्य और जंगली था ब्राह्मण ग्रन्थों के उद्धरण विचार को उद्वेलित करने वाले हैं। यथा—

परिमण्डल आदित्यः परिमण्डलः चन्द्रमाः
परिमण्डला द्यौः, परिमण्डलमन्तरिक्षम् परिमण्डला
इयं पृथिवी। जैमिनीय ब्राह्मण १।२५७

पृथिवी गोल हैं, द्यो अर्थात् (गैलेक्सी) आकाश गंगा मंडलाकार है ब्रह्माण्ड मडलाकार है। ये सब तथ्य ज्योतिर्विज्ञान (*astronomy*) के असाधारण ज्ञान के होने की पुष्टि करते हैं यही नहीं समस्त लोक सर्पाकार भ्रमण में संलग्न हैं यह ज्ञान भी लिपिबद्ध है यथा—

इमे वै लोकाः सर्पा यद्वि किं च सर्पत्येष्वेव। तल्लोकेषु सर्पति[2]।

श. ब्रा ७।४।१।२७

---

* [1] भारतीय इतिहास पुनर्लेखन क्यों ?

* [2] ब्रह्माण्ड के मण्डलाकार होने का विचार सर्व प्रथम सर आईन्सटीन ने व्यक्त किया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इयं (पृथिवी) वै सर्पराज्ञी । ऐ. ब्रा. ५।२३ समस्त लोक घूम रहे हैं पृथ्वी घूम रही है । यह सब ज्ञान था इसके स्पष्ट प्रमाण के विद्यमान होते हुए अन्तथा धारणा करने का स्थान ही नही बनता और यह प्रस्थापित होता है की न्यूटन और आईन्सटोन के हजारों वर्षों पूर्व ब्रह्माण्ड के मण्डलाकार $_2$ होने तथा सूर्य, पृथ्वी तथा नक्षत्रादि के साथ समस्त भूगोल भ्रमण होने का ज्ञान विद्यमान था । दूसरा महत्वपूर्ण तथ्य जिसे लेखक $_1$ हमारे ध्यान में लाये हैं वह है अत्यन्त पुरा काल में पृथिवी पर होने वाले वातावरण संबंधी परिवर्तन ।

आज विज्ञान ने प्रकृति का अत्यन्त विस्तृत एवं सूक्ष्म ज्ञान व यन्त्र उपलब्ध कर लिये हैं इनके प्रयोग के आधार पर यह ज्ञान संभव हुआ है कि पृथिवी पर संक्रमण काल में अनेक बार अग्नि वर्षा युग और हिम युग हो चुके हैं किन्तु सुदूर भूतकाल में पृथ्वी पर वर्षा युग के तथा जल प्रलय के होने का विवरण पुराणों में होना अत्यन्त आश्चर्य का विषय है । यह सूर्य ताप से पृथिवी के दग्ध होने की घटना लाखों वर्ष पुरानी होना चाहिये क्योंकि इस अग्नि दाह में पृथ्वी पर के समस्त जीव नष्ट हो गये थे अनन्तर जीव प्रजा का नवीन रूप से सृजन हुआ । पृथ्वी पर विद्यमान वर्तमान जीव सृष्टि ५० लाख वर्ष से भी अधिक प्राचीन है अतः यह सम्पूर्ण दाह की घटना इससे पुरानी होना चाहिये । इस घटना की स्मृति का संरक्षण कैसे संभव हो सका जब पृथ्वी पर के समस्त जीव पूर्णतयः नष्ट हो गये थे यह अत्यन्त आश्चर्य का विषय है । पुराण पाठ में जो यह लिखा है कि दाहकाल आने के संकेत जानकर देव विमानों से अन्तरिक्ष के अन्य लोकों को चले गये वही इस घटना के संरक्षण का स्रोत प्रतीत होता है इससे दो बातों का पता चलता है—

एक तो अत्यन्त प्राचीनकाल में पृथिवी पर अत्यन्त उन्नत संस्कृति का होना और द्वितीय उस संस्कृति के लोगों की विमानादि के द्वारा अन्तरिक्ष यात्रा की क्षमता ।

अब पुराण के उन अंशों को उद्धरित किया जाता है जिनमें उपरोक्त कथित घटनाएँ श्लोक बद्ध वर्तमान हैं यथा—

जंगमाः स्थावराश्चैव नद्यः सर्वे च पर्वताः ।
शुष्काः पूर्वमानावृष्टया सूर्यैस तेपधूपिताः ॥
सदा तु विवशाः सर्वे निर्दग्धा सूर्य रश्मिभिः ॥

ब्रह्माण्ड पु. (१।६।४६।४७)

सूर्य ताप से दग्ध पृथिवी के इस अग्निदाह में न केवल नदियां सूख गईं थीं वरन् पर्वतों के धरातल जल कर पिघल गये थे । तथा समस्त वनस्पत्ति सहित जीव नष्ट हो गये थे, संपूर्ण जल वाष्प में परिणत हो गया था ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहां यह ध्यातव्य है को देव शब्द ने प्रचीन इतिहास के विवरण के संबंध में अनेक भ्रान्तियां फैलाई हैं। इन ग्रन्थों की रचना काल के समय देव का अर्थ विद्वान् श्रेष्ठ पुरुष हो था जो कालान्तर में विवरण में रोचकता लाने के लिये स्वर्ग के देवता बना लिये गये। अब यहां यह कहा जा सकता है कि यह विवरण काल्पनिक है किन्तु ऐसी घटनाएं पृथ्वी पर हो चुकी हैं यह तथ्य विज्ञान समर्थित है फिर जो वास्तव में हो चुका है उसे काल्पनिक कैसे कह सकते हैं वरन् यह विवरण तो आंखों देखा हाल प्रतीत होता है, यह किसने देखा। उन पुरुषों ने विमान से देखा जो ताप का पूर्व संकेत पाकर विमान से पृथ्वी को छोडकर सौर्यमंडल के बाहर अन्य ग्रहों में चले गये और पृथ्वी पर जब वातावरण पुनः मानव के रहने योग्य हो गया, तो वे या उनके वंशज पृथ्वी पर वापिस आ गये [1]। यह तथ्य स्पष्ट रूप से कहा गया है–

चतुर्युग सहस्रान्ते सह मन्वन्तरैः पुरा।
क्षीणे कल्पे ततस्तस्मिन् दाहकाले उपस्थिते॥
तस्मिन् काले तदा देवा आसन्वैमानिकास्तु ये।
कल्पावसानिका देवास्तस्मिन् प्राप्ते ह्युपप्लवे॥
तदोत्सुका विषादेन त्यक्तस्थानानि भागशः।
महर्लोकाय संविग्नास्ततस्ते दधिरे मनः॥

सहस्र चतुर्युग के अन्त में मन्वन्तरों का अन्त होने पर कल्प के अन्त में दाह काल उपस्थित होने पर पृथ्वीवासी वैमानिक देवगण (श्रेष्ठ मानव) दुःख से विचलित होकर पृथ्वी लोक छोड़कर महर्लोक (अन्तरिक्ष में अन्य पृथ्वी जैसे वास स्थल) में बसने चले गये(ब्रह्म.पु.अ.६) उन लोगों से ही यह ज्ञान सुरक्षित हो सका।

पृथ्वी पर जो ऐसे दाह हुए हैं इन्हीं से भूगर्भ में धातु, कोयला पेट्रोल आदि की रचना हुई है इस विषय को भी पुराण पाठ ने यथावत कहा है–

धातुस्तनोति विस्तारे न चेतास्तनव स्मृताः। ब्र पु. १।५।५६

इसके अनन्तर जल प्रलय का विवरण है–

---

[1] * अथवा जैसा कि जर्मन विद्वान् एरिक वान डेनीकन ने कहा है कि दूसरे ग्रहों से पृथ्वी पर आने जाने और अन्तरिक्ष में उड़ने की (*space Travel*) क्षमता के कारण पृथ्वी वासी प्रजा ने इन्हें देव संज्ञा से विभूषित किया था

[2] * ये समस्त उद्धरण 'पुराणों मे इतिहास विवेक ••• पुस्तक से दिये गये हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वं सलिलमेवासीत् पृथिवी यत्र निर्मिता । (बालमीकि रामा.)
ततस्तु सलिले तस्मिन्न ष्टाग्नौ पृथ्वी तले
(बृ. पु. १।६।६०)

इस प्रकार यह देखा जा रहा है कि पृथ्वी पर परिवर्तनों का पुराण विवरण $_2$ आज की वैज्ञानिक जानकारी से प्रमाणित होता है।

जैसा कि कुछ विद्वानों का मत है पुराण १५०० से दो हजार वर्ष पूर्व रचे गये तो दो हजार वर्ष पूर्व पृथ्वी पर ऐसे कौन से संकेत विद्यमान थे जिनसे हजारों लाखों वर्ष पूर्व हुए अग्निदाह की घटना का ज्ञान हो सका। यदि अग्नि दाह की घटना व जल प्रलय की घटना की जानकारी प्रत्यक्ष ज्ञान पर आधारित परंपरा से ज्ञात नहीं है तो असभ्य मानव के मन में इन विचारों का उदय हुआ ही कैसे जो ज्ञान विज्ञान के कष्ट साध्य प्रयोगों के उपरांत आधुनिक शोध का परिणाम है। तो बात यहां पहुँची कि पुराणों के जितने विवरणों की परीक्षा (तस्दीक *verification*) हम विज्ञान द्वारा करते है वे विवरण विज्ञान की कसौटी पर सत्य और खरे सिद्ध होते है अतः उन्हे काल्पनिक नहीं कह सकते। काल्पनिक विवरण में इस सीमा तक आकस्मिक सयोग (इत्तफाक) की संभावना नहीं (*harmony of that kind is not possible by mere chance*) हो सकती।

इससे एक बात सामने आती हैं और वह यह है कि अतिशयता से युक्त और असंभव विवरणों को छोड़कर पुराणों के अन्य विवरण हम किस प्रकाश में देखें। पुराण एवं ब्राह्मण ग्रंथों का ज्योतिष संबंधी ज्ञान जिसका विवरण पूर्व अनुच्छेदों में दिया गया है वेद में विज्ञान होने के तथ्य का पूर्णरूप से समर्थन करते हैं। अस्तु वेद में विज्ञान प्रतिरोपित की गयी है यह मत सर्वथा अयुक्त है। यदि मन्त्रों में विज्ञान व्यवस्थित रूप में थोपी जा सकती है तो इतिहास तो और भी सरलता से थोपा जा सकता है किन्तु देखा यह गया है कि संपूर्ण प्रयास के बाद भी इन्द्र वृत्र संबंधी अथवा इसी प्रकार के अन्य जैसे वसिष्ठ उत्पत्ति संबंधी किसी भी बोधगम्य इतिहास की रूप रेखा भी बनाने में विद्वान आज तक सफल नहीं हुए हैं इसके विपरीत ऋचाओं से तर्क सिद्ध, बोधगम्य स्वाभाविक विवरण से युक्त एवं क्रमबद्ध विज्ञान विषय को लेखक के द्वारा प्रकाश में लाया गया है जिससे न केवल अनेक ऋचाओं के मध्य परस्पर संबंध प्रस्थापित हुआ है वरन् ब्राह्मण ग्रन्थों तथा अन्य शास्त्रों के विवरण में भी एकरूपता स्थापित हुई है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदाहरणार्थ परंपरागत भाष्य में मंडल ७ की ऋचाओं में वसिष्ठ को मानव माना गया है और उसकी उत्पत्ति की कथा रची गयी है जिसमें अज्ञानवश वसिष्ठ के मित्र वरुण दो पिता होने की अस्वाभाविक कल्पना की गयी हैं जबकि प्रजनन विज्ञान से यह प्रसिद्ध है कि दो वीर्याणु एक ही मादा डिम्ब (रज) को गर्भ रूप में परिणति नहीं कर सकते। इस कथा के रचने में निरुक्त द्वारा की गयी उर्वशी की व्याख्या को दृष्टि ओझल किया गया है निरुक्तकार ने उर्वशी को (उरु अश्नुते) विशाल क्षेत्र को व्याप करने वाली कहा है जो स्पष्ट रूप से प्रकृति है भाष्यकार दुर्ग तथा स्कन्द ने तो स्पष्ट रूप से इसे विद्युत कहा है इसी प्रकार अप्सरा को अप् (मूल तत्त्व) में संचरण करने वाली कहा गया है अप् मूल तत्त्व का सृष्टि में नियोजित प्रथम स्वरूप (अप् एवं ससर्ज आदौ) है यह जान लेने पर हमारे समक्ष ऋचोक्त विशुद्ध विज्ञान प्रकट हो जाती है वह है मित्र वरुण कणों के द्वारा उदासीन कण वसिष्ठ (न्यूट्रान) की रचना का विज्ञान।

एक दूसरे उदाहरण के रूप में यह देखने योग्य है कि ऋचाओं में जिस सोम का यह लक्षण दर्शाया गया है वह आकाश में प्रवाहित होता है और ज्योति पिण्डों को भेदकर पार निकल जाता है वह शराब की तरह पेय कैसे हो सकता है यदि यह ध्यान रहे कि देव

भौतिक शक्तियां हैं तो उन भौतिक शक्तियों को उत्तेजित करने वाला सोम निश्चय ही विकिरण ऊर्जा (*radiiant energy*)हो सकती है। जो वास्तव में इन लक्षणों की भी पूर्ति करती है कि वह आकाश गामी है। वह लोकों के पिण्डों को पार करके निकल जाती है। उसका सृष्टि रचना में योगदान है सोम ऊर्जा को आदि काल में इन्द्र (ईश्वर) ने सोमपान (ऊर्जा पर आधिपत्य) करके ही सृष्टि रचना हेतु वज्र प्रहार किया था। ऊर्जाओं के संघर्षण से मूल तत्त्व को आदि गति *initial momentum*)प्रदान की थी। ये समस्त रूपक हमारे सामने वेद में निहित सृष्टि उत्पति रहस्य को तत्क्षण (एक दम) स्पष्ट रूप से उभार देते हैं। इस प्रकार वेद के सप्त सिन्धु प्रतीक में पंजाब की सात नदियों के भूगोल के होने की कल्पना थोपी गयी है। जबकि ऋचा (ऋ.१८४) में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है। कि (अव असृजत सप्त रश्मि सत्त्रे सप्त सिन्धून्) सृजन के क्रम में पीछे (बाद मे) प्रकट किया सप्त किरणों सप्त सिन्धु को बहने के लिये। अतः सप्त सिन्धु सप्तवर्गी किरणों के आकाशवर्ती प्रवाह हैं। जो सृष्टि उत्पत्ति क्रम में उस समय उत्पन्न होते हैं जबकि आकाश में ज्योतिर्पिण्ड अपनी २ कक्षा निर्धारण (आरोहन्तम् द्याम रोहिणम अस्फुरत वही ऋचा) कर रहे थे। काल और स्थल इन दोनों के निर्धारण के बिना इतिहास की कल्पना सर्वथा अचिन्तनीय है। वृत्र के उन्मूलन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के उपरान्त ही सप्त सिन्धु के प्रवाह प्रकट हुए थे यह तथ्य ऋचाओं में बार बार (क.१८६-१८७-१८८) कहा गया है अत: सप्त सिन्धु की उत्पत्ति वृत्र के उन्मूलन के उपरान्त ही होती है। इस प्रकार वज्र संचालन, वृत्र उन्मूलन, अग्नि काण्ड(क.१८३) लोकों की उत्पत्ति (वही ऋचा) सोम की भूमिका व सप्त सिन्धु की उत्पत्ति (क्र. १८५) इन सभी घटनाओं के मध्य परस्पर अविच्छिन्न संबंध है। जिससे यही प्रस्थापित होता है कि सप्त सिन्धु सृष्टि उत्पति क्रम में उद्भूत हुए सप्त वर्गी किरणों के आकाशवर्ती प्रवाह हैं। पंजाब की नदियों से इसका दूर का भी नाता नहीं है केवल सिन्धु नंद नाम साम्य के आधार पर पंजाब में सप्त सिन्धु की कल्पना वस्तु स्थिति से सर्वथा भिन्न है।और इतिहास भी इस पक्ष में नहीं है।वह क्षेत्र सिन्धु देश तो कहा गया है पर कभी भी सप्त सिन्धु देश नहीं कहा गया वरन् पंजाब ही कहा गया है।

कुछ भाष्यकारों ने ऋचोक्त सभी युगपद घटनाओं को इस प्रकार पृथक् करके भाष्य किया है मानो ऋचा में कहीं का ईट कहीं का रोड़ा मिलाया गया हो। वे (सातदले कर) ऋचा क्र. १८३ के भाष्य में लिखते हैं।

मेघ को मारकर सात नदियों को बहाया
बल असुर की छिपाई हुई गायों को प्रेरित किया।
दो पत्थरों के बीच अग्नि को उत्पन्न किया।

पत्थरों के बीच अग्नि को उत्पन्न करना, गायों को प्रेरित करना और मेघ को मारकर नदियों को बहाना इन घटनाओं के बीच परस्पर कोई संबंध नहीं है। फिर इन्हे बार २ एक ही ऋचा में स्थान देने का औचित्य समझ के बाहर है। (अश्मन: अन्त: अग्नि जजान) बादल (आदिकाल के निहार मंडल) के बीच अग्नि को उत्पन्न किया (हत्वा अहिम) इस प्रकार वृत्र रूपी अवरोध का विनाशकर (वलस्य अपधा) आवरण हटाने वाले ने (गा. उदाजत) लोकों को ऊपर चलाया और (सप्त सिन्धून् अरिणात्) सप्त प्रवाहों को गति दी

स्वामी दयानन्द ने भी मेघों के बीच अग्नि उत्पन्न करना और पृथिव्यों को ऊपर प्रेरित करना भाष्य किया है।

फिर जब इस ऋचा के पूर्व की ऋचा (२।१२।२) यह कह रही है कि
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तम्नात् स जनास इन्द्र। जिसने विस्तृत अन्तरिक्ष (*inter steiiar space*), लोकों के बीच की दूरी को विशेष माप से

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

तर्मा - वे
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



स्थापित किया और जिसने द्युलोक-प्रकाशित लोकों को आकाश में धारा वह इन्द्र है और उसी सूक्त की एक अन्य ऋचा (क्र.७वीं) में इन्द्र को इस प्रकार परिभाषित किया गया है

यो सूर्यं यो उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः जिसने सूर्य को, जिसने सृष्टि काल को उत्पन्न किया जो मूल तत्त्व का संचालक है वह इन्द्र है ।

तो बात स्पष्ट हो गयी कि लोकों को विशेष नाप से स्थापित करने वाले, सूर्य और सृष्टि काल को उत्पन्न करने वाले प्रकृति के अधिपति ईश्वर को सूक्त में इन्द्र कहा गया है । सूर्य की उत्पत्ति से उषा काल की उत्पत्ति तो अपने आप हो जाती है फिर भी ऋचा में उषा की उत्पत्ति का सूर्य के साथ पृथक् से कहा जाना ऋचोक्त उषा को सूर्य अधारित उषा काल से भिन्न प्रतिपादित करता है यह जानना आवश्यक है ।

अब यह अपने आप स्पष्ट हो जाता है कि कि सूक्त के वचन' गा उदाजत् का तात्पर्य लोकों को आकाश मेंसंचालित करने से है जैसा कि इसी सूक्त की १२वीं ऋचा (क्र.१८४) में यह तथ्य स्पष्ट रूप में प्रतिपादित हुआ देखा जा सकता है

यो आरोहन्तम् द्याम रोहिणम् अस्फुरत्
आकाश में चढ़ते हुए द्युलोक को आकाश चढ़ने की स्फूर्ति दी ।

इस प्रकार वज्र संचालन, वृत्र उन्मूलन, अग्नि काण्ड, सप्त सिन्धु प्रवाह एवं लोकों का अपनी २ कक्षा में निर्धारण करने की घटनाएं ऋचाओं में सृष्टि विकास क्रम की परस्पर संबंधित युगपद घटनाएं मानी गयी हैंअतः इनके स्वरूप के यथावत् ज्ञान का इनके घटित होने के काल से घनिष्ट संबंध है ।

अध्याय ४ में वृत्र वध की घटना का काल निर्धारण किया गया है । वृत्र विनाश की घटना सूर्य और द्युलोक(गैलेक्सियों) की उत्पत्ति को पूर्ववर्ती सृष्टिकाल के आरंभ की है ऋचा (१।३२।४) (क्रमांक ६०) देखें

यद इन्द्र अहन् आत् सूर्यम् जनयन् द्याम् उषासं । जब इन्द्र ने अहियों में प्रथम अहि को मारा अनन्तर ही सूर्य को, द्युलोक को और सृष्टि काल को उत्पन्न किया । इस स्पष्ट घोषणा से इतिहास संबंधी समस्त रेत का महल धराशायी हो जाता है और जहाँ इन्द्र का सृष्टि कर्ता स्वरूप उभरकर सामने आता है वहीं वृत्र और उससे संबंधित वज्र, सप्त सिन्धु आदि प्रतीकों में निहित प्राकृतिक घटनाओं के वैज्ञानिक स्वरूप का अनावरण होने लगता है ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मण में प्रकाशित लोकों (द्यु लोक) और सूर्य की उत्पत्ति एक ही समय में हुई और उसी समय सप्तवर्गी परमाणु रचना हुई इस वैज्ञानिक सत्य के परिपेक्ष्य में ऋचा प्रोक्त में जब एक सतके द्रष्टा ऋचाओं के आदिकाल के विवरण में द्यु लोक का आकाशीय मार्ग पर आरोहण और सप्त सिन्धु की उत्पत्ति इन युगपद घटनाओं का उल्लेख हुआ देखता है तो वह वेद में विज्ञान के मूलभूत तथ्यों के प्रतिपादित होने के सत्य से आश्वास्त हुए बिना नहीं रह सकता। यह सत्य की स्वयं अभिव्यक्ति करने की स्वशक्ति है जो इस तथ्य की प्रकाशक है कि ज्ञान स्वप्रकाश है उसे परकीय प्रमाण की आवश्यकता नहीं है

दो हजार से अधिक इन्द्र वृत्र संबंधी ऋचाओं के होते हुए भी किसी बोधगम्य इतिहास को निकालने के भागीरथी प्रयास का सफल न होना स्वयं में इस बात का प्रमाण है कि जिस विषय का जहां अभाव हो उस विषय का वहां प्रतिरोपित किया जाना असम्भव है। इसके विपरीत ग्रन्थ में आद्योपन्त अध्याय २ से अध्याय २१ तक दी गयी व्याख्या में उषा इन्द्र वृत्र त्वष्टा, वज्र, हिरण्यगर्भ, भृगु, मातरिश्वन् सप्त सिन्धु मरुत, ऋभु आदि प्रतीकों में निहित वैज्ञानिक सत्य का ही अनावरण नहीं हुआ है वरन् उनमें निहित दिक् काल, सृष्टि उत्पत्ति क्रम का परस्पर संबंध व विकसित होती हुई सृष्टि के चरणों की स्पष्ट रूपरेखा चलचित्र की भांति उभरकर सामने आती है जिसे आधुनिक विज्ञान के परिपेक्ष्य में देखे जाने पर वेद में अव्यवस्थित और निरर्थक विवरण होने की भ्रांति तिरोहित हो जाती है और हम सृष्टि उत्पत्ति के विभिन्न चरणों के गंभीर रहस्यों की जानकारी उपलब्ध करते हैं किन्तु ऋषियों का उद्देश्य विज्ञान के ग्रन्थ की रचना करना नहीं था। वरन् दिव्य प्रेरणा के फलस्वरुप प्राप्त अलौकिक ज्ञान को ईश्वरीय महिमा के गुण गान के तारतम्य में अभिव्यक्त करना ही उन्हे अभिप्रेत था किन्तु अलौकिक ज्ञान से अभिभूत हुए ऋषियों की वाणी न तो सामान्य स्तर की सीधी भाषा का रूप ले सकी न ही विज्ञान निष्ठ भाषा का रूप ले सकी और वह वाणी सांकेतिक रूपकमय कविता के रूप में व महिमा को निहित करती हुई निःसृत हुई।

१- देखिए प्रो. मोक्समूलर की टिप्पणी पृष्ठ २ प्रस्तावना।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस काल के विद्वानों को परोक्ष विवरण प्रिय था यह तथ्य शास्त्रकारों ने स्वीकार किया है। गोपथ ब्राह्मण (पूर्व भागे प्र. १, क्र.१, क्र. ७) में कहा गया है

परोक्ष प्रिया इव ही देवा: भवन्ति प्रत्यक्ष द्विष:।

परोक्ष प्रिय लोगों के समान ही विद्वान् प्रत्यक्ष के द्वेषी होते हैं। यही वचन शतपथ ब्राह्मण में आया है अत: वेद में परोक्ष वर्णन होने में कोई आश्चर्य की बात नहीं है वरन् यह टिप्पणी इस बात का सँकेत करती है कि वेद का वर्णन परोक्ष ही है। प्रत्यक्ष ग्राह्य अर्थ वैदिक कवि का लक्ष्य नहीं है किन्तु परोक्ष होते हुए भी मन्त्र भाषा में दार्शनिक कल्पना संजोई गयी है तथा प्रकृति के विभिन्न चरणों के गुण, धर्म. स्वभाव, लक्षण. हेतु, कारण, कार्य दिक्, काल संबंधी विचार समाहित हैं विज्ञान की वे उच्च कल्पनाएं मन्त्र भाषा में अक्षुण्ण हैं उन्हें प्रकाश में लाने का प्रयास ही ग्रन्थ का लक्ष्य है।

अब जो कुछ कहना था कह दिया गया है आगे विज्ञ पाठक स्वयं समझ लेंगे। अत: अब ईश वन्दना से ग्रन्थारंभ किया जाता है—

यस्य नि: श्वसितं वेदा यो वेदेभ्यो ऽ खिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम् ॥

बिलासपुर
मध्यप्रदेश

विष्णुकान्त



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय अनुक्रमणिका

अध्याय	अनुच्छेद	विषय	पृष्ठ संख्या
१		विषय प्रवेश	१-३४
	१	वेद की भाषा प्रकाश की भाषा है	१
	२	वेद की विषय वस्तु क्या है	४
	३	मन्त्र रचना की आधारभूत योजना	५
	४	वेद भाष्य की विधि	७
	५	मन्त्रार्थ सिद्धान्तानुरूप होना चाहिए	९
	६	वेद के शब्द अनेकार्थी हैं	,,
	७	देव भौतिक सत्ताएं हैं	१०
	८	वेद में प्रतीकवाद	१६
	९	अन्तः साक्षी सर्वोपरि प्रमाण है	१९
	१०	वेद के शब्दार्थों में दर्शन के मूल्य	२०
	११	मन्त्र परस्पर अविच्छिन्न संबद्ध हैं	२३
	१२	ऋग्वैदिक दर्शन	२६
	१३	आधुनिक वैज्ञानिक सृष्टि उत्पत्ति	२७
	१४	वेद में दर्शन विज्ञान का अभूतपूर्व समन्वय	२८
२		उषा रहस्य एवं सृष्टि प्रलय काल	३५-४४
३		मूल शक्ति, नक्षत्र अन्तरिक्ष ऊर्जादि वर्गीकरण	४५-५६
	१	ग्रह नक्षत्र, अन्तरिक्ष वर्गीकरण	४६
	२	मौलिक तत्त्व व परिणामों का वर्गीकरण	४७
	३	सार्वभौमिक गुरुत्वाकर्षण	५३
४		इन्द्र वृत्र कथा में सृष्टि सृजन रहस्य	५७-६९
	१	वैज्ञानिक परिकल्पना	५७
	२	ऋग्वैदिक परिकल्पना	५८
	३	वृत्र वज्र की रूपरेखा	५९
	४	वृत्र हाथ पैर से रहित था	६१
	५	इन्द्र वृत्र घटना स्थल निर्णय	६४
	६	इन्द्र वृत्र युद्ध उच्चाकाश में हुआ था	६५
	७	इन्द्र वृत्र युद्ध घटनाकाल निर्णय	६८

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय	अनुच्छेद	विषय	पृष्ठ संख्या
५		इन्द्र वृत्र कथा में सृष्टि सृजन रहस्य	७०-८४
	१	क्या इन्द्र ऐतिहासिक व्यक्ति है	
	२	वृत्र को मारने में हेतु	७३
	३	वृत्र उन्मूलन से सृजन में उत्कर्ष	७८
६		वृत्र और शम्बर के स्वरूप का विवेचन	८५-८६
	१	वृत्र की उत्पत्ति	८५
	२	वृत्र प्रकृति में उद्भूत भौतिक स्थिति है	८७
	३	शम्बर के १०० किलों का रहस्य	९४
७		वृत्र हन्ता इन्द्र है या अग्नि	९४-१००
८		त्वष्टा व वज्र के स्वरूप की विवेचना	१०१-१०७
	१	त्वष्टा मीमांसा	१०१
	२	वज्र मीमांसा	१०२
	३	वज्र का आधारभूत द्रव्य	१०३
	४	वज्र सूर्य की तरह प्रज्वलित था	१०४
९		वेद में आधुनिक विज्ञान का महाविस्फोट (बिगबैंग)	१०८-१२५
	१	विज्ञान की परिकल्पना	१०८
	२	ऋग्वैदिक अवधारणा	१०९
	३	हिरण्यगर्भ की असाधारण महत्ता क्यों है	१०९
	४	हिरण्यगर्भः शब्द का निर्वचन	११०
	५	ऋग्वेद में हिरण्यगर्भ	१११
	६	वृहत् अग्निकाँड का आधारभूत द्रव्य	११३
	७	आदिकाल में महदग्नि पिण्ड की उत्पत्ति	११५
	८	ऋग्वैदिक रूपक में आद्य विस्फोट	११८
	९	वृहदग्नि ताण्डव का वर्णन	१२२
	१०	महाग्नि काण्ड का कारण वज्रपात	१२५
१०		भृगु, मातरिश्वन, वैश्वानर की विवेचना	१२६-१६९
	१	भृगु के स्वरूप की परिकल्पना	१२६

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय	अनुच्छेद	विषय	पृष्ठ संख्या
	२	भृगुः शब्द की व्युत्पत्ति	१२८
	३	ऋचाओं में भृगु के स्वरूप की विवेचना	१२९
	५	मातरिश्वन् के स्वरूप की विवेचना	१३२
	६	मातरिश्वन् की उत्पत्ति का काल	१३३
	७	मातरिश्वन् प्रसार का प्रतीक	१३५
	८	वैश्वानर मीमांसा	१३६
११		ब्राह्मण ग्रन्थों में भृगु अथर्वा मातरिश्वा समुद्र व अङ्गिरस की विवेचना	१४०-१४८
	१	आदिकाल का विवरण	१४०
	२	मूल उपादन कारण का क्रियात्मक होना	१४१
	३	अप् तत्त्व में भृगु की उत्पत्ति	१४२
	४	अथर्वा व मातरिश्वा की उत्पत्ति	१४५
	५	समुद्र की विवेचना	१४७
	६	वरुण व अङ्गिरा की उत्पत्ति	१४९
१२		सूक्ष्म स्थूल भूत नक्षत्र सूर्य पृथ्वी की उत्पत्ति का विज्ञान	१४९-१६१
	१	वैज्ञानिक परिकल्पना	१४९
	२	ऋग्वैदिक परिकल्पना	१५१
	३	ऋग्वेद की भविष्यवाणी	१५१
	४	मूल तत्त्व का दहन	१५२
	५	मूल तत्त्व का दो वर्गों में विभाजन	१५४
	६	नक्षत्रों ग्रहों की उत्पत्ति	१५५
	७	सूक्ष्म स्थूल भूतों की उत्पत्ति	१५८
	८	ऋग्वेद की दूरगामी भविष्यवाणी	१६०
१३		वैदिक प्रतीक मरुत के स्वरूप की विवेचना	१६२-१७४
	१	वैज्ञानिक परिकल्पना	
	२	मरुत शब्द की व्युत्पत्ति	१६२
	३	मरुत का स्वरूप	१६२
	४	मरुतों द्वारा व्यापक बल का कार्य	१६३

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय	अनुच्छेद	विषय	पृष्ठ संख्या
	५	मरुतों द्वारा गुरुत्वाकर्षण का नियंत्रण	१६५
	६	मरुतों का विद्युत बल संबंधी विचार	१६६
	७	मरुतों का क्षेत्र, बल और रथ	१७१
१४		सप्त सिन्धु आकाशवर्ती परमाणु प्रवाह	१७५
	१	सप्त सिन्धु का स्थल व काल	१७५
	२	पदार्थ की अवस्थाओं का विवरण	१७६
	३	वज्र संचालन, लोकों की उत्पत्ति व सप्त सिन्धु के मध्य घनिष्ठ संबंध	१७७
१५		मरुतो देवता	१८५-१९८
१६		मूल अग्नि पिण्ड का लोकों के रूप में विस्तार	१९९-२०५
१७		आकाशीय पिण्डों का गुरुत्वाकर्षण द्वारा संतुलन	२०६-२१३
१८		देवयन्तः आपः	२१४-२२०
१९		प्रकृति के स्वरूप का रोचक विवरण	२२१-२२६
२०		मूल कणों की स्वभावगत क्रिया ऋभुशक्ति	२२७-२४०
	१	ऋभु शब्द का निर्वचन	२२९
	२	ऋभु चार प्रकार के आकर्षण के प्रतीक	२३०
	३	ऋभुओं द्वारा एक युग्म की उत्पत्ति	२३१
	४	ऋभु आकाशवर्ती शक्ति	२३३
	५	प्रकृति के भागों में कार्य विभाजन	२३४
	६	शक्ति के महत्वपूर्ण विभागों का विवरण	२३६
	७	ऋभु शक्ति के व्यापक कार्य से द्रव्य की उत्पत्ति	२३७
	८	ऋभु शक्ति का जागरण काल	२३८
	९	ऋभुओं का प्रमुख लक्षण बल का संचार	२३९
२१		वेदों में अनन्त की कल्पना एवं आधुनिक विज्ञान	२४१-२५१
	१	काल के संदर्भ से असीमित का वैदिक दर्शन	
	२	व्यापकत्व के संबंध से अनन्त की वैदिक कल्पना	
	३	आधुनिक विज्ञान में अनन्त की परिकल्पना	
	४	गणित संबंधी अनन्त के लक्षण का वैदिक दृष्टिकोण	
	५	दिक् space संबंधी वैज्ञानिक परिकल्पनाएं	

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय १

विषय प्रवेश

ऋग्वेद दर्शन एवं विज्ञान के रहस्यों का आगार है। वेद विज्ञान का ग्रन्थ नहीं है। वेद का उद्देश्य सृष्टि उत्पत्ति संबंधी रहस्योद्घाटन करना है। यह सृष्टि कैसे आयी, क्यों आयी, इसका उपादान कारण क्या है, इसके पीछे कौन-कौन सी शाश्वत शक्तियाँ कार्यरत हैं यह वेद का प्रमुख विषय है। इस विषय पर वैदिक ऋषियों की एक पूर्ण परिकल्पना (हाईपोथेसिस) है, एक सम्पूर्ण दर्शन है। इस दर्शन के निर्वाह के परिपेक्ष्य में विज्ञान अपने आप निहित हो जाता है किन्तु वेदों की भाषा सांकेतिक, प्रतीकात्मक एवं परोक्ष है तथा वह अलङ्कारों विशेषकर रूपकों से परिपूर्ण है। मन्त्रों के बाह्य सतही शब्दार्थ के पीछे महत्वपूर्ण ज्ञान अभिप्रेत है यह तथ्य आज विद्वानों द्वारा स्वीकृत हो चुका है।

१. वेद की भाषा प्रकाश की भाषा है–

यास्क ने कहा है कि वेद दिव्य प्रेरणा के परिणामस्वरूप अन्तर्ज्ञान से युक्त ऋषियों को प्राप्त हुआ अपौरुषेय ज्ञान है। उन ऋषियों ने वह ज्ञान उन अन्यों को हस्तान्तरित किया जो इस दिव्य प्रेरणा से युक्त न थे। वही ज्ञान परम्परा से अनेकों माध्यमों से होता हुआ विस्तार को प्राप्त हुआ। अतः कालान्तर में मूल से अत्यधिक दूर हो जाना स्वाभाविक है।

वेदों में रूपक शैली है ब्राह्मण ग्रन्थों ने उस रूपक भाषा को सरलीकृत करने के स्थान पर रूपकों के तारतम्य का विस्तार किया है तथा रूपकों को अन्य रूपकों से आवृत्त कर दिया है। पुराणों ने कथाओं के माध्यम से इन रूपकों को बृहदाकार किया है। इन रूपकों में जो सैद्धान्तिक पक्ष है वह रूपकों के आवरण में छिपा है, प्रच्छन्न है; जो प्रकट है वह है उसका बाह्य ढाँचा। अस्तु इस गहन अँधकारमय भूलभुलैया में दिशाहीन हो भटकना अधिक स्वाभाविक है, मार्ग पाना कठिन।

हमें सबसे प्रथम वेद का भाष्य सायण द्वारा किया गया उपलब्ध है यद्यपि सायण वैदिक वाङ्मय के प्रकांड विद्वान् थे किन्तु वैदिक काल तथा उनके काल को एक बहुत बड़ा काल खण्ड पृथक् करता है अतः उनके काल में वैदिक ज्ञान परम्परा लुप्त प्रायः थी। अस्तु उनकी दृष्टि रूपकों के बाह्य आवरणों का विभेद कर मूल आत्मा तक न पहुँच सकी। पाश्चात्य विद्वानों ने वेद के अध्ययन करने के हेतु से

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेक विधियाँ अपनायीं। उन्होंने ब्राह्मण ग्रन्थ, पुराण, दर्शन, निरुक्तादि को तिलाञ्जलि दे स्वतंत्र रूप से अध्ययन करने का प्रयास किया। उन्होंने भारतीय संस्कृति को आत्मसात करने के स्थान पर भारोपीय स्रोतों से तुलनात्मक अध्ययन को अधिक महत्व दिया। उन्होंने इस तथ्य को दृष्टि ओझल कर दिया कि वैदिक वाङ्मय में वेद अपौरुषेय ज्ञान के प्रस्फुटन माने गये हैं तथा उन्हें अति उच्च स्थान प्राप्त है। उन्होंने वैदिक वाङ्मय में वेद के विषय में जो आलेख होते आये थे जैसे कि –

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम् यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। श्वेता.
आदिकाल में, जिसने ब्रह्मा को धारण किया तथा जिसने निश्चय ही उसे वेद ज्ञान से भूषित किया।

निज शक्तयभिव्यक्ते स्वतः प्रमाणयम्। सांख्य दर्शन
वेदों को ईश्वर ने अपनी स्वशक्ति से उद्भूत किया है अतः वे स्वतः प्रमाण हैं।

भूतं भव्यम् भविष्यम् च सर्वम वेदात् प्रसिद्धयति। मनुस्मृति १२/९७
भूत, वर्तमान व भविष्य सभी को वेद से प्रकाशित किया।

तथा अन्य उन्हें गम्भीरता से नहीं लिया न ही वे वेद की गरिमा को आँक सके। उनकी यह धारणा थी कि वेद भी यूरेशिया के अन्य फारस, ग्रीस, रोमादि के प्राचीन ग्रन्थों की भाँति ही अविकसित मानव की विचारधारा की धरोहर मात्र हैं। प्राचीन मानव प्राकृतिक शक्तियों का दैवत्वीकरण कर उन्हें पूजते थे अस्तु इसके अतिरिक्त वेद में कुछ हो ही नहीं सकता। इस प्रकार पूर्वाग्रह से ग्रसित हो उन्होंने वेदाध्ययन आरंभ किया अस्तु वे रूपकों में निहित कथाओं के बाह्य कलेवर के अन्तस् में न जा सके। उनकी असफलता पर किञ्चित भी आश्चर्य न होना चाहिये।

यह ध्रुव सत्य है कि पूर्वाग्रह से ग्रसित होकर किसी भी ग्रन्थ का यथोचित अनुशीलन एवं मूल्याँकन नहीं हो सकता। वेद के विषय में यह बात विशेष रूप से प्रयुक्त होती है वेद ने स्वयं स्थल-स्थल पर सचेत किया है कि मन्त्रों में परा तत्त्व (आत्म तत्त्व) एवं गूढ़ रहस्य निहित हैं।

कोई कारण नहीं है कि वैदिक द्रष्टाओं की अग्रिम चेतावनी को दृष्टि ओझल किया जावे वरन् ऋषि ने स्वयं आगाह किया है कि ऐसा कदापि न किया जाय– (क्रमांक १)

न स देवा अतिक्रमे तं मर्तासो न पश्यत्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस परम्परा का विद्वान् भी अतिक्रमण न करें। हे मरणधर्मा मनुष्यों, क्या (तुम) इस (निर्देश) को नहीं देख रहे ?
वरन् ऋषि ने इस निर्देश को ईश्वर की ओर से किया गया दर्शाया है।

ए. आई. ओ. सी. के विद्वान् अध्यक्ष ने ठीक ही कहा है – (आल इन्डिया ओरिएन्टल कान्फेरेन्स ३१ वें सेसन में पं. गौरीनाथ शास्त्री का अध्यक्षीय भाषण)

"The Language of Gods is the language of light, of illumining intuition. In this sense Mantra literature, and for the matter of that, the entire Veda is spiritual revelation. The spontaneous vibration following in the wake of that wonderful experience must be free from all errors."

देवों की भाषा प्रकाश की भाषा है अन्तर्बोध को प्रदीप्त करने वाली है। इस अर्थ में मन्त्र भाग, उस हेतु से सम्पूर्ण वेद आध्यात्मिक अनावरण है। उस विचित्र अनुभव के परिपेक्ष्य में हुआ वह तत्कालिक प्रस्फुटन सभी त्रुटियों से रहित होना चाहिये।

जो विद्वान् आज भी वेदों को ज्ञान से शून्य आदि मानव (primitive man) की रचना मानते हैं उनके विचार के लिये उपरोक्त उद्धरण पर्याप्त है। जो व्यक्ति वेद को हजारों मन्त्रों का परस्पर संबंधरहित भानमती का पिटारा मानते हैं उनका दृष्टिकोण उपरोक्त वचन के कितना विपरीत है, कितना त्रुटिपूर्ण है यह स्पस्ट ही है। इस विषय में यह कहा गया है– (उसी भाषण से)

It should be noted, therefore, that the language of Mantras should not be held responsible for our inability to fix their meaning.

यह बात ध्यान रखने योग्य है कि मन्त्रों के अर्थ निर्धारित करने की हमारी अयोग्यता के लिये मन्त्र की भाषा किसी प्रकार भी उत्तरदायी नहीं है। ऋषि ने कहा है– (क्रमांक २)

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदु।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते॥

ऋचाओं के प्रतिपाद्य (विषय) जिस अविनाशी परम आकाशवत व्यापक में समस्त देव पूर्ण रूप से स्थित हैं जो उस परम तत्व को नहीं जानता वह ऋचा से क्या करेगा ? जो उसे जानते हैं वे ही इमे इन ऋचाओं में सम् आसते सम्यक्

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान पाते हैं।

ऋचाओं (ऋग्वेद के मन्त्र) में वर्णित परमतत्त्व की सम्यक् अवधारणा के बिना ऋचाओं का रहस्यमयी क्षेत्र दुष्प्रवेश्य है। ऋचाएँ रहस्यमयी हैं। ऋचाओं का विषय परमतत्त्व है इस बात को वेद मन्त्र बार-बार दुहरा रहे हैं। क्या यह विडम्बना ही नहीं है कि विज्ञान के इस युग में बड़े-बड़े धुरन्धर विद्वानों को भी वेद मन्त्रों की व्याख्या करने में कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई। यह तथ्य स्वयं इस बात का प्रमाण है कि वेद की भाषा वैचित्र्य रहस्यों को छिपाये है।

२. वेद की विषय वस्तु क्या है–

यह विदित है कि वेद के रचयिता अनेकों ऋषि हैं। प्रश्न उठता है कि क्या इन सभा ऋषियों के विचारों में साम्य है? इसका उत्तर सकारात्मक है। सम्पूर्ण ऋग्वेद में एक ही परिकल्पना (हाईपोथेसिस) है। उसी परिकल्पना के सर्वतोमुखी विकास करने एवं उसके विभिन्न पहलुओं को प्रकाश में लाने हेतु उन अनेक ऋषियों ने अपने-अपने तरीकों से उन्हीं विषयों पर प्रकाश डाला है। यह तथ्य कि समस्त ऋग्वेद में एक ही परिकल्पना के वैभव का विस्तार है स्वयं ऋग्वेद के मन्त्र १६, सूक्त ८०, मण्डल १ में कहा गया है– (क्रमांक ३)

यामथर्वा मनुष्पिता दध्यङ् धियमत्नत ।
तस्मिन् ब्रह्माणि पूर्वथेन्द्र उक्था समग्मतार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥

याम धियम् जिस ज्ञान का **अथर्वा, पिता मनुः, दध्यङ्** ऋषि अथर्वा, पिता मनु एवं ऋषि दध्यङ् ने (**अत्नत**, √तन् = विस्तारे की लुङ्. धातु वै. व्या.) विस्तार किया। **तस्मिन् ब्रह्माणि** उस वेद ज्ञान में **इन्द्रे** ईश्वर के लिये **पूर्वथा उक्था** जैसा पूर्व में कहा गया था। अन्य ऋषि उसे (**सम् अग्मत**, √गम् (= जाना) की लुङ्. धातु प्र. पु. बहु व. वै. व्या.) सम्यक् प्रकार से ले गये।

मन्त्र में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जिस ज्ञान का दर्शन पूर्वोक्त तीन ऋषियों ने किया था उसका ही सम्यक् विस्तार अन्य ऋषियों ने किया है। अस्तु सम्पूर्ण वेद मन्त्र रूपी मोती एक ही परिकल्पना रूपी सूत्र में पिरोये गये हैं। जहाँ अन्तःसाक्षी वर्तमान है बाह्य कल्पना का अध्यारोपित किया जाना स्वागत करने योग्य नहीं है। अतः यह स्वीकार करके अग्रसर होना श्रेयस्कर है कि ऋग्वेद में एक ही दर्शन का विस्तार है। इस दर्शन के आधारभूत मूल सिद्धान्तों का अनावरण आवश्यक है। यहाँ यह दर्शन शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया गया है

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसका तात्पर्य यह है कि ऋग्वेद में सृष्टि के रहस्यों संबंधी एक व्यापक परिकल्पना है जिसमें सृष्टि क्यों हुई, कबसे हुई, कैसे हुई, इसका अन्त क्या है, इसके मूल में कौन-कौन से शाश्वत तत्त्व विद्यमान हैं आदि प्रश्नों से उत्पन्न विषयों का सम्यक् समाधान अन्तर्निहित है। इस दर्शन के निर्वाह के परिपेक्ष्य में विज्ञान अपने आप निहित हो जाता है किन्तु वैदिक द्रष्टाओं को केवल उतना ही विज्ञान से सरोकार है जितना सृष्टि उत्पत्ति स्थिति संबंधी रूपरेखा को प्रकाश में लाने के लिये अनिवार्य है। ऋग्वेद विज्ञान का ग्रन्थ नहीं है, उसमें विज्ञान संबंधी गहन विवरण का होना अनावश्यक है। ऋग्वेद में मानव के सामाजिक जीवन को सुख-शान्ति पूर्ण एवं समृद्ध बनाने के लिये व्यवस्थाएँ दी गई हैं। मानव के व्यक्तिगत जीवन का लक्ष्य क्या है, उसे अभ्युदय एवं निःश्रेयस कैसे सिद्ध हो सकते हैं, इस पर आचरण संहिता निर्धारित की गयी है।

३. ऋग्वेद की मन्त्र रचना में आधारभूत योजना क्या है–

ऋग्वेद में दस मंडल हैं। प्रत्येक मंडल अनेक सूक्तों का संग्रह है। प्रत्येक सूक्त कुछ मन्त्रों का समूह है जिसमें ३ से लेकर ६०–६५ तक मन्त्र हैं किन्तु अधिकांश सूक्तों में लगभग ७ से २० तक मन्त्र पाये जाते हैं इस विषय में कोई भी नियम नहीं बनाया जा सकता।

प्रत्येक सूक्त का मन्त्र द्रष्टा ऋषि है अथवा एक से अधिक ऋषि हैं। प्रत्येक मन्त्र का देवता है, कभी-कभी पूरे सूक्त के एक या एक से अधिक देवता हैं। देवता संबंधित मन्त्र का विषय होता है अतः मन्त्र के भाष्य करते समय विषय को ध्यान में रखना आवश्यक है। किसी-किसी पूरे सूक्त का देवता एक ही है, उदाहरण के लिये ऋग्वेद मंडल १, सूक्त ३६ में २० मन्त्र हैं जिनका ऋषि घौर है तथा देवता अग्निः है अर्थात् सभी २० मन्त्रों का विषय अग्निः है।

वेद के शब्द अनेकार्थी हैं। प्रसिद्ध भाष्यकार सायण ने एक ही शब्द को प्रसंगानुसार विभिन्न अर्थों का द्योतक बताया है। पाश्चात्य विद्वानों ने इसी आधार पर सायण भाष्य को स्वीकार नहीं किया। यद्यपि जैसी कहावत है 'उनको और न उनको ठौर' वे सायण भाष्य से मुक्त भी नहीं हो सके तथा सभी पाश्चात्य विद्वानों के भाष्य, लेख यदि पूर्ण रूप से नहीं तो आंशिक रूप से सायण भाष्य पर आधारित हैं।

सत्य की सत्यता, मान्यता, अमान्यता से मुक्त होती है। जब लोग पृथ्वी को चटाईवत मानते थे तब भी पृथ्वी गोल थी। जब सूर्य को पृथ्वी की परिक्रमा करते

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाला मानते थे तब भी पृथ्वी ही सूर्य की परिक्रमा करती थी। वेद के शब्द अनेकार्थी हैं जब तक इस सत्य को स्वीकार नहीं किया जायगा वेद मन्त्रों का रहस्य अज्ञात ही रहेगा। उदाहरण के लिये 'गौः' शब्द है जिसका अर्थ गाय, पृथ्वी, सूर्य, इन्द्रिय होता है। (गौः इति पृथिव्याः नामधेयम्, आदित्योऽपि गौः उच्यते, सर्वेऽपि रश्मयः गाव उच्यन्ते, नि. २/२) पाणिनि से भी पूर्ववर्ती यास्काचार्य ने गौ का अर्थ पृथ्वी, सूर्य, किरण किया है।

शब्द के इतने भिन्न-भिन्न अर्थों का कारण संस्कृत भाषा की शब्द रचना का आधार है जो कुछ अपवादों को छोड़कर अनिवार्यरूपेण उस धातु पर आधारित है जिससे उस शब्द की व्युत्पत्ति हुई है। अतएव गमनार्थक धातु (गा = जाना) से व्युत्पन्न होने के कारण गमनशील वस्तुओं गाय, पृथ्वी, सूर्य, इस कारण साधारणतया लोक की भी तथा इन्द्रियादि की संज्ञा गौः है। इन्द्रिएँ विषय के पीछे जाती हैं।

प्रश्न यह है कि गौः का अर्थ गाय ही क्यों प्रचलित हुआ? इसका कारण यह है कि व्यवहारिक वस्तु होने से गाय शब्द प्रचलित हो गया तथा अन्य अर्थ शास्त्रों तक सीमित रहने से प्रचलित न हो सके। जहाँ गौः शब्द लोकों के लिये प्रयुक्त हुआ है, वहाँ गाय अर्थ करने पर वास्तविक भाव कैसे प्राप्त होगा, उदाहरण के लिये ऋ. १/३३/१० – (क्रमांक ४)

युजं वज्रं वृषभश्चक्र इन्द्रो निर्ज्योतिषा तमसो गा अधुक्षत्।

बलवान् इन्द्र ने वज्र ठीक तरह पकड़ लिया और प्रकाश द्वारा अंधकार में से गौओं को निकालकर प्राप्त करके उनका दोहन किया (सातवलेकर) वस्तुतः इन्द्र ने ग्वाले का काम किया।
भाष्य भावहीन एवं असंगत ही है।

वास्तव में घटना आदि सृष्टिकाल की है जब सर्वत्र रहस्यमयी अंधकार व्याप्त था (तम आसीत् तमसा गूढम् अग्रे ऋ. १०/१२९/३) आदिकाल में अंधकार व्याप्त था वह अंधकार की तरह रहस्यमयी था। (वृषभः इन्द्रः युजं वज्रं चक्रे √कृ लिट् ल.) वर्षणशील इन्द्र ने सहायक या अधीनस्थ वज्र को चलाया। ज्योतिषा किरणों के द्वारा तमसः अंधकार से गाः लोकों को निर् बाहर निकाला, प्रकट किया और (अधुक्षत् √दुह लुङ्. स) उनका दोहन किया।

आदि सृष्टिकाल में रहस्यमयी अंधकार व्याप्त था यह अंधकार प्रकाश का अभाव नहीं था वरन् विकास का अभाव था, सृष्ट्युत्पत्ति की आशा का अभाव था क्योंकि प्रकृति अपने आप सृष्ट्युत्पादक सामर्थ्य से रहित थी तब प्राथमिक संवेग

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(initial impulse) प्रदान करने हेतु इन्द्र ने ऊर्जाओं की टक्कर का नियोजन किया जिससे प्राथमिक (capacity =) दक्ष[1] की उत्पत्ति हुई इस सामर्थ्य से विकिरण रूप में व्याप्त मौलिक कारण से लोकों को प्रकट किया तथा उन लोकों की शक्ति का दोहन करके जगत का विस्तार किया।

ऋचा में सृष्टि उत्पत्ति संबंधी अति उच्च विज्ञान है जिसे सिद्धान्त की अनभिज्ञता के कारण गायों की रक्षा का इतिहास बनाया गया है। अस्तु यहाँ 'गाः' का अर्थ लोक है।

यहाँ जो बात कहना है वह है मन्त्रों की योजना संबंधी। वेद के शब्दों के अनेकार्थी होने का सूक्त की योजना से घनिष्ट संबंध है। उदाहरण के लिये अग्निः शब्द ऋग्वेद में ईश्वर, मूल भौतिक शक्ति, चेतना (जीवात्मा), ज्ञान एवं विद्वान् के अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। यह सत्य ऋग्वेद के अन्तस् में साक्षी रूप से वर्तमान है, आरोपित नहीं है। अग्निः शब्द का प्रयोग ईश्वर, मूल शक्ति एवं ज्ञान के अर्थ में हुआ है इस तथ्य को अध्याय २ भाग १ में प्रकाश में लाया गया है।

यदि किसी सूक्त का देवता अग्निः है तो उस सूक्त के किसी भी मन्त्र में ईश्वर, जीव, मूल शक्ति, ज्ञान, विद्वान् आदि में से किसी भी एक के विषय में विवेचना हो सकती है। इसी प्रकार यदि सूक्त का देवता विश्वेदेवा है तो सूक्त के मन्त्र में भौतिक शक्तियों या विद्वान् संबंधी विवेचना हो सकती है। यही योजना अन्य सूक्तों में है अर्थात् सूक्त का देवता जिन-जिन अर्थों में आता है सूक्त के मन्त्र उनमें से किसी भी अर्थ से संबंधित हो सकते हैं।

४. वेद भाष्य की विधि क्या हो सकती है–

ऋग्वेद दर्शन विज्ञान का अभूतपूर्व ग्रन्थ है। ब्राह्मण ग्रन्थों का उपनिषद् अंश तथा षट् दर्शन वेद की अध्यात्म विद्या (ज्ञान काण्ड) के प्रवक्ता हैं उनका निर्मल पथ वेद ज्ञान के गहन वन में प्रवेश करने हेतु सुनिश्चित मार्ग निर्दिष्ट करता है साथ ही विज्ञान का सामान्य ज्ञान होना भी आवश्यक है ताकि विज्ञान संबंधी तथ्यों की निर्दोष अभिव्यक्ति हो सके। इसके अतिरिक्त वेद में प्रतीकवाद (symbolism) है अर्थात् शब्द अपने सामान्य अर्थ के अतिरिक्त किसी विशिष्ट प्राकृतिक स्थिति के

---

१ अदितेः दक्षो अजायत ऋ. १०/७२/४। दक्षस्य वादिते जन्मनि ऋ.१०/६४/५।
दक्षस्य जन्मन्नदितेरुपस्थे ऋ. १०/५/७।
दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम् ऋ. १०/१२१/८।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्योतक हैं। इस विषय पर आगामी अनुच्छेद में विशिष्ट प्रकाश डाला गया है तथा ग्रन्थ में अनेकों प्रतीकों में निहित विशिष्ट अर्थों को प्रकाश में लाया गया है। प्रतीकों के विशिष्ट अर्थों का ज्ञान ऋग्वेद के मन्त्रों के भावरूपी कोष को खोलने की चाबी है। चौथी बात यह है कि वेद में सांकेतिक शब्द हैं जैसे अमृत, नित्य, अज, अमर्त्य, अजर आदि, जिनका दार्शनिक महत्व है जिस पर यथोचित ध्यान दिया जाना अपेक्षित है। इसी प्रकार अग्रे, पूर्व्ये, प्रथमे सांकेतिक शब्द हैं जो आदि सृष्टि-काल के द्योतक हैं। पाँचवीं बात शब्दों का अनेकार्थी होना है। यदि पूर्वाग्रह को छोड़ दिया जावे तो शब्दों के अनेक अर्थ आन्तरिक साक्षी के आधार पर प्रसंग को समावेश करते हुए मन्त्र में निहित सिद्धान्त के प्रकाश में निर्धारित किये जा सकते हैं। छठवाँ तथ्य यह है कि वेद मन्त्र परस्पर समवाय (अविछिन्न) रूप से सम्बद्ध हैं। मन्त्र को मूल देह से पृथक् कर भाष्य करना अयुक्त है तथा पारस्परिक संबंध को प्रकाश में लाना युक्त है।

सूक्त का अर्थ ही है जो वचन एक सूत्र में पिरोये जाने योग्य हों। सूक्त के विभिन्न मन्त्रों के भाष्य के बीच किसी प्रकार का तालमेल न होना यह दर्शाता है कि भाष्य आन्तरिक भाव को प्रकाशित करने में असफल रहा है। सूक्त के दो मन्त्रों के भाष्य के बीच तो क्या कभी-कभी एक ही मन्त्र की पूर्वार्ध (पिछली पंक्ति) का उत्तरार्ध (आगामी पंक्ति) से तालमेल नहीं देखा गया है। इस तथ्य को प्रकाशित करने हेतु एक उदाहरण दिया जाता है– मन्त्र ऋ. १०/८८/६ (क्रमांक ५)

मूर्धो भुवो भवति नक्तमग्निर्ततो सूर्यो जायते प्रातरुद्यन।
मायामू तु यज्ञियानामेतामपः यत् तूर्णि चरति प्रजानन्॥

नक्तम् रात्रि में **अग्निः** अग्नि **भुवः** मूर्धा पृथ्वी का सिर **भवति** बना रहता है, **प्रातः** प्रातःकाल में **उद्ययन्** ऊगते हुए **सूर्यः** सूर्य के रूप में **जायते** निकलता है **यज्ञियानां** पवित्र लोगों की **एतां** इस **मायाम्** माया को **उ तु** तो (देखो) **यत्** जिसे **प्रजानन्** जानकर **तूर्णिः** शीघ्र ही **अपः** काम को **चरति** कर डालता है। (हिन्दी निरुक्त अ.७/पृ. २८)

मन्त्र के भाष्य से न तो कोई भाव प्रकट होता है, न ही पूर्व पंक्ति के भाष्य का आगामी पंक्ति के भाष्य से किसी प्रकार का तालमेल है। पवित्र लोगों की माया से क्या अभिप्राय है। उसे जानकर कौन शीघ्र काम कर डालता है? क्या अग्नि क्योंकि उसे छोड़कर कोई दूसरा कर्ता (सब्जेक्ट) मन्त्र में अभिप्रेत नहीं है। अस्तु केवल अन्वयः तथा शब्दार्थ मन्त्र के भाव को व्यक्त करने में पर्याप्त नहीं है। मन्त्र की विषय-वस्तु का निर्धारण किया जाना प्राथमिक चरण है जिसके अभाव में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सैद्धान्तिक मूलधारा से सर्वथा वंचित भाष्य का अर्थहीन होना आश्चर्य का विषय नहीं है। मन्त्र का भाष्य अध्याय ९ में देखें।

५. मन्त्रार्थ सिद्धान्तानुरूप होना चाहिये–

सर्वप्रथम वेद द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को सुनिश्चित किया जाना चाहिये। तब इन सिद्धान्तों के माध्यम से तथा इनके प्रकाश में अन्य मन्त्रों का भाष्य किया जाना उपयुक्त है ताकि सर्वतोमुखी सामञ्जस्य उभरकर सिद्धान्तों के क्षेत्र को विस्तृत करता हुआ विकसित होता जावे। अतएव वेद का दर्शन क्या है तथा वेद की सृष्टि विज्ञान की मूल एवं प्रमुख धारणाएँ क्या हैं यह सर्वप्रथम वेद की अन्तः-साक्षी के आधार पर सुनिर्धारित किया जाना अपेक्षित है तब शेष मन्त्रों को उन प्रमुख धाराओं के अनुरूप समझने का प्रयास करना एक प्रसंशनीय कदम होगा। एतदर्थ ऋग्वैदिक दर्शन (अध्यात्म विद्या) का सुव्यवस्थित प्रकाशन वेद की विचार-धारा के निर्धारण में सर्वप्रथम सोपान है।

वर्तमान ग्रन्थ में वैदिक सृष्टि विज्ञान को प्राथमिकता दी जा रही है ताकि जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है, ऋग्वेद में व्यवहृत अनेकों प्रतीकात्मक शब्दों (symbolic terms) का प्रयोग किस भौतिक स्थिति को दर्शाने के लिये हुआ है यह सुनिश्चित हो सके। दर्शन एवं विज्ञान स्वरूप से पृथक् प्रतीत होते हुए भी पूर्ण रूप से पृथक् नहीं हैं वरन् एक दूसरे के पूरक हैं। दर्शन का लक्ष्य चेतना है, विज्ञान का प्रकृति। प्रकृति एवं चेतना मिलकर संयुक्त रूप से सृष्टि को परिभाषित करते हैं। वर्तमान समय में सृष्टि उत्पत्ति विषय, (cosmology), विज्ञान का महत्वपूर्ण अंग है। सृष्टि-विज्ञान ऋग्वैदिक दर्शन का भी प्रमुख अंग है किन्तु ऋग्वैदिक सृष्टि उत्पत्ति संबंधी परिपूर्ण परिकल्पना एक ऐसी अप्सरा है जो प्रतीक प्रहरियों से रक्षित, रूपकों के अन्तःपुर में शब्दों के बहुरंगी परिधान ओढ़े सदेह होते हुए भी प्रज्ञा चक्षु के बिना अपने अस्तित्व का आभास भी नहीं होने देती। आवश्यकता है प्रतीकों का विश्वास हस्तगत कर उन्हें आधीन किया जाय, उनके संकेतों से परि-चित हुआ जावे, तब अन्तरंगता प्राप्त होगी परिकल्पना से।

सिद्धान्तों के निर्धारण के अभाव में मन्त्रों का वास्तविक भाव सर्वथा लुप्त रहता है।

६. वेद के शब्द अनेकार्थी हैं–

वेद के शब्दों का कोई जटिल कोष तैयार नहीं किया जा सकता अर्थात् किसी शब्द का एक ही अर्थ निर्धारित करना वेद की आन्तरिक साक्षी के प्रतिकूल

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वेद के शब्दों का कोष तैयार नहीं किया जा सकता वरन् यह आगाह करना है, कि वेद की शैली में शब्दार्थ लचर है, अस्तु शब्दार्थ प्रसंगानुसार मौलिक भावना को व्यक्त करने में समर्थ होना चाहिये। जैसी कि पूर्व में 'गौ' शब्द के विषय में चर्चा हो चुकी है कि 'गौ' शब्द विभिन्न अर्थों का वाचक है इसी प्रकार वेद के अन्य शब्द विभिन्न अर्थों के द्योतक होते हुए भाव को अपने गर्भ में छिपाये रहते हैं अपितु हर परिस्थिति में शब्द का एक ही नियत अर्थ लादने से मूल भाव तिरोहित हो जाता है। यह सत्य कि 'सर्वे सर्वार्थ वाचकः' वेद से अधिक कहीं भी प्रयुक्त नहीं होता। शब्द की बहुवाचकता को प्रस्थापित करने हेतु एक उदाहरण पर चर्चा की जाती है। ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त ७२ में यह पंक्ति आती है– (क्रमांक ६)

'अदितेर्दक्षो अजायत दक्षाद्वदितिः परि'

अदिति से दक्ष की उत्पत्ति हुई पुनः दक्ष से अदिति की उत्पत्ति हुई। यह विवरण रहस्यमयी है। यहाँ अदिति शब्द का प्रयोग द्विअर्थी है। मन्त्र पंक्ति में यमक अलंकार है। प्रथम अदिति शब्द मूल आद्या शक्ति का प्रतीक है (अध्याय ३ भाग १)। दुबारा आया हुआ अदिति शब्द पृथ्वी के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अदिति शब्द का साधारण अर्थ अखंड है इस अर्थ में अदिति शब्द का प्रयोग प्रवाह से स्थायी (अतएव अखंड) द्रव्यों के लिये ऋ. १/८९/१० में हुआ पाया जाता है यथा– (क्रमांक ७)

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः।

द्यौ लोक (प्रकाशित लोकों का संघात), अन्तरिक्ष, माता, पिता, पुत्र आदि अदिति हैं अर्थात् प्रवाह से स्थायी हैं। पिता के मृत हो जाने पर पुत्र, अपने पुत्र पुत्रियों का पिता होकर, पिता का स्थान ले लेता है यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है कभी ऐसा समय नहीं आता कि संसार में पिता की संज्ञा वाले व्यक्ति का अभाव हो। इसी अर्थ में पृथ्वी अदिति है क्योंकि दीर्घजीवी होने के अतिरिक्त यह प्रत्येक कल्प में पुनः पुनः रचे जाने से शाश्वत स्थान प्राप्त किये हुए हैं। अब मन्त्र का अर्थ इस प्रकार होता है–

अदितेः मूल आद्या शक्ति से **दक्षः** सृष्टि उत्पादक सामर्थ्य उत्पन्न हुई, **दक्षात्** उसी सामर्थ्य से **परि** अन्तिम परिणामस्वरूप **अदितिः** पृथ्वी उत्पन्न हुई।

७. देव भौतिक सत्ताएँ हैं–

अध्याय १० में देवों के स्वरूप का निरूपण है। देव उत्पत्तिधर्मी भौतिक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्ताएँ हैं जो आदिकाल के विभिन्न स्तरों पर उद्भूत होते हैं। सर्वप्रथम ८ देव हुए, पुनः हिरण्यगर्भ (big bang) के अनन्तर ७ देव तथा अन्तिम परिणामरूप ७ देव हुए, इनका विवरण वहीं देखें। ईश्वर के अतिरिक्त देव शब्द विद्वान् के लिये प्रयुक्त हुआ है। इसके अतिरिक्त देव शब्द भौतिक शक्तियों के लिये प्रयुक्त हुआ है किन्तु ये देवता (gods) नहीं हैं जिस अर्थ में पाश्चात्य विद्वानों ने देव शब्द लिया है अतः बहुदेववाद (polytheism) का प्रश्न ही नहीं उठता। देवों की प्रार्थना में ईश्वरीय निर्मात्री शक्ति के स्वरूप का ही चिन्तन है, उसी निर्मात्री शक्ति का वैयक्तीकरण है। ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त १२५ के ३ रे मन्त्र में इस व्यवस्था का स्पष्ट वर्णन है यथा– क्रमांक ८)

अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानां।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्॥

अहं मैं (राष्ट्री, ईश्वर के ४ नामों में से एक है निघण्टु अ. २/२२) ईश्वरीय निर्माणकर्त्री शक्ति सङ्गमनी वसूनां जहाँ तक भौतिक सत्ता गयी है वहाँ तक गयी हूँ। मैं (यज्ञियानां, यज् = संगतिकरणे) तत्त्व संगतिकरण (synthesis) की प्रथमा चिकितुषी सर्वश्रेष्ठ ज्ञानवती हूँ।

भूरि स्थात्रां अनेकों रूपों में वर्तमान (भूरि आ–वेशयन्तीम्, √विश् = प्रवेश करना) अनेकों प्रकार से प्रवेश किये हुए तां मा उस मुझे ही पुरुत्रा देवाः अनेकों रूपों में वर्तमान देव (devas in myriad forms) वि–अदधुः विविध प्रकार धारण किये हैं।

ईश्वरीय निर्माण कला अनेक रूपों में व्यक्त है। उस निर्माण कला के विभिन्न भौतिक पहलू देव संज्ञा से कहे जाते हैं। उस निर्मात्री शक्ति को देव पुरुत्रा व्यदधुः विविध प्रकार धारण करते हैं। देव ईश्वरीय निर्माण शक्ति के कार्यरूप (effects) हैं, जैसे चित्र, चित्रकार की कल्पना के साकार रूप हैं। देव स्वतंत्र चेतन सत्ता नहीं हैं न ही किसी भौतिक स्थिति के अधिष्ठाता देव या अधिष्ठात्री देवी हैं पुनः उस रूप में उनकी वंदना करने तथा उपासना करने का प्रश्न उपस्थित नहीं होता। उस भौतिक सत्तात्मक देव सत्ता की पृष्ठभूमि में ईश्वरीय निर्मात्री शक्ति की वंदना की गयी है; जिसने उस देव सत्ता को उद्भूत कर वह साकार रूप प्रदान किया है। देवी सूक्त में यही बात कही गयी है यथा–

या देवी सर्वभूतेषु शक्ति रूपेण संस्थिता नमस्तस्यै.....

देव शब्द की यथोचित व्याख्या निरुक्तकार (७/१४/१५) ने की है–

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवो दानाद् वा, दीपनाद् वा, द्योतनाद् वा, द्युस्थानो भवतीत वा

देव, दान देने से, प्रकाशित करने या उद्बोधित करने से तथा ज्योति, प्रकाश करने से तथा प्रकाश का स्रोत (ज्योतिर्पिण्ड) होने से होता है।

अतएव अन्न, खनिज दान देने से पृथ्वी, प्रकाश, ताप दान देने से सूर्य, ज्ञान से आलोकित करने से विद्वान्, गुरू एवं प्रकाश का स्रोत होने से ज्योतिर्पिण्ड, विषयों को प्रकाशित करने से इन्द्रियें एवं विभिन्न प्रकार की शक्ति प्रदान करने से सूक्ष्म, स्थूलभूत देव संज्ञा से विभूषित किये जाते हैं। ईश्वर सर्व-प्रकाशक देवाधिदेव है। अस्तु देव शब्द ईश्वर से लेकर विद्वान् पर्यन्त तथा प्रकृति या मूल शक्ति अग्नि से लेकर स्थूलभूत एवं पृथ्वी सूर्यादि लोकों के लिये प्रयुक्त होता है। इनमें शाश्वत देव ईश्वर एवं प्रकृति हैं इस कारण इन्हें महावसु कहा गया है। ईश्वर जगत का निमित्त कारण (efficient cause) तथा प्रकृति उपादान कारण (material cause) है। शेष समस्त देव या तो ईश्वर के ही उपनाम हैं, जैसे इन्द्र, अग्नि, सविता, ब्रह्मा, बृहस्पति आदि जो ईश्वर के गुणकार्य के विभिन्न पहलुओं को प्रकाशित करते हैं, या प्रकृति से उद्भूत शक्तियों के उपनाम हैं। सृष्टि उत्पत्ति क्रम में प्रकृति मूल शक्तियों (मित्र, वरुण, अर्यमा) से लेकर स्थूलभूतों तक अनेकों नाम-रूपात्मक मध्यम स्थानी वा अन्तवर्ती शक्तियों का सृजन करती है उन शक्तियों की संज्ञा देव है।

इस प्रकार देव शक्ति के दो पहलू हैं एक विशुद्ध भौतिक शक्ति के रूप में है तथा द्वितीय वह है जो उस विशिष्ट भौतिक शक्ति के साथ अनन्त ज्ञान, अनन्त क्रिया, अनन्त बल, अनन्त कर्तृत्व कौशल धारी ईश्वर के विशिष्ट अंश मात्र ज्ञान, क्रिया, बल, कौशल, रूप चेतन शक्त्यंश को, जिसने उस विशिष्ट भौतिक शक्ति का निर्माण किया है, प्रतिरोपित कर देने पर भौतिक अधिष्ठित शक्ति प्रकृति व अधिष्ठाता चेतन ईश्वर के विशिष्ट सम्मेलन से प्रकृति व आध्यात्मिक शक्ति का संयुक्त रूप उभरता है।

यही बात ऐतरेय ब्राह्मण (१/१/१) के प्रथम सूत्र में कही गयी है–

अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः परमस्तदन्तरेण सर्वा अन्या देवता।

देवों के मध्य अग्नि सबसे आदि का तथा विष्णु सबसे अन्त का स्थान है दोनों के मध्य सब देवता हैं। दो ही शाश्वत शक्तियाँ हैं मूल शक्ति प्रकृति वाचक अग्नि एवं अधिष्ठाता ईश्वर।

समस्त देवता ईश्वरीय ज्ञान एवं ईक्षण शक्ति के द्वारा मूल उपादान कारण

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप अग्नि से उत्पन्न हैं। मूल उपादान कारण प्रकृति शाश्वत होने से स्वशक्ति से वर्तमान हैं अतएव प्रकृति के अस्तित्व में ईश्वरीय ज्ञान, ईक्षण शक्ति का योगदान शून्य है। अतः अग्नि में केवल प्रकृति अंश है इसलिये यह देवों की आदि सीमा है। ईश्वरीय ज्ञान, ईक्षण शक्ति की प्रथम किरण इसी सीमा से कार्यरत होना आरम्भ होती है अनन्तर अग्नि से (क्रियात्मक प्रकृति से) अनेकों मध्यवर्ती दिव्य सत्ताएँ ईश्वरीय ज्ञान, इच्छा, योजना, रचना, सामर्थ्य, संगतिकरण सामर्थ्य के परिणाम-स्वरूप उद्भूत होती हैं। इन मध्यवर्ती सत्ताओं (देवों) में प्रकृति अंश के अतिरिक्त ईश्वरीय ज्ञान, क्रिया, कर्तृत्व कौशल का अंश भी विद्यमान है अतः इनका स्थान दोनों के मध्य का है किन्तु सर्व ज्ञान, सर्व शक्ति, सर्व कौशल केवल स्वयं ईश्वर में ही निहित है अतः इस सर्वज्ञ शक्ति का वाचक विष्णु सर्वोच्च सत्ता है। इसीलिये कहा गया है–

तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम् ॥

व्यापक परमेश्वर के उस परम वेद्य सर्वोच्च स्वरूप को विद्वान् सदैव फैले हुए प्रकाश की तरह नेत्र से अर्थात् प्रत्यक्ष की तरह देखते हैं।

पुनश्च (ऐ. ब्रा. १/४/५) अन्यत्र कहा गया है–

'अग्निर्वै देवयोनिः' अग्नि ही देवों का उत्पत्ति स्थान, उपादान कारण है।

इस प्रकार देव स्वतंत्र चेतन सत्ता नहीं हैं प्रत्युत सृष्टि उत्पत्ति क्रम में मूल शक्ति प्रकृति पर ईश्वरीय ज्ञान, क्रिया, कर्तृत्व कौशल के प्रत्यारोपण से उद्भूत मध्यवर्ती दिव्य शक्तियाँ हैं। ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त ७२ के प्रथम मन्त्र में ऋषि ने यह उद्घोष किया है–

'देवानाम् नु वयं जाना प्रवोचाम् विपन्यया'

वयं हम ऋषि देवानाम् देवों के जाना जन्म का नु निश्चय ही विपन्यया विशेष प्रकार से (प्रवोचाम्, वोचां, √वच् की लेट् लकार) प्रवचन करेंगे।

देव उत्पत्तिवान् सत्ताएँ हैं। ऋग्वेद में सत्ता को दो वर्गों में विभक्त किया गया है। एक वर्ग सतः सत् स्वरूप, अजन्मा, अविनाशी एवं स्वयंभू है तथा दूसरा वर्ग भवतः उत्पत्ति विनाशधर्मी है (ऋ. १/९६/७)। इन्हीं दो वर्गों को क्रमशः असुतानां अ-उत्पत्तिधर्मी, अनादि एवं सुतानां उत्पत्तिधर्मी कहा गया है (ऋ. ८/६४/३)। देव उत्पत्तिधर्मी वर्ग में आते हैं तो देवों की उत्पत्ति का उपादान कारण, अधिष्ठान क्या है? इसी सूक्त ७२ के आगामी मन्त्र में ऋषि कहता है–

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मणस्पतिरेता सं कर्मार इवाधमत् ।

एता सर्वनाम है प्र. पु. द्वि वचन है। यह पूर्व मन्त्र के देवों के लिये प्रयुक्त हुआ है जिनके जन्म का विशिष्ट प्रकार से प्रवचन ऋषि को अभीष्ट है। द्विवचन के प्रयोग का कारण यह है कि देवों के जन्म का विवरण देते हुए सूक्त में ऋषि ने देवों को दो वर्गों में रखा है। एक वर्ग सूक्ष्म स्थूलभूतों का अर्थात् प्रकृति की विभिन्न अवस्थाओं का है, देवों के दूसरे वर्ग में लोक (नक्षत्र, ग्रहादि) सन्निहित हैं।

ब्रह्मण: पति: ब्रह्माण्ड के स्वामी ने कर्मार इव लोहार की तरह एता दो वर्गों वाले देवों के उपादान कारण को (सं अधमत्, धम्=धौंकना) सम्यक् रूप से पकाया।

तो बात मूल उपादान कारण प्रकृति के पकाये जाने की है क्योंकि उत्पत्ति के पूर्व देवों का अस्तित्व कार्यरूप (effect) में न था वरन् उपादान कारण रूप में था। इसी उपादान कारण के पकाये जाने के अनन्तर विभिन्न चरणों में द्विवर्गी देवों की उत्पत्ति हुई। इसका सम्पूर्ण विवरण अध्याय १२ में देखें।

आदि सृष्टिकाल में केवल दो ही शक्तियाँ वर्तमान थीं देवों का निमित्त कारण ईश्वर एवं देवों की उत्पत्ति का उपादान कारण मूल क्रियात्मक प्रकृति। यह तथ्य मण्डल १०, सूक्त १२१ के अनेक मन्त्रों में अभिव्यक्त हुआ है। सूक्त का विषय 'को देवता' है। सूक्त के प्रत्येक मन्त्र में यह प्रतिष्ठापित हुआ है कि आदि सृष्टि काल में एक चेतन अधिष्ठाता देव ईश्वर एवं अधिष्ठित क्रियात्मक प्रकृति के अतिरिक्त अन्य कोई सत्ता न थी। अस्तु इस प्रश्न के उत्तर कि 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' किस देव की उपासना करें का अन्य कोई विकल्प विद्यमान नहीं है जबकि एक चेतन शाश्वत देव के अतिरिक्त अन्य कोई चेतन सत्ता वर्तमान ही नहीं है अतएव एकमेव मन्त्र प्रतिपाद्य शाश्वत ईश्वर ही है न च अन्य:, न च अन्य:।

अध्यनान्तर्गत सूक्त के प्रथम मन्त्र में कहा गया है–

हिरण्यगर्भ: समवर्तताग्रे भूतस्य जात: पतिरेक आसीत् ।

अग्रे हिरण्यगर्भ: सम्–अवर्तत आदि सृष्टिकाल में हिरण्यगर्भ सह अस्तित्ववान् था तदा तब भूतों (पदार्थों) की अवस्थाओं को उत्पन्न करने वाला एकमात्र अधिपति वर्तमान था।

आदिकाल में दो ही सत्ताएं थीं। अधिष्ठातृ भूत चेतन ईश्वर एवं हिरण्यगर्भ (महा अग्नि पिण्ड, अध्याय ६)। उस समय देवों की अनुपस्थिति, असत्ता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिष्ठापित थी, विख्यात थी (Devas were conspicuous by their absence).

सूक्त की ७ वीं ऋचा में न केवल हिरण्यगर्भ के स्वरूप की व्याख्या है वरन् उपरोक्त तथ्य की पुनः प्रतिष्ठा हुई है।

यत् ह बृहती आपः गर्भम् दधाना विश्वं अग्नि जन्यन्ती आयन्।

जब निश्चय ही बृहतीः आपः (प्लाज्मा) अपने अन्तस् में धारण किये समग्र अग्नि पिण्ड को उत्पन्न करती हुई आयी थी तदा तब देवानाम् असु एकः समवर्तत देवों का प्राण-प्रदाता एकमात्र ईश्वर सह-अस्तित्ववान् था, प्रत्युत अन्य कोई सत्ता न थी। देव सत्ता में नहीं आये थे अन्यथा 'एकः' पद सार्थक नहीं होता। मात्र देवों का प्राण-प्रदाता ईश्वर तथा देवों का उपादान कारण, (material cause) द्राव्यिक कारण बृहतीः आपः अग्नि पिण्ड के रूप में प्रकट हुआ वर्तमान था। तब देव कहाँ से आये ?

स्पष्ट है कि देवों का उपादान कारण प्रकृति की अवस्था विशेष बृहतीः आपः (इसका परिचय अ. ५, ग्रन्थ भाग १ में देखें) थी तथा देवों का शिल्पी, रचयिता ईश्वर था।

यही बात प्रकारान्त से ऐतरेय ब्राह्मण के मन्त्र में पुनः कही गयी है– (क्रमांक ९)

अग्निर्वै सर्वे देवा विष्णुः सर्वे देवा।

अग्नि ही सब देवता है विष्णु ही सब देवता है।

देवनामधारी दो ही शाश्वत शक्तियाँ हैं, मूल शक्ति प्रकृति की वाचक अग्नि एवं अधीक्षक ईश्वर वाचक विष्णु। सायण भाष्य में विष्णु के विषय में कहा गया है 'विष्लृ व्याप्तौ धातु से विष्णु शब्द है'। मूल शक्ति से सभी भौतिक देव (दिव्य शक्तियाँ) उद्भूत हुए हैं। अध्याय १२ में बताया गया है कि देव उत्पत्तिधर्मी सत्ता हैं। इस विषय में श. ब्राह्मण का मत उल्लेखनीय है–

सर्वे ह वै देवा अग्रे सदृशा आसुः।

आदिकाल में सभी देव एक जैसे थे अर्थात् सभी देव मूल शक्ति के रूप में विद्यमान थे। उस समय व्यक्तिगत रूप से पृथक्-पृथक् अस्तित्व न होने के कारण वे परस्पर भेद से रहित थे। मूल शक्ति सृष्टि उत्पत्ति क्रम के विभिन्न स्तरों, चरणों में अनेक दिव्य शक्तियों के रूप में प्रादुर्भूत होती है अस्तु अग्नि ही सर्वे देवा है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनश्च निमित्त कारण होने से चेतन अधिष्ठातृभूत सत्ता ईश्वर है रचयिता होने के नाते सभी दिव्य शक्तियों (देवों) का आदि (निमित्त) कारण है अतः प्रकारान्त से ईश्वरीय निर्माणकर्त्री शक्ति को ही देव सत्ता के रूप में प्रादुर्भूत हुआ देखा गया है। उस निर्माणकर्त्री शक्ति को देव संज्ञा से विभूषित कर उस देव संज्ञा में भौतिक देव सत्ता के नहीं वरन् ईश्वरीय निर्माणकर्त्री शक्ति के ही दर्शन किये गये हैं। उदाहरण के लिये सूर्य के पिण्ड को नहीं वरन् उस पिण्ड के निर्माता को ही पृष्ठभूमि में देखा जाता है तथा इस विशिष्ट निर्माण के लिये एक विशिष्ट नाम दिया जाता है। इस प्रकार वह देव संज्ञा ईश्वरीय निर्मात्री शक्ति की अर्थात् ईश्वर की ही बोधक बनती है। इस कारण सर्व देवा विष्णु ही हैं।

इस प्रकार देव दिव्य विभूतियाँ हैं पृथक् चेतन सत्तात्मक देवता (gods) नहीं हैं या तो ये दिव्य भौतिक शक्ति के द्योतक हैं या ईश्वरीय निर्मात्री शक्ति के। उदाहरण के लिये वरुण दिव्य शक्ति के रूप में तीन मूल तत्त्वों में से एक का द्योतक है अथवा श्रेष्ठ के अर्थ में वरणीय ईश्वर का बोधक है।

इस प्रकार ईश्वर के अतिरिक्त देव भौतिक सत्ताएँ ही हैं। देव शब्द का अर्थ देवता (gods) वैदिक साहित्य के बाद की उत्पत्ति है। अतएव ऋग्वेद में विशुद्ध एकेश्वरवाद है। बहुदेववाद की कल्पना ने वेद को समझने में अप्रत्याशित गतिरोध प्रस्तुत किया है।

इसी प्रकार 'अग्निः' शब्द का प्रयोग ईश्वर, चेतनता आत्मा, ज्ञान, मूल क्रियात्मक शक्ति (आपः), भौतिक शक्ति (इनर्जी) आदि के लिये हुआ है। अग्नि से, भौतिक अग्नि या अग्निदेव अर्थ ग्रहण करने पर मन्त्र में निहित सत्य भाव तक पहुँचना कदापि सम्भव नहीं है।

८. वेद में प्रतीकवाद है–

सबसे महत्वपूर्ण तथ्य जो वेद की शैली से संबंध रखता है वह है वेद का प्रतीकवाद। विज्ञान की तरह ही वेद की भाषा प्रतीकात्मक (symbolic) है। उदाहरण के लिये आपः का साधारण अर्थ जल है किन्तु विशिष्ट प्रतीकात्मक प्रयोग में आपः, मूल तत्त्व की क्रियाशील अवस्था का द्योतक है। जहाँ आपः शब्द मूल तत्त्व की क्रियाशील अवस्था के लिये प्रयुक्त हुआ है वहाँ उसका अर्थ जल ग्रहण करने से मूल भाव तिरोहित हो जाता है। इस प्रकार ऋग्वेद में अनेकों शब्दों का प्रयोग प्रतीकों के रूप में हुआ है जो साधारण भावार्थ के अतिरिक्त है। अस्तु संदर्भानुसार ही प्रतीकात्मक अर्थ को निर्धारित किया जा सकता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋग्वेद में विषय की अभिव्यक्ति के लिये प्रतीकवाद (symbolism) का सहारा लिया गया है इस तथ्य को सर्वप्रथम प्रकाश में लाने का कार्य लेखक ने किया है। इस ग्रन्थ में अनेकों प्रतीकों के अर्थ को वेद मन्त्रों की आन्तरिक साक्षी के आधार पर प्रकाश में लाया गया है। इस रहस्योद्घाटन से अनेकों शब्दों में निहित विशिष्ट अर्थ का अनावरण हुआ है जैसे– आपः, अश्वः, अनर्वा, घृतं, अन्नं, वज्रः आदि। कई के देवत्व (Godhood) का तिरोभाव हो उनका वास्तविक भौतिक स्वरूप उभर कर सामने आया है जैसे – अदितिः, मित्रः, वरुणः, अर्यमा, वशिष्ठः, हिरण्यगर्भः, त्वष्टा, उषा। साथ ही वृत्रः, शम्बरः आदि के राक्षसत्व का तिरोभाव हो उनके सृष्टि अवरोधक भौतिक स्वरूप का आविर्भाव हुआ है।

ऋग्वेद में क्रमबद्ध सृष्टि-विज्ञान विद्या विद्यमान है यद्यपि विचार यत्र-तत्र बिखरे हैं। सृष्टि उत्पत्ति के संबंध में ऋग्वेद की अपनी परिकल्पना (हाईपोथेसिस) है। ऋग्वैदिक सृष्टि विज्ञान का प्रतीकों में निहित अर्थों से घनिष्ट संबंध है। प्रतीकों में निहित अर्थों के अनावरण पर ही सृष्टि विज्ञान प्रकाश में आ सकती है। इस दिशा में ऋग्वेद का आन्तरिक मन्त्र भाग महत्वपूर्ण संकेत एवं साक्षी संजोये हुए है। लेखक ने ग्रन्थ में प्रतीकों के आन्तरिक भावों के अनावरण के साथ ही ऋग्वैदिक सृष्टि विज्ञान पर यत्र-तत्र बिखरे विचारों को क्रमबद्ध कर सृष्टि उत्पत्ति संबंधी एक व्यवस्थित परिकल्पना को उभारकर प्रस्तुत किया है। इस परिकल्पना का आधुनिक विज्ञान के अनेक विचारों से साम्य है। जहाँ दोनों विचारधाराओं में भेद है उसे भी स्पष्ट किया गया है। सुदूर भूतकाल में वैदिक ऋषियों द्वारा इस अद्भुत विज्ञान का प्रतिपादन अत्यन्त आश्चर्य का विषय है तथा हमें यह सोचने पर बाध्य करता है कि वे ऋषि दिव्य दृष्टि से युक्त थे। ग्रन्थ पढ़ने में बोधगम्य हो सके इस हेतु प्रस्थापित किये गये तथ्यों को यहाँ परिभाषा के रूप में प्रस्तुत किया गया है–

१. अदितिः – तीन मूल भौतिक तत्त्व मित्र, वरुण, अर्यमा के संघात (aggregate) का प्रतीक है। अनर्वन् संज्ञा अदिति की है।

२. आपः – मित्र, वरुण, अर्यमा की उद्वेलित क्रियाशील अवस्था के समग्ररूप का प्रतीक है। इस अवस्था के दूसरे नाम सलिलं, माया एवं असत् हैं।

३. बृहतीः आपः – क्रियाशील तीन मूल तत्त्वों की उस अवस्था प्रतीक है, जब इनमें परस्पर क्रिया के परिणामस्वरूप यौगिक बनते हैं। इसका दूसरा वैदिक नाम सत् है। इसमें आधुनिक विज्ञान की प्लाज्मा अवस्था सन्निहित है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४. वृत्रः – क्रियात्मक मूल तत्त्व जब तक ईश्वरीय सृष्टि विकास योजना के अन्तर्गत नहीं आता तब तक अपने आप (left to it self) वह सृष्टि निर्माण की दिशा में अक्षम रहता है। इस स्थिति में संलग्न द्रव्य अनन्तकाल तक भी सृष्टि सृजन नहीं कर सकता। मौलिक क्रियात्मक द्रव्य आपः की इस स्थिति को वेद ने वृत्रः प्रतीक में सन्निहित किया है। वैदिक विज्ञान की दृष्टि से मूल तत्त्व चक्रीय विवर्तन (cyclic reversible reaction) में उलझ जाता है जिससे उसकी मुक्ति बाह्य (ईश्वरीय) हस्तक्षेप के अभाव में संभव नहीं है।

५. शम्बरः– फ्लुइड आपः में स्वनिर्मित चक्रीय विवर्तन रूपी अनेकानेक भँवरों के समग्र रूप का प्रतीक है।

६. त्वष्टा – मौलिक किरण मंडल का प्रतीक है, इस किरण मंडल से वज्र बनता है।

७. वज्रः – फ्लुइड बृहती आपः (प्लाज्मा) के दो भागों के बीच नियोजित टक्कर (collision of masses) का प्रतीक है।

८. हिरण्यगर्भः – वज्रपात् के अनन्तर बृहतीः आपः में हुए अग्नि ताण्डव (वैज्ञानिक बिग बैंग) का प्रतीक है। इसे प्रकारान्त से मार्ताण्डम् भी कहा गया है।

९. वशिष्ठः – मित्र, वरुण के अंशों से उद्भूत कण है जो विद्युत से रहित उदासीन है। यह विज्ञान का न्यूट्रान है।

१०. उषा – सृष्टिकाल का प्रतीक है।

११. नक्तः – प्रलयकाल का प्रतीक है।

१२. अश्वः – शक्ति का, ऊर्जा का प्रतीक है।

१३. सोमः – विकिरण ऊर्जा (radiant energy) का प्रतीक है जो दो प्रकार की है इनमें से एक सर्वत्र एक-सी व्याप्त है यह आधुनिक विज्ञान की कास्मिक विकिरण है। तथा दूसरे प्रकार का सोम सूर्यादि लोकों से प्रकाश के रूप में प्रभूत होता है।

१४. मित्रः वरुणः– मित्र वरुण मौलिक कण हैं जो विपरीत चार्ज वहन करते हैं। यदि वरुण धनात्मक चार्ज्ड कणों का समुच्चय है तो मित्र ऋणात्मक चार्ज्ड कणों का समुच्चय है। ये दोनों मिलकर आधुनिक विज्ञान का द्रव्य भाग बनाते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१५. अर्यमन् – यह प्रकृति का विकिरण अंश है।
मित्र वरुण (द्रव्य भाग) और अर्यमन् (विकिरण) मिलकर सम्पूर्ण प्रकृति बनाते हैं।

१६. मातरिश्वन् – महाविस्फोट के अनन्तर अग्नि विस्फोट के परिणामस्वरूप जो प्रारंभिक संवेग उद्भूत होता है जिससे समस्त द्रव्य मण्डल का प्रसार होता है उसका प्रतीक है।

१७. वैश्वानरः अग्निः – वह भौतिक शक्ति तत्त्व है जिससे मानव में अन्य प्राणियों से उत्कृष्ट मानसिक विकास सभव हुआ है।

१८. भृगुः – प्रलयकाल में सुरक्षित रखा गया ऊर्जा तत्त्व है जो सृष्टि आरंभ में गति का तारतम्य (dynamic continuum) बनाये रखता है।

१९. अङ्गिरसः या अपस्तमं – विश्वास किया जाता है कि यह क्रियात्मक मूल तत्त्वों की सर्वोत्कृष्ट क्रियात्मक तरल अवस्था है जो विज्ञान प्रोक्त गट्स काल के द्रव्य, क्वार्क सूप आदि की प्रारंभिक तरल अवस्था का द्योतक है।

६. अन्तः साक्षी सर्वोपरि प्रमाण है –

शब्दार्थों के निर्णय के लिये ऋग्वेद की आन्तरिक साक्षी का महत्व सर्वोपरि है। प्रसिद्ध निरुक्तकार यास्क ने शब्दों के निर्वचनों को सिद्ध करने में वेद मन्त्र को अंतिम प्रमाण के रूप में सदा उद्धृत करते हुए कहा है – इत्यपि निगमो भवति। इसका वैदिक उदाहरण भी है। इसका तात्पर्य यह है कि वेद की अन्तः साक्षी सर्वोपरि प्रमाण है।

उदाहरण के लिये यहाँ 'सत्', 'असत्' शब्दों के अर्थों पर विचार करना उपादेय होगा। ऋग्वेद मण्डल १० के नासदीय सूक्त (१०/१२९/१) में यह पद आता है – (क्र. १०)

ना असत् आसीत्, नो सत् आसीत् तदानीम्।

तदानीं उस समय न असत् आसीत् न असत् का अस्तित्व था नो सत् आसीत् न सत् का अस्तित्व था।

सत् का साधारण अर्थ है वह जो त्रिकाल सत्तात्मक हो। असत् वह है जो तीनों काल में सत्ता में न हो। इन अर्थों में मन्त्रोक्त प्रतिज्ञा में एक पुनरुक्ति दोष (fallacy) है। मन्त्र में त्रिकाल सत्ता के अस्तित्व को नकारा गया है। पुनः कहा गया है असत् नहीं था। जो तीनों कालों में सत्ता में नहीं था उसके अस्तित्व को

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नकारने की आवश्यकता नहीं है। यह कहना कि 'जो नहीं था, वह नहीं था', एक दार्शनिक दोष है। अस्तु ये प्रचलित अर्थ यहाँ प्रयुक्त नहीं होते। अनन्तोगत्वा वेद की आन्तरिक साक्षी से ही यह पहेली हल हो सकती है। उसी सूक्त का ४ था मन्त्र इस पहेली के रहस्य को छिपाये हुए है। मन्त्र है– (क्र. ११)

सतो बन्धुमसति निरविन्दन्हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ।

(हृदि प्रति इष्य, √इष्=इच्छायाम का कत्वाद्यन्त पृ. ४६०) हृदय की गहराइयों में बार-बार विचार कर असति असत् में सतः सत् को बन्धुम् बाँधने की शक्ति को निर्-अविन्दन् निश्चय रूप से प्राप्त किया है, देखा है।

निर्णय हो गया कि असत् में सत् को बाँधने की शक्ति कही गयी है अस्तु असत् अत्यन्ताभाव (absolute negation) का सूचक कतई नहीं है वरन् सत्तात्मक तत्त्व है। मन्त्र का अर्थ इस प्रकार होता है कि (असत्) अव्यक्त पूर्व अवस्था में (सत्) अव्यक्त उत्तर अवस्था को निहित करने की शक्ति है। पुनः ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त ७२ के २, ३ रे मन्त्रों से इन शब्दों के अर्थ पर प्रकाश पड़ता है, यथा– (क्र. १२)

ब्रह्मणस्पतिरेता सं कर्मारइवाधमत् ।
देवानाम युगे प्रथमे ऽसतः सदजायत ॥

प्रकृति के या ब्रह्माण्ड के स्वामी ने (एता, पूर्व मन्त्र की अनुवृत्ति से) देवों के कारणभूत उपादान असतः अव्यक्त कारण को लोहार के समान अग्नि में तपाया, तब अव्यक्त कारण से सतः प्रथम परिणाम की उत्पत्ति हुई।

इस प्रकार सत् एवं असत् दोनों सत्तात्मक द्रव्य हैं जो मूल आद्या शक्ति अदिति से उद्भूत होते हैं। असत् मूल तत्त्व की सर्वप्रथम अवस्था आपः है जो साम्यावस्था भंग होने के अनन्तर सर्वप्रथम क्रियाशील अवस्था है तथा सत् आगामी अवस्था बृहतीः आपः है जिसमें यौगिक उत्पन्न होते हैं। इनका पूर्ण परिचय अध्याय ४, ५ ग्रन्थ प्रथम भाग में है।

अस्तु क्रमांक ४ के मन्त्र में यह कहा गया है कि आदिकाल में सृष्टि उत्पत्ति के आरंभ होने के पूर्व सत्-असत् का अर्थात् उपरोक्त अवस्थाओं का प्रागभाव (प्राक्-अभाव) था। उत्पत्ति के पूर्व के अभाव को प्रागभाव कहा जाता है। तात्पर्य यह है कि सत्-असत् प्रकृति में लीन थे अर्थात् दोनों अवस्थाओं का अस्तित्व नहीं था। उस समय प्रकृति मूल अवस्था में वर्तमान थी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मीमांसा बाह्य स्रोत मनुस्मृति मे भी अनुमोदित है। स्मृति अध्याय १, श्लोक ११ –

यत्तत् कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ।

वह जो सत्-असत् रूप अव्यक्त नित्य (सृष्टि का) उपादान कारण है। प्रकृति सत्-असत् आत्मिका है। श्लोक में स्पष्ट रूप से नित्य प्रकृति को सत्-असत् स्वरूपवाली कहा गया है अर्थात् सत्-असत् प्रकृति की दो वास्तविक अवस्थाएँ हैं।

इसी संदर्भ में 'असच्च सच्च परमेव्योमन्.....' ऋचा में निहित भाव को जानने हेतु ग्रन्थ भाग १, अध्याय २ देखें।

यह ध्यान रखने योग्य है कि ऋग्वेद में सर्वदा असत् सत् क्रम दिया गया है जिसका तात्पर्य यह है कि असत् पूर्व अवस्था है सत् उसके बाद की अवस्था है।

अथर्ववेद (१७/१९) में असत्-सत् का स्वरूप पूर्ण रूप से मुखरित हुआ है–

असति सत् प्रतिष्ठितं, सति भूतं प्रतिष्ठितं ।
भूतं ह भव्य आहितं, भव्यं भूते प्रतिष्ठितं ।

असत् सत् का आश्रय है, असत् में सत् का निवास है, असत् सत् का उपादान कारण है क्योंकि सत् नामक प्रकृति की अवस्था पर भूतं उत्पन्न हुआ यह वर्तमान जगत अवस्थित है, आश्रित है। भव्ये होने वाले भविष्य पर भूतं जो हो चुका है वह प्रतिष्ठितं स्थित है, भूते जो हो चुका है भूतकाल के घटनाचक्र पर भविष्य का घटनाचक्र अवस्थित है।

मन्त्र में कहा गया है कि असत् अवस्था सत् अवस्था की यथार्थ उपादान कारण है। इस प्रकार असत् सत् के स्वरूप का निरूपण होता है। मन्त्र में यह भी कहा गया है कि जो हो चुका है वैसा ही भविष्य में भी होगा। भविष्य में जैसा होने वाला है वैसा ही भूत में हुआ होगा। मन्त्र में जगत उत्पत्ति लय के त्रिकाल अविछिन्न नित्य (eternal continuum) तारतम्य की परिकल्पना है।

१०. वेद के शब्दार्थों में दर्शन के मूल्य निहित हैं–

यहाँ यह बता देना उपादेय है कि ऋग्वेद में काल के संदर्भ से तथा दिक् (space) के संदर्भ से अपरिमित (infinity) की कल्पना की उत्कृष्टता दर्शनीय है। यह कल्पना अस्तित्व विज्ञान (Meta Physics) संबंधी गूढ़तम अवधारणा के लिये अत्यन्त उपयोगी है। अपरिमित के विभिन्न पहलुओं को दर्शाने हेतु अनेक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्दों की रचना की गयी है। एक सूची जो कदापि तत्संबंधी शब्दों को परिवेष्टित नहीं करती, पृथक् अध्याय में दी गयी है।

इन शब्दों का प्रयोग अकारण, निरुद्देश्य नहीं है वरन् ये सांकेतिक शब्द हैं इनमें से किसी का भी मन्त्र में वर्तमान होना यह दर्शाता है कि मन्त्र में दर्शन संबंधी गहन विचार निहित है। इसे दृष्टि ओझलकर असाधारण स्थिति को साधारण मानकर चलने पर मन्त्र में निहित सिद्धान्त प्रकाश में नहीं आ पाता।

ऋग्वेद के सिद्धान्तानुसार सृष्टि-प्रलय का चक्र अनादि-अनन्त है (अ. २)। इस अनन्त चक्र में पृथ्वी-सूर्यादि लोकों की उत्पत्ति बार-बार होती है। इस दृष्टि-कोण से लोकों की सत्ता प्रवाह से शाश्वत है। जैसे नदी का जल प्रतिक्षण बदलता रहता है फिर भी समग्ररूप में नदी वही है, स्थाई है ऐसा कहा जाता है। इसी प्रकार प्रतिक्षण बदलने वाली दीपक की लौ का उदाहरण है जिसमें पूर्व रूप के लोप होते ही उसका स्थान आगामी रूप ले लेता है। इस प्रकार लौ एक निरन्तर वर्तमान रहने का आभास देती है। लोकों के स्थायित्व के विषय में भी यही बात प्रयुक्त है – (क्र. १३)

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्

विधाता ने (इस कल्प में) सूर्य चन्द्रादिक वैसे ही रचे जैसे कि पूर्व (सृष्टि) में रचे थे।

इस प्रकार लोक प्रवाह से शाश्वत हैं। इस दृष्टिकोण से लोकों को अमृत की संज्ञा दी गयी है अथवा इन्हें अदिति अर्थात् अखण्ड कहा गया है (ऋ. १/४६/१०)।

गीता के अहोरात्रि ऋग्वेद के नक्तोषासा हैं जो सृष्टिकाल एवं प्रलयकाल के द्योतक हैं। शाश्वत मूल्यों के विवेचन के लिये ही उत्कृष्ट पारिभाषिक शब्दों (terminology) के वैभव का विस्तार किया गया है। स्थिर मूल्यों को अस्थिर, असाधारण को साधारण मानकर चलने से ऋषियों का अपूर्व दर्शन एवं विज्ञान तिरोहित हो जाता है।

अन्त में यह ज्ञातव्य है कि ऋचाओं में प्रथमे, अग्रे, पूर्व्ये शब्द आदिकाल के लिये प्रयुक्त हुए हैं। ध्यान रहे, ये शब्द सापेक्षिक (relative) हैं अतः सापेक्षता दर्शाने वाली तुलनात्मक घटना का उल्लेख काल निर्धारण के लिये आवश्यक है। किन्तु तुलनात्मक घटना के उल्लेख के अभाव में ये शब्द काल निरपेक्ष (absolute) हो जाते हैं तब तुलनात्मक घटना के उल्लेख के अभाव में प्रश्न होता है किस घटना से पूर्व ? क्या अशोक से पूर्व ? क्या राम से पूर्व ? क्या पृथ्वी की उत्पत्ति से पूर्व ? नहीं, उससे भी पूर्व और इतने पूर्व कि जिसके पूर्व कोई घटना न घटी हो जिससे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलना की जा सके अन्यथा यह घटना पूर्व की न रहेगी। यह प्रत्येक घटना से पूर्व की होना चाहिये अर्थात् यह आदिकाल की बोधक है।

११. वेद के मन्त्र परस्पर अविच्छिन्न रूप से सम्बद्ध हैं –

यह धारणा कि मन्त्र परस्पर सम्बद्ध नहीं हैं तथा किसी मन्त्र का अर्थ अन्य मन्त्रों पर विचार किये बिना स्वतंत्र रूप से किया जा सकता है वेद की आन्तरिक साक्षी के प्रतिकूल है। वास्तविकता यह है कि मन्त्र परस्पर प्रगाढ़ रूप से सम्बद्ध हैं, मन्त्रों का विषय परस्पर जाल की तरह बुना हुआ है, किसी धागे को किसी दूसरे धागे को क्षति पहुँचाये बिना नहीं निकाला जा सकता। मन्त्र समूह से पृथक् करके किसी भी मन्त्र का अर्थ करने पर मूल धारा से कटकर बहक जाना ही अधिक सम्भव है। ऋग्वेद में आद्योपांत एक ही विचारधारा है, एक ही परिकल्पना (theory) है, एक ही मूल आधारभूत पृष्ठभूमि के ऊपर समस्त संरचना के वैभव का विस्तार है। मन्त्रों में एक ही परिकल्पना के स्थिर सिद्धान्तों को रूपकों का तानाबाना पहनाकर रहस्यमयी भाषा में छिपा दिया गया है इस बात को वेद मन्त्र स्वयं कह रहे हैं कि – (क्र. १४)

दृश्र एषामवमा सदांसि परेषु या गुह्येषु व्रतेषु। ऋ. ३/५४/५

या जो परेषु परम उत्कृष्ट, परातत्त्वों संबंधी गुह्येषु गूढ़ों, रहस्यमयी व्रतेषु सिद्धान्तों में (अवमा = सबसे छोटा, पृ. ११० कोश) सूक्ष्म (सदांसि, सदस् = आवास, कोश) स्थलों को एषाम् जिन्होंने दृश्रे देखा है, साक्षात् किया है, वे ही प्रवचन कर सकते हैं।

मन्त्रों में परातत्त्वों संबंधी शाश्वत सत्य निहित है– (क्र. १५)

ऋतस्य पदं कवयो निपान्ति गुहा नामानि दधिरे पराणि।

वैदिक कवि शाश्वत सत्य के उच्च स्थान की रक्षा करते हैं। उन्होंने हृदय गुहा में परा तत्त्वों के स्वरूप को धारण किया था।

अस्तु वेद के रहस्यों का अनावरण करने के लिये यह परमावश्यक है कि रूपक भाषा रूपी देह में निहित प्राणरूप स्थिर सिद्धान्तों को प्रकाश में लाया जावे। अनन्तर उन्हीं सिद्धान्तों के प्रकाश में मन्त्रों का दोहन किया जावे।

यहाँ यह कह देना उचित है कि यज्ञः शब्द का अर्थ सदैव अग्निहोत्र लेना उचित नहीं है। पाणिनि ने यज् धातु के अर्थ देवपूजा, संगतिकरण, दानेषु' दिये हैं। इनमें देवपूजा से भौतिक शक्तियों की पूजा अर्थात् अग्निहोत्र के भाव का ग्रहण

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है तथा चेतन देव के अर्थ में यह शब्द माता, पिता, गुरु, अतिथि आदि के सत्कार के लिये प्रयुक्त होता है। संगतिकरण के अर्थ में तत्त्व मीमांसा, सृष्टि रचना आदि अभिप्रेत हैं। इस प्रकार यज्ञ: शब्द ज्ञान यज्ञ, सृष्टि यज्ञ, राष्ट्र यज्ञ आदि अनेक व्यापक अर्थों में प्रयुक्त होता है। गीता (४/३२) में ज्ञान यज्ञ, तप यज्ञ, स्वाध्याय यज्ञ, योग यज्ञ आदि का वर्णन करते हुए कहा गया है–

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ।

ऐसे बहुत प्रकार के यज्ञों का वेदवाणी में विस्तार हुआ है। यह टिप्पणी यज्ञ: शब्द के व्यापक प्रयोग पर प्रकाश डालती है।

यज्ञ शब्द की व्याख्या करते हुए ऐतरेय ब्राह्मण ने कहा है– (अ. १/खंड ३)

(क्र. १६) (यज्ञोपि) तस्यै जनतायै कल्पते ।

यज्ञ वही है जो जनता के लिये लाभदायक हो।

व्यापक अर्थ में यज्ञ की परिभाषा इस प्रकार कही गयी है– (क्र. १७)

'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म'

सिद्धान्त का निर्णय न होने से वैदिक द्रष्टाओं के मूल आशय से बहक जाना स्वाभाविक है इस तथ्य को प्रकाश में लाने के लिये उदाहरण के रूप में वैदिक व्याकरण पृ. २८८ पर दिये गये मन्त्रांश पर विचार किया जाता है– (क्र. १८)

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति–इति–इदं विश्वं भुवनं समेति । ऋ.१०/१७/१

त्वष्टा अपनी पुत्री के विवाह की तैयारी करता है इस प्रकार यह समूचा संसार समवेत होता है।

धातु वह् = वहन करना से वहतु: का अर्थ बैल है (कोश पृ. ६११)। यहाँ वहतुं का अर्थ ढोने योग्य, वहन करने योग्य लिया जा सकता है पर 'विवाह की तैयारी' अर्थ किसी प्रकार भी उपयुक्त नहीं है। लेखक के सामने यह प्रश्न था कि इस पंक्ति का अर्थ होता क्या है अत: 'विवाह की तैयारी' अर्थ की कल्पना करना एक स्वाभाविक निष्कर्ष हो कहा जा सकता है। किन्तु सिद्धान्तानुसार तथ्य कुछ और ही है।

वास्तविकता यह है कि त्वष्टा मौलिक किरण मण्डल रूपी द्रव्य का प्रतीक है। इस शक्ति का अधिपति होने से 'त्वष्टा' ईश्वर के लिये प्रयुक्त हुआ है। यह चर्चा हो चुकी है (अ. ६, प्रथम भाग) कि रूपक भाषा में ईश्वर पिता, समष्टि आदि भौतिक सत्ता अदिति जाया (पत्नी), क्रियात्मक अवस्था पुत्र या पुत्री कहे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गये हैं। फलतः भाष्य है ईश्वर पुत्री आपः को (सृष्टि) वहन करने योग्य बनाता है इस प्रकार (वह पुत्री) यहाँ समस्त विश्व को पूर्ण रूप से ले जाती है अर्थात् उत्पन्न करती व धारण करती है। यह ध्यान देने योग्य है कि क्रियाएँ वर्तमान काल में हैं अतः ऋचा एक सर्वकालिक सत्य का प्रतिपादन कर रही है यहाँ किसी प्रकार के पौराणिक इतिहास की कल्पना का औचित्य नहीं है। इस मन्त्र की उसके सूक्त के अन्य मन्त्रों सहित विशेष विवेचना के लिये अध्याय ९ देखें।

इसी प्रकार ऋग्वेद के पुरुष सूक्त (मण्डल १०, सूक्त ९०) का प्रथम मन्त्र है– (क्र. १९)

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥

ऋचा की उत्तर पंक्ति के भाष्य में लिखा गया है (वै. व्या. ३९३) – चारों ओर से पृथ्वी को आक्रान्त कर चुकने पर वह इससे दस अंगुल बढ़ गया। पृथ्वी से दस अंगुल बढ़ गया इसका अर्थ क्या हुआ इस पर विचार करना आवश्यक है। प्रश्न यह है कि यहाँ किसकी दस अंगुल के प्रमाण से, नाप से बढ़ने की घटना घटित हुई कही गई है अन्यथा इस वाक्य का तात्पर्य समझना कठिन है। यहाँ दस अगुल के रूपक का भाव समझना है।

मन्त्र ईश्वर के सर्वव्यापकत्व को तथा उसकी देखने, सुनने आदि की शक्तियों की असीमता की बात रूपक में व्यक्त कर रहा है। न तो उसके सहस्र सिर हैं, न सहस्र आँखें। भूमिः का अर्थ यहाँ ब्रह्माण्ड है, √भू=होना (देखें निघण्टु १/३) भूः=अन्तरिक्ष। उसने ब्रह्माण्ड को (वृत्वा, √वृ=आच्छादित करना क्त्वाद्यन्त वै. व्या.) परिवेष्ठित करके **दश अंगुलम् अति अतिष्ठत्** पाँच स्थूल एवं पाँच सूक्ष्म, इन दस भूतों (पदार्थ की अवस्थाएँ) रूप दस अंगुलियों से विशिष्टता से अपने अस्तित्व को सृष्टि रूप में स्थापित किया। यह इसका अर्थ हुआ।

सर्वव्यापी में सर्वत्र दर्शन शक्ति है, सर्वत्र श्रवण शक्ति है, सर्वत्र गति है। मन्त्र का भाष्य करते समय सूक्त के अन्य मन्त्रों में निहित भावना को ध्यान में रखना श्रेयस्कर है। इसी सूक्त के अन्य मन्त्रों से यह बात स्पष्ट होती है कि भूमिः का अर्थ पृथ्वी नहीं है यथा–

पुरुष एव इदम् सर्वम् यद् भूतं यच्च भाव्यम्।

यह सब कुछ पुरुष ही है जो (कुछ भी) भूतकाल में था अथवा जो भविष्य में होगा। ऐसा पुरुष पृथ्वी तक ही सीमित क्यों रहेगा। इसी सूक्त का १४ वाँ मंत्र है–(क्र.२०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकान् अकल्पयन् ॥

(उस पुरुष की) नाभि में अन्तरिक्ष था। सिर भाग से प्रकाशित लोक पूर्ण रूप से विद्यमान हुए। चरणों से भूमि, कानों से दिशाएँ इस प्रकार लोकों की संरचना हुई। मन्त्र में विराट् पुरुष का दिग्दर्शन है कान से दिशाएँ उत्पन्न हुई ऐसी वास्तविकता नहीं है वरन् अलङ्कारिक वर्णन है। जिस विराट् पुरुष की नाभि में अन्तरिक्ष था उसने (भूमि=) ब्रह्माण्ड का ही आवरण किया न कि पृथ्वी का।

१२. ऋग्वैदिक दर्शन –

ऋग्वेद में दर्शन एवं विज्ञान का अभूतपूर्व समन्वय एवं समिश्रण है। दर्शन, विज्ञान को पृथक्-पृथक् व्यवहृत नहीं पाया जाता अतएव ऋग्वेद के ज्ञान के जिज्ञासुओं को ऋग्वेद के दर्शन पक्ष की जानकारी आवश्यक है अपितु ऋग्वैदिक दर्शन के मूल सिद्धान्तों का उल्लेख किया जाता है।

ऋग्वेद के अनुसार ईश्वर, चेतन जीव प्रजा तथा भौतिक जगत का मूल उपादान कारण प्रकृति, ये तीनों शाश्वत हैं। चेतन जीव प्रजा तथा भौतिक प्रकृति ईश्वर की दो शक्तियाँ हैं। इन दोनों शक्तियों को ईश्वर की देह कहा गया है। इस प्रकार ऋग्वेद का पुरुष, परा शक्ति (जीव प्रजा) एवं प्रकृति रूप देह सहित सर्वव्यापी अधिष्ठातृभूत चेतन सत्ता है (जैसे देहधारी जीवात्मा है)। पुरुष के दो अंश हैं, एक है देह (परा, अपरा प्रकृति) तथा दूसरा है धारणकर्त्ता चेतन। यह दर्शन पुरुष शब्द के निर्वचन 'पुरि शेते इति पुरुषः' के अनुरूप है। देह के बिना पुरुष कैसे व्यापक होगा, कहाँ व्यापक होगा। अतः देह का होना आवश्यक है। ऋग्वेद का पुरुष उपनिषदों का ब्रह्म है अर्थात् ब्रह्म तीन उपरोक्त शक्तियों का संघात है, समष्टि रूप है। ब्रह्म या पुरुष समष्टि शाश्वत शक्तियों का वाचक है अर्थात् प्रकृति व जीव सहित ईश्वर को निहित करता है किन्तु ईश्वर शब्द केवल अधिष्ठातृ भूत चेतन सत्ता का बोधक है।

ऋग्वेद जीव के निमित्त पुनर्जन्म के सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। मानव सर्वश्रेष्ठ योनि है। मानव जीवन में जीव के लिये दो लभ्य, दो प्राप्तव्य मार्ग हैं। इन्हें देवयान एवं पितृयान अथवा श्रेय एवं प्रेय मार्ग कहा गया है। देवयान अथवा श्रेय मार्ग अमृत (मोक्ष, निर्वाण) प्राप्ति का द्योतक है जबकि पितृयान या प्रेय मार्ग आगामी जन्म में पुनः माता-पिता से संयुक्त करता है अर्थात् इस मार्ग पर सफल प्रयाण से पुनर्जन्म में मानव योनि प्राप्तव्य है। मानव से निम्न कोटि की योनि प्राप्त करना पतन का द्योतक है अतः इष्ट नहीं कहा गया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अदिति (प्रकृति) अर्थात् त्रिवर्गी मूल तत्त्व स्वरूप से अविनाशी है, मूल तत्त्वों के मात्र परस्पर संयुक्तीकरण से नवीन नाम, रूपधारी द्रव्य की उत्पत्ति होती है। इस नवीन द्रव्य की संरचना (structure) में, मूल यौगिकों में भाग लेने वाले मूल तत्त्व के कण ज्यों के त्यों अपनी मूल स्थिति में वर्तमान रहते हैं उनमें किसी प्रकार का विकार नहीं होता। अतः मूल प्रकृति अविकारी, अखंड एवं शाश्वत है। (अदिति) मूल शक्ति देवों की माता आदि विशेषणों से प्रतिष्ठित है। मूल शक्ति अखंड है, वह भौतिक द्रव्य की मूल संघटक एवं मूल अवयव है किन्तु स्वयं अवयवी अर्थात् यौगिक नहीं है तदनुसार केवल यौगिक, जो संघटकों का संयुक्त रूप हैं, जिसमें अवयव (constituents) विद्यमान हैं विघटन होने पर नाम, रूप सहित लय को प्राप्त होते हैं।

यह ऋग्वैदिक दर्शन-विज्ञान का मान्य सिद्धान्त है कि सृष्टि उत्पत्ति एवं लय का क्रम एक अनन्त क्रम है। विज्ञान आज भी निश्चयात्मक शब्दों में यह नहीं कह सकती कि वर्तमान सृष्टि के पूर्व भी कोई सृष्टि थी अथवा वर्तमान सृष्टि के लय हो जाने पर भविष्य में भी कोई सृष्टि होगी। हाँ, रेडियो धर्मिता के आधार पर विज्ञान ने यह स्वीकार कर लिया है कि यह सृष्टि सदैव से ऐसी ही नहीं थी। यह सुदूर भूतकाल में मूल तत्त्वों से क्रमशः उद्भूत हुई तथा यह शनैः शनैः लय की ओर जा रही है किन्तु ऋग्वैदिक दर्शन-विज्ञान ने काल के बन्धन के परे अनन्त काल चक्र में अवस्थित हुए सृष्टि-प्रलय के अनवरत क्रम की सर्वकालिक परिकल्पना प्रस्तुत की है।

१३. आधुनिक वैज्ञानिक कास्मालाजी (सृष्टि विज्ञान) –

जगत में प्रकृति दो रूपों में व्यक्त है। एक रूप को द्रव्य भाग (matter part) कहते हैं जो कण और प्रतिकण (particle and antiparticle) का समुच्चय (aggregate) है तथा दूसरा रूप विकिरण ऊर्जा (radiant energy) है। विकिरण भी दो प्रकार का है एक प्रकार का वह है जो सूर्य की तरह प्रज्वलित लोकों से प्रकाश के रूप में प्रसारित होता है। दूसरे प्रकार का विकिरण बिग-बैंग के समय का अवशेष विकिरण है। यह विकिरण सर्वत्र व्यापक है तथा यह एक-से मान वाला है। यह विकिरण समग्र गुरुत्वाकर्षण बल (universal force of gravitation) का आधारभूत तत्त्व है। इस विकिरण की खोज अत्याधुनिक (१९६२) है इसकी खोज का श्रेय दो फ्रेन्च वैज्ञानिक आरनो पेन्जियाज और राबर्ट विलसन को है।

सर आईन्सटीन के सूत्रों के आधार पर आधुनिक विज्ञान ने बिग-बैंग

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(माडेल) प्रतिमान तैयार किया है। इस थियोरी (परिकल्पना) के अनुसार वर्तमान सृष्टि एक महाविस्फोट से आरंभ हुई। इस थियोरी को बिग-बैंग थियोरी कहते हैं। इस विस्फोट के आरंभ को शून्य काल कहते हैं। शून्य काल की स्थिति ज्ञात नहीं है क्योंकि जब आईन्सटोनियन समीकरणों में $(t = 0)$ समय का मान शून्य रखा जाता है तब चर राशियाँ (variables) अनन्त (infinite) हो जाती हैं अतः शून्य काल को महाविस्फोट की स्थिति माना गया है। विज्ञान ने उस समय के क्षण के (10^{-33}) अरबों भाग के निकट की स्थिति तक का ज्ञान उपलब्ध किया है। उस समय क्षण के अत्यन्त सूक्ष्म भाग (करोड़वें) में भी पदार्थ की दशा बदल रही थी। विशेष ज्ञान क्षण के दस हजारवें भाग अर्थात् ·०००१ सेकेन्ड के समय से है। इस कारण समय को (Standard time) प्रमाणित काल कहते हैं।

प्रमाणित काल पर द्रव्य का तापमान १० लाख × १० लाख (million × million) केलविन (–२७३ केलविन = ३° सेन्टी.) था। उस अति उच्च तापमान पर मौलिक कण (fundamental particles) अपने मूल स्वरूप में अत्यन्त क्रियाशील (violent state) अवस्था में थे। इस तापमान पर प्रोटान, न्यूट्रान संयोजन (union) संभव न था। इस कारण उस समय परमाणु की नाभिक (जो प्रोटान न्यूट्रान दो कणों का संयुक्त रूप है) भी अस्तित्व में न आई थी। अतः परमाणु (atom) के अस्तित्व में आने का प्रश्न ही नहीं उठता। उस समय के द्रव्य भाग को जो तरल रूप में था प्लाज्मा कहा गया है जो आठ प्रकार के मौलिक कणों का समष्टि रूप था, संघात था। ये आठ प्रकार के मौलिक कण थे– इलेक्ट्रान, प्रोटान, पाजोट्रान, न्यूट्रान, म्यूओन, न्यूट्रीनो, एन्टीम्यूओन, एन्टीन्यूट्रीनो। इनके अतिरिक्त विकिरण थी।

यह ध्यान में रखा जाना चाहिये कि प्रकृति के दोनों रूप द्रव्य भाग और विकिरण की सत्ता सर्वकालिक है ये दोनों भाग हर समय विद्यमान रहते हैं चाहे आदि काल हो या अन्य काल। अस्तु उस समय प्रकृति के दोनों भागों–द्रव्य भाग एवं विकिरण के मध्य निरन्तर मन्थन (constant churning) तथा विनिमन भी हो रहा था जिसका तात्पर्य यह है कि विकिरण कण-प्रतिकण में विभक्त हो रही थी साथ ही कण-प्रतिकण मिलकर विकिरण में परिवर्तित हो रहे थे। पर बिग-बैंग के समय रेडियेशन का द्रव्य भाग पर वर्चस्व था। जिसका तात्पर्य यह है कि विकिरण भाग का घनत्व द्रव्य भाग से अधिक था। प्रमाणित समय पर विकिरण का घनत्व प्रति घन सेन्टीमीटर में ४ हजार मेट्रिक टन था (4 thousand million kilogrammes per litre).

विस्फोट के समय अर्थात् शून्य काल से ही पदार्थ (matter) का प्रसार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरन्तर होता रहा जिससे तापमान तीव्रता से क्रमशः गिरता रहा। शून्य काल के लगभग ३ मिनिट बाद तापमान करीब $.8 \times 10^9 K$ हो गया। इस तापमान पर पहले ड्यूटेरियम (deuterium) नाभिक (one proton + one neutran) अनन्तर हीलियम नाभिक (२ प्रोटान + २ न्यूट्रान का संयुक्त रूप) बनकर तैयार हुआ। उस समय न्यूट्रान प्रोटान का (ratio) अनुपात १३:८७ था अतः लगभग २६ प्रतिशत हीलियम बन गया। इस प्रकार नाभिक (nucleus) की रचना हो जाने पर परमाणु रचना की दिशा में प्रथम चरण पूरा हुआ। ध्यान रहे परमाणु की संरचना (constitution) में दो भाग होते हैं एक केन्द्रक (नाभिक = nucleus) और दूसरा केन्द्र के चारों ओर परिभ्रमण करने वाले इलेक्ट्रान। नाभिक में इलेक्ट्रान की उपयुक्त संख्या जुड़ जाने पर एक विशिष्ट परमाणु बन जाता है इस प्रकार अनेकों प्रकार के परमाणु होते हैं। इनमें परस्पर भेद का कारण नाभिक में कणों की संख्या तथा चक्कर लगाने वाले इलेक्ट्रान की संख्या पर निर्भर है।

शून्य काल से लगभग ३० मिनिट के बाद तापमान ३० हजार लाख डिग्री सेन्टी. था उस समय द्रव्य हाईड्रोजन और हीलियम नाभिक में परिवर्तित हो गया था। किन्तु यह तापमान भी काफी उच्च था जिसमें परमाणु रचना संभव न थी अतः पर्याप्त समय (सात लाख वर्ष) बाद जब तापमान ४ हजार डिग्री सेन्टी. हो गया तब परमाणु रचना संभव हुई अर्थात् जो नाभिक बन गये थे उनसे इलेक्ट्रान कण संयुक्त हो गये। इस प्रकार आरंभ में हाईड्रोजन और हीलियम परमाणु द्रव्य के प्रमुख भाग थे तथा अन्य प्रकार के परमाणु भी अस्तित्व में आये। इस समय के द्रव्य को कास्मिक मेटर कहा गया जिसमें हाईड्रोजन हीलियम परमाणुओं का अनुपात ७४ : २६ था। लाखों वर्ष बाद गैलेक्सी, नक्षत्र, सूर्य अस्तित्व में आये। नक्षत्रों से ग्रहों की व इसी तरह सूर्य से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। सृष्टि की वर्तमान आयु १० से २० अरब वर्ष है।

बिग-बैंग के समय का जो अवशेष विकिरण (relic of big bang) था वह सर्वत्र फैल गया (यह वेद का आकाश तत्त्व है)। इस विकिरण ने समग्र गुरुत्वाकर्षण बल को उद्भूत किया जिससे ज्योतिर्पिण्डों में सन्तुलन की स्थिति उत्पन्न हुई।

१४. ऋग्वेद में दर्शन-विज्ञान का अपूर्व समन्वय है –

पूर्व अनुच्छेद में ऋग्वैदिक दर्शन संबंधी कुछ विचारों पर चर्चा हुई है विशेष चर्चा यहाँ संभव नहीं है। ऋग्वेद में सृष्टि उत्पत्ति संबंधी पूर्ण परिकल्पना है। आदि सृष्टिकाल के लिये प्रथमे, अग्रे, पूर्व्ये आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है ये

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांकेतिक शब्द हैं। साथ ही अजर, अक्षर, अज, अमृतादि शब्द जिनकी चर्चा अनुच्छेद ५ में हुई है सांकेतिक हैं। जहाँ ये शब्द प्रयुक्त हुए हैं वहाँ कोई गम्भीर चर्चा हुई है ऐसा समझना चाहिये।

ग्रन्थ के प्रथम भाग में यह प्रस्थापित किया जा चुका है कि अपने मूल स्वरूप में प्रकृति (अदिति) त्रिवर्गी है ये तीन वर्ग क्रमशः मित्रः, वरुणः एवं अर्यमा हैं। मित्र व वरुण परस्पर विरुद्ध धर्म (गुण) वाले हैं तथा अर्यमा इन दोनों से विलक्षण है। मित्र एवं वरुण विरुद्ध विद्युत (चार्ज) वहन करते हैं। मित्र-वरुण प्रकृति का द्रव्य भाग बनाते हैं तथा अर्यमा उदासीन विकिरण हैं। मूल प्रकृति जिसे ऋग्वेद में अदिति कहा गया है मित्र, वरुण, अर्यमा का संघात है, समष्टि रूप है। आदिकाल में प्रकृति के तीन अंश जब क्रियाशील हो जाते हैं तो वह अवस्था ऋग्वेद में आपः प्रतीक से जानी जाती है। अनन्तर तीन अंशों की परस्पर क्रिया से यौगिकों की उत्पत्ति होती है प्रकृति की यह अवस्था बृहतीः आपः प्रतीक से विज्ञेय है यह आपः का विस्तार है। मित्र-वरुण के अंशों के संयोग से एक उदासीन कण वसिष्ठः की उत्पत्ति होती है जो आधुनिक विज्ञान का न्यूट्रान है। विकास के क्षेत्र में प्रकृति दो भागों में विभक्त हो जाती है ऋग्वेद में एक भाग को सोम कहा गया है जो भौतिक विकिरण का प्रतीक है तथा दूसरे भाग को पूषा कहा गया है जिससे वनस्पति एवं जैविक (biological) तत्त्व उद्भूत होते हैं। इन तथ्यों की चर्चा ग्रन्थ के प्रथम भाग में हो चुकी है। इस भाग में सृष्टि उत्पत्ति के विषय में ऋग्वैदिक परिकल्पनाओं पर विस्तृत चर्चा की गयी है।

सृष्टि विज्ञान में अपेक्षाकृत रूपक भाषा का प्रयोग अधिक है। इस भाषा से परिचित होने के लिये यह आवश्यक है कि रूपकों का आधार क्या है उसे समझ लिया जावे। रूपक अलङ्कार के लिये ईश्वर पिता, मूल प्रकृति (अदिति) ईश्वर की पत्नी, प्रकृति की क्रियाशील अवस्था (आपः) पुत्र या पुत्री, प्रकृति का प्रथम परिणाम (यौगिकों का संघात) पौत्र माना गया है।

विज्ञान से तुलनात्मक अध्ययन–

अब ग्रन्थ में वर्णित ऋग्वैदिक सृष्टि विज्ञान का आधुनिक सृष्टि विज्ञान के साथ तुलनात्मक अध्ययन करते हुए सारांश दिया जाता है। पूर्व अनुच्छेद में यह बताया जा चुका है कि विज्ञान के अनुसार प्रकृति अपने आप को दो रूपों में व्यक्त करती है – द्रव्य (matter) एवं विकिरण (radiation)। ऋग्वेद के अनुसार आदि सृष्टिकाल में प्रकृति अपने मूल स्वरूप में विद्यमान थी। प्रकृति के इस

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौलिक स्वरूप को अदिति, माता (mother cause) एवं देवी (divine power) आदि संज्ञाओं से प्रतिष्ठित किया है। अदिति त्रिवर्गी है इसके तीन वर्ग हैं – मित्र, वरुण एवं अर्यमा। मित्र एवं वरुण कण रूप हैं तथा परस्पर विरुद्ध धर्मी विद्युत वहन करते हैं। यदि वरुण विज्ञान का धनात्मक कण संघात है तो मित्र ऋणात्मक कण समुदाय है। इस प्रकार मित्र एवं वरुण प्रकृति का द्रव्य भाग बनाते हैं तथा अर्यमा उदासीन विकिरण तरंगें हैं। सृष्टि में नियोजित होते ही मित्र, वरुण, अर्यमा क्रियाशील हो जाते हैं। आदिकाल में वरुण क्रिया करने में अग्रगामी है-

'अयं हि नेता वरुणो ऋतस्य'

विज्ञान के अनुसार हेड्रन्स जो धनात्मक विद्युत वहन करने वाले कण हैं वे सर्वाधिक क्रियाशील हैं और आदिकाल में पहल करते हैं। अनन्तर मित्र, अर्यमा मूल तरल को उद्वेलित करते हैं।

मित्रो राजाना अर्यमा अपः धुः।

प्रकृति की इस उद्वेलित अवस्था को आपः या माया कहते हैं। अनन्तर परस्पर क्रिया प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप अष्टवर्गी परिणामों की उत्पत्ति होती है-

अष्टौ पुत्रासो आदेतिर्ये जाताः तन्वस् परि।

इस समग्र तरल का नाम बृहती आपः है जो आपः का विस्तृत रूप है। यह बृहती आपः आधुनिक विज्ञान की प्लाज्मा अवस्था है। विज्ञान के अनुसार प्लाज्मा अष्टवर्गी है अतः ऋग्वैदिक परिकल्पना वैज्ञानिक अन्वेषण के अनुरूप है।

प्रमुख भेद –

विज्ञान में उन आदि परिस्थितियों का ज्ञान उपलब्ध नहीं है जिनके कारण महाविस्फोट होता है। विज्ञान महाविस्फोट के पूर्व की स्थिति से पूर्णतयः अनभिज्ञ है इसके विपरीत ऋग्वैदिक विज्ञान में महाविस्फोट के पूर्व की स्थिति की परिकल्पना है। ऋग्वेद के अनुसार आदिकाल में मूल तत्त्वों में एक ऐसी स्थिति निर्मित हो जाती है कि प्रकृति (भौतिक सत्तात्मक पदार्थ) अपने आप विकसित होने में असमर्थ हो जाती है। प्रकृति के स्वाभाविक गुण के कारण उस समय के तरल में क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं का चक्रीय क्रम (cyclic reversible reaction) प्रस्थापित हो जाता है जिसके कारण विकास क्रम अवरुद्ध हो जाता है। ऋग्वेद ने इस स्थिति को वृत्रः प्रतीक में निहित किया है। समस्त तरल में क्रिया-प्रतिक्रिया के अनेकों केन्द्र उद्भूत हो जाते हैं इन केन्द्रों के चारों ओर एकत्रित हो द्रव्य (around centres of mass) क्रिया-प्रतिक्रिया रूप चक्रीय विवर्तन में संलग्न हो जाता है। इस प्रकार सम्पूर्ण तरल क्रिया-प्रतिक्रिया के अनेकों केन्द्रों में विभक्त हो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है। इन मात्रा केन्द्रों (centres of mass) को शम्बर के सौ किले कहा गया है तथा सम्पूर्ण स्थिति को वृत्र या शम्बर कहा गया है। यह १०० की गिनती वास्तविक नहीं है प्रतीकात्मक है। उस समय विज्ञान के अनुसार प्रकृति के द्रव्य भाग (matter) और प्रकृति के विकिरण भाग के मध्य निरन्तर मन्थन और विनिमय हो रहा था अर्थात् द्रव्य भाग का परिवर्तन विकिरण में और विकिरण का विभाजन कण-प्रतिकण में हो रहा था। विश्वास किया जाता है कि इसी क्रिया-प्रतिक्रिया के चक्रीय क्रम को ऋग्वेद ने वृत्र की संज्ञा दी है तदनुसार—

$$\text{वृत्र} = \text{विकिरण} \rightleftarrows \text{कण} + \text{प्रतिकण}$$

इस वृत्र स्थिति में आपः में विकास अवरुद्ध हो जाता है। यह स्थिति ऐसी है जिसका अन्त अपने आप नहीं हो सकता। अस्तु इस वृत्र-स्थिति के उन्मूलन हेतु ईश्वरीय हस्तक्षेप की आवश्यकता है अन्यथा प्रकृति सृष्टि विकास क्रम की ओर अनन्तकाल तक भी उन्मुख नहीं हो सकती। इस प्रकार ऋग्वैदिक सृष्टि विज्ञान के अनुसार सृष्टि उत्पत्ति हेतु ईश्वर का होना अनिवार्य है। यह ऋग्वैदिक सृष्टि विज्ञान का आधुनिक विज्ञान से प्रमुख भेद है।

एक महत्वपूर्ण साम्य— वृत्र स्थिति के द्वारा निर्मित गत्यवरोध (deadlock) के निवारण हेतु ईश्वर (इन्द्र) द्वारा वज्र संधान किया जाता है। वज्र प्रहार उस समय विद्यमान तरल की विशाल मात्राओं के मध्य टक्कर एवं संघर्षण (collision of huge masses) का प्रतीक है।

वज्र द्रव्य की मात्रा की सघनता का द्योतक है—

ध्यान रहे, विज्ञान के अनुसार उस समय विकिरण तथा द्रव्य अत्यधिक सघन थे (एक घन सेन्टीमीटर विकिरण की मात्रा = ४ हजार टन)। ईश्वर द्वारा इस वज्रपात के परिणामस्वरूप समग्र द्रव्य मण्डल प्रज्वलित हो गया था। ऋग्वेद में इस घटना को हिरण्यगर्भः या मार्तण्डम् प्रतीकों में निहित किया गया है जिसे आधुनिक विज्ञान में बिग-बैंग कहते हैं। यह दोनों विचारधाराओं में एक महत्वपूर्ण साम्य है। विज्ञान में बिग-बैंग के कारण का ज्ञान उपलब्ध नहीं है। विज्ञान केवल यह जानती है कि महाविस्फोट हुआ था, क्यों हुआ था, किन परिस्थितियों के कारण हुआ था इससे वह अनभिज्ञ है। विज्ञान में बिग-बैंग के पूर्ववर्ती अनुबन्ध (initial conditions) क्या थे इसका कोई ज्ञान उपलब्ध नहीं है किन्तु ऋग्वेद में बिग-बैंग की पूर्ववर्ती अवस्था का विवरण वृत्र-वज्र के रूपक में निहित है।

ऋग्वेद के अनुसार मूल शक्ति के क्रियात्मक होने के अनन्तर १४ हजार ४ सौ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष के उपरान्त शम्बर की स्थिति पूर्ण रूप से दृढ़ (mature) हो जाती है तब इन्द्र द्वारा वज्र संचालन होता है अर्थात् ऊर्जाओं की विशाल मात्राओं की टक्कर का नियोजन होता है जिससे महाग्नि पिण्ड उद्भूत है इस प्रकार बिग-बैंग की पूर्ववर्ती स्थिति पर प्रकाश डालती है तथा ऋग्वेद के अनुसार सृष्ट्यारम्भ बिग-बैंग के १४ हजार ४ सौ वर्ष पूर्व होता है। ऋग्वेद के उषाकाल (ब्रह्मदिन) का आरम्भ पूर्ववर्ती है अर्थात् ऋग्वेद का शून्य काल पूर्ववर्ती है।

ऋग्वेद का सोम: विज्ञान की विकिरण का पर्याय है। विज्ञान के वर्गीकरण के अनुरूप सोम भी दो प्रकार का है। आदिकाल में प्रकृति के द्रव्य भाग पर सोम (विकिरण) का वर्चस्व था इस वैदिक परिकल्पना का विज्ञान से महत्वपूर्ण साम्य है। ऋग्वेद के अनुसार आदिकाल में इन्द्र (ईश्वर) ने सोमपान किया। यह तथ्य इस बात का प्रतीक है कि ईश्वर ने विकिरण को अपने देहभूत आकाश में एकत्र कर सघनीकृत किया। इस कृत्य को रूपक भाषा में वज्र रचना किया जाना कहा गया है। वज्र अष्टवर्गी द्रव्य से बना, इसे त्वष्टा ने बनाया था, वज्र रचना में अष्टवर्गी प्लाज्मा और विकिरण का संयोजन हुआ था।

मातरिश्वन् व सप्तवर्गी परमाणु रचना–

महाविस्फोट के बाद विज्ञान के अनुसार द्रव्य में मण्डलाकार (spherical) प्रसार आरम्भ हुआ यह आदिकाल में आरम्भ हुआ प्रसार आज भी जारी है जिसे (expanding universe) प्रसारित होने वाला विश्व या गैलेक्सियों का प्रसार कहते हैं। ऋग्वेद में इस स्थिति का प्रतीक मातरिश्वा है जिसे वेद में मूल शक्ति का श्वास लेना कहा गया है इसका विवरण अध्याय १० में है।

इस प्रसार के फलस्वरूप तापमान में गिरावट आती है। महाविस्फोट के कुछ काल बाद परमाणु रचना आरम्भ हो जाती है ऋग्वेद में इस अवस्था को अर्द्धगर्भः कहा गया है जिसका तात्पर्य है भ्रूणावस्था, अन्तरिम अवस्था। यह अवस्था नाभिकीय अवस्था (nuclear state) एवं (molecular state) अणु अवस्था की मध्यवर्ती है अर्थात् यह परमाणु अवस्था है। ऋग्वेद में इसे सप्तवर्गी कहा गया है। दर्शन में इस अवस्था को तन्मात्रा (तत्–मात्रा) कहते हैं जो इकाई द्रव्य (element) की वह छोटी से छोटी मात्रा है जिसमें इकाई द्रव्य का स्वरूप बना रहे और यह है विज्ञान का परमाणु। विज्ञान से ज्ञात होता है कि समस्त प्रकार के परमाणुओं (atoms) को मेन्डलीफ के पीरियाडिक वर्गीकरण के अनुसार परमाणु संख्या (atomic number) के आधार पर सात अवस्थाओं (periods)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में विभाजित किया जा सकता है। इस प्रकार ऋग्वेद के वर्गीकरण एवं विज्ञान के प्रयोगजन्य वर्गीकरण में साम्य है।

ऋग्वेद में सप्तवर्गी परमाणु अवस्था को प्रकारान्त से सप्तसिन्धु प्रवाह कहा गया है यह सप्तसिन्धु प्रवाह हिरण्यगर्भ (big bang) के अनन्तर आकाश में प्रभूत हुए थे। यह विवरण दिक् (space) में परमाणु रचना के विस्तार का द्योतक है।

परमाणु रचना के पश्चात् गैलेक्सियों की उत्पत्ति हुई। अनन्तर कुछ केन्द्रों पर कास्मिक मेटर एकत्र होने लगा। सर्वप्रथम भ्रूण पिण्ड जन्म लेते हैं फिर ये पिण्ड गैलेक्सी की अक्ष पर भ्रमण करते हुए और कास्मिक मेटर एकत्र करते-करते क्रमशः बड़े होते-होते वृहदाकार हो जाते हैं तथा कास्मिक मेटर में नाभिकीय क्रियाओं से प्रकाशमय प्रज्वलित पिण्ड, जिसे नक्षत्र (सूर्य) कहते हैं, में विकसित हो जाते हैं। कालान्तर में कुछ नक्षत्रों से ग्रहों की उत्पत्ति होती है इसी प्रकार सौर्य मण्डल में ग्रहों और पृथ्वी की उत्पत्ति हुई है। यह सम्पूर्ण विवरण आधुनिक विज्ञान समर्थित है जो अध्याय १२ में दिया गया है। प्रकृति के एक भाग से रासायनिक जगत और दूसरे भाग से वनस्पति तथा प्राणि जीवन होता है। अध्याय ३ में मूल शक्ति, ऊर्जा का, नक्षत्रों का, पृथ्वियों के वर्गीकरण का विवरण वेद से दिया गया है।



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय २

उषा रहस्य एवं सृष्टि प्रलय काल

इस अध्याय में ऋग्वेद की आंतरिक साक्षी के आधार पर वैदिक प्रतीक उषा में निहित अर्थ को प्रकाश में लाया गया है। वैदिक प्रतीक उषा सृष्टि रचना काल के लिये प्रयुक्त होता है।

वैदिक द्रष्टाओं के अनुसार यही सृष्टि प्रथम और अन्तिम नहीं है। दिन और रात्रि की तरह सृष्टि काल और प्रलय काल एक के बाद एक चक्रीय क्रम से आते हैं। यह चक्र अनादि अनन्त है। प्रसंगानुसार वेद मन्त्रों में आयी रात्रि, प्रलय रात्रि की द्योतक है तथा सृष्टि काल के लिये उषा का प्रयोग किया गया है। वास्तव में ईश्वरीय निर्माण शक्ति की ही उषा के रूप में स्तुति की गयी है। यह सत्य वेद मन्त्रों में निहित है। वेद की अन्तः साक्षी से ही सम्पूर्ण तथ्य को प्रकाश में लाना अभिप्राय है।

ऋग्वेद मण्डल १ के सूक्त ११३ का ऋषि कुत्स आंङ्गिरस है। सूक्त का देवता अर्थात् विषय उषा है। सूक्त में प्रलय रात्रि व सृष्टि काल रूपी उषा के अनन्त चक्र का विशद वर्णन है। सूक्त के ३ रे मन्त्र की व्याख्या दी जाती है। मन्त्र है– (क्र. २१)

समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देव शिष्टे।
न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे॥

भाषार्थ — स्वस्रोः दोनों बहनों का (अध्वा = अध्वन् = मार्ग पृ. ६२९) मार्ग अनन्तः असीम काल चक्र में समानः बराबर अवधि का है। तं उस मार्ग पर देव शिष्टे ईश्वर की आज्ञानुसार अन्या अन्या पृथक्-पृथक् क्रम से चरतः विचरण करती हैं अर्थात् एक के पीछे एक आती हैं। विरूपे एक दूसरे से विरुद्ध स्वभाव वाली नक्तोषासा प्रलय रात्रि और उषाकाल समनसा समान चित्त वाली सुमेके सुसंगत होकर (न मथेते, √मथ् = विडोलना, लट् ल.) न मार्ग पर डगमगाती हैं, न तस्थतुः न रूकती हैं।

मन्त्र में साधारण पार्थिव दैनिक उषाकाल की चर्चा नहीं है। दैनिक उषाकाल की अवधि दिन के बराबर नहीं होती तथा उषाकाल के पश्चात् रात्रि नहीं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आती, वरन् दिन आता है। साधारण दैनिक उषाकाल देवशिष्टे नहीं है। यह सूर्य से संचालित है। अनन्तकाल चक्र में एक के पीछे एक जाने वाली सुसंगत बराबर-बराबर कालावधि वाली केवल प्रलयकाल रूपी रात्रि एवं सृष्टिकाल रूपी उषा हैं। इनका विरुद्ध स्वभाव है, एक का शनैः शनैः सृष्टि उत्पत्ति करना, दूसरे का शनैः शनैः सृष्टि को लय करना तथा ये समान चित्त वाली इसीलिये हैं क्योंकि ये ईश्वरीय व्यवस्था के अंग हैं, ईश्वरीय आज्ञा का पालन करती हैं। अपने क्रम को भंग नहीं करतीं यदि प्रलय न हो तो आगामी सृष्टि की उत्पत्ति कैसे संभव होगी। अतः दोनों का लक्ष्य एक ही है, सृष्टि चक्र को अबाध गति से चलाना। इस प्रकार दोनों विरूपे होते हुए भी समान चित्त वाली एवं सुसंगत हैं। अपने-अपने कार्य को पूर्ण करती हैं, जो देव निर्दिष्ट है। सूक्त के ११ वें मन्त्र में ऋषि ने उषाओं के विषय में जो रहस्यमी बातें की है अब उन पर विचार किया जाता है। मन्त्र है - (ऋ. २२)

ईयुष्टे ये पूर्वतरामपश्यन् व्युच्छन्तीमुषसं मर्त्यासः।
अस्माभिरू नु प्रतिचक्ष्याभूदो ते यन्ति ये अपरीषु पश्यान्॥

भाषार्थ — ये मर्त्यासः जिन मरणधर्माओं ने (वि उच्छन्तीम् = उत् शमृतीम् √शम् = उपशमे) विविध प्रकार प्रकाश देने वाली, आध्यात्मिक शान्ति देने वाली पूर्वतराम् उषसं प्राचीन उषा को अपश्यन् देखा है, ते उन्हें अस्माभिः प्रतिचक्ष्या हमारे द्वारा देखे गये (निश्चयात्मक ज्ञान) तक उ नु अवश्य ही (इयुः √इ, विधि लिङ्.) पहुँचना चाहिये। ये जो (अपरीषु = भविष्यत वै. व्या. पृ. २८०) भविष्य में आने वाली उषाओं में (अभूत्, भू = होना की लुङ्. धातु) हो गयी उषा को (पश्यान्, √पश् लेट्) देखेंगे ते वे आ उ यन्ति निश्चय ही (शान्ति को) प्राप्त होते हैं।

मन्त्र अत्यन्त गूढ़ दार्शनिक विचारों से परिपूर्ण है। सूर्य से होने वाली उषाएँ नवीन या प्राचीन भेद रहित हैं, सभी एक-सी होती हैं। यहाँ ऋषि सृष्टि प्रलय के शाश्वत चक्र में अवस्थित हुई, शाश्वत चक्र में जुड़ी हुई उषाओं, सृष्टियों की बात कर रहा है सूर्य प्रदत्त उषा की नहीं। वह कह रहा है कि जो मरणधर्मा, जो संक्षिप्त जीवन धारण करने वाले, पानी के बुलबुले की तरह अल्पजीवी होकर भी सृष्टि प्रलय के शाश्वत चक्र में पूर्व में हुई विगत उषाओं को (सृष्टियों को) देखते हैं, वे दर्शन के रहस्यों को समझते हैं जिन्हें हम द्रष्टाओं ने देखा है कि यही सृष्टि प्रथम और अन्तिम नहीं है। जो यह जानते हैं कि इस सृष्टि के लय होने पर पुनः सृष्टि होगी वे शाश्वत मूल्यों को जानते हैं, तथा शाश्वत सुख की प्राप्ति हेतु

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यत्नशील रहते हैं उन्हें अवश्य वह शाश्वत, सनातन ज्ञान प्राप्त हुआ होगा जो वैदिक द्रष्टाओं का अभिप्रेत है।

मन्त्र के दूसरे भाग में पूर्व कथन को भविष्य में होने वाली उषाओं (सृष्टियों) के संदर्भ से दुहराया है कि जिन मरणधर्माओं को यह निश्चयात्मक ज्ञान है कि यह वर्तमान चल रही सृष्टि भविष्य में आने वाली सृष्टियों के क्रम में है (सृष्टि-प्रलय शाश्वत चक्र में विवर्तन कर रहे हैं, परिक्रमा कर रहे हैं) वे ही वर्तमान सृष्टि में शाश्वत मूल्यों की प्राप्ति में यत्नशील हो शांति को प्राप्त होंगे।

विज्ञान ने परमाणु की आयु के निर्धारण के आधार पर यह आज स्वीकार किया है कि करोड़ों वर्ष पूर्व अव्यवस्थित मूल भौतिक तत्त्व से शनैः शनैः जगत उद्भूत हुआ किन्तु आज भी वैज्ञानिक विश्वासपूर्ण शब्दों में यह नहीं कह सकते कि इस सृष्टि के लय होने पर भविष्य में भी पुनः सृष्टि होगी। विज्ञान में अभी भी यथास्थितिवाद वाला मत विद्यमान है तब वैदिक द्रष्टाओं ने किस आधार पर भविष्य में होने वाली घटनाओं का निश्चयात्मक ज्ञान देने की उद्घोषणा की थी तथा सृष्टि प्रलय के अनादि अनन्त काल-चक्र की परिकल्पना प्रस्तुत की थी वह आज भी विचारकों के लिये एक पहेली है। पूर्व परिच्छेदों में जिस दर्शन का दिग्दर्शन किया गया है वह काल्पनिक नहीं, वास्तविक है। ऋषि ने स्वयं १३ वें मन्त्र में उषा रहस्य का उद्घाटन किया है। मन्त्र है– (क्र. २३)

शश्वत् पुरोषा व्युवास देव्यथो अद्येदं व्यावो मघोनी,
अथो व्युच्छादुत्तराँ अनु द्यूनजरामृता चरति स्वधाभिः।

भाषार्थ— देवी उषा ईश्वरीय कृति सृष्टिकाल रूपी प्रभात बेला **पुरा** अतीत से ही (**शश्वत्** = स्थायी, नैरन्तर्येण होने वाला, वै. व्या. पृ. ६८४) अनादि चक्र में (**वि-उवास**, वि उपसर्ग = श्रेष्ठ, अद्भुत, वस् = चमकना की लिट् ल., पृ.५५४) श्रेष्ठ, अद्भुत रूप से प्रकाशित करती आयी है। **अथो** अतः **अद्य** वर्तमान में **मघोनी** ऐश्वर्यशालिनी **इदं** यहाँ **वि आवः** श्रेष्ठ प्रकार से रक्षा कर रही है। **अजरा** जरा रहित, नित्य **अमृता** अक्षय, अविनाशी **स्वधाभिः** स्व-धारणावती शक्तियों से, अपने अस्तित्व के लिये बाह्य कारण पर जो निर्भर न हो, स्वयंभू शक्तियों से **अनु चरति** शनैः शनैः चल रही है, अपना कार्यकाल पूरा कर रही है **अथो** अपितु **उत्तरान् द्यून** आगामी सृष्टिकाल को भी **वि उच्छात्** श्रेष्ठ ढंग से प्रकाशित करेगी।

मन्त्र में ४ दार्शनिक संकेत शश्वत्, अजर, अमृत तथा स्वधावान हैं। ऋचा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में अमृत, अजर और शश्वत् विशेषण सूर्य उषा के लिए प्रयुक्त होने का प्रश्न ही नहीं उठता। सूर्य उषा स्वयंभू नहीं है अपने अस्तित्व के लिये सूर्य पर, पृथ्वी के अपने कील पर घूमने पर आश्रित है। मन्त्र में यह स्पष्ट रूप से बताया गया है कि उषाकाल समाप्त नहीं हुआ है वरन् धीरे-धीरे खिसक रहा है। यह लक्षण सूर्य उषा पर घटित नहीं होता। अस्तु जैसा कहा जा चुका है उषा सृष्टिकाल के लिये प्रयुक्त हुआ है, जो अनादि-अनन्त काल-चक्र में पुनः पुनः उद्भूत होने से अमृत है, अविनाशी है, प्रवाह से शाश्वत है। कर्त्ता ईश्वर तथा द्राव्यिक कारण अदिति (प्रकृति) इन दो स्वयंभू सत्ताओं का सम्मिलित गुण होने से सृष्टि-प्रलय चक्र स्वयंभू एवं अनादि-अनन्त है उसी की चर्चा सूक्त का विषय है। शाश्वत अजर, अमृत, स्वधावान ये दर्शन (मेटाफिजिक्स) के मूल्य हैं, चरम तत्त्व के लक्षण हैं जो निष्प्रयोजन प्रयुक्त नहीं हुए।

सृष्टि-प्रलय शाश्वत एवं स्वधावान क्यों है इस विषय पर ऋग्वेद मण्डल ३, सूक्त ५५ में विशद विवेचन है। सूक्त का ऋषि प्रजापति वैश्वामित्रः वा वाच्यः हैं। सूक्त का ६ वाँ मन्त्र एक रूपक के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है उस पर यहाँ विचार किया जाता है, यथा– (क्र. २४)

शयुः परस्तादध नु द्विमाताबन्धनश्चरति वत्सः एकः,
मित्रस्य ता वरुणस्य व्रतानि महद्देवानामसुरत्वमेकं।

भाषार्थ— परस्तात् सृष्टिकाल के परे, पूर्व शयुः व्यापक होकर कारण रूप से सोने वाला अध अनन्तर नु निश्चय ही द्विमाता दो माताओं–सृष्टि, प्रलय का एकः वत्सः एक ही पुत्र–यह भौतिक कार्य जगत अबन्धनः अप्रतिबंधित, निर्द्वन्द होकर मित्रस्य वरुणस्य ता व्रतानि मित्र वरुण के अनेक नियमों में चरति विचरण करता है देवानां प्राकृतिक दिव्य शक्तियों का महत् असुरत्वं महान् प्राण रूप धारक बल एकं एक ही केन्द्रिय व्यवस्था में है।

यहाँ अबन्धन शब्द का प्रयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सृष्टि और प्रलय प्राकृतिक नियमों पर आधारित हैं। ये ऋतानुसार प्राकृतिक बहाव के अनुसार होते हैं। मूल प्रकृति से, मूल तत्त्वों से विकास की क्रिया कालान्तर में सृष्टि के रूप में प्रस्फुटित होती है तथा लय भी शनैः शनैः विपरीत क्रम में होता है। यह समस्त प्रक्रिया प्रकृति की, मूल तत्त्वों की स्वयंभू, अप्रतिबंधित स्व-शक्ति पर अर्थात् प्रकृति के गुणों पर आधारित है। ईश्वर ने अपनी सर्वज्ञता से इस अप्रतिबंधित शक्ति को एक केन्द्रिय व्यवस्था में पिरो दिया है, अतः यह भौतिक कार्य जगत इन दो धुरियों, इन दो छोरों–सृष्टि-प्रलय, रचना-लय के बीच में गमन करता है, घड़ी के पेन्डुलम

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की तरह दो छोरों के बीच अप्रतिबंधित गति करता है (घड़ी के पेन्डुलम के सिम्पल हारमोनिक मोशन की तरह)

वैदिक सिद्धांत धार्मिक सिद्धांतों से विलक्षण हैं। वेद का ईश्वर सर्व शक्तिमान नहीं है, जिस अर्थ में धार्मिक सिद्धांतों का ईश्वर है। वेद के ईश्वर की शक्ति प्रकृति की स्वयंभू शक्ति से प्रतिबंधित है। ईश्वर केवल ऋतानुसार, स्वयंभू प्रकृति के गुण, स्वभावानुसार ही सृष्टि रचना एवं प्रलय कर सकता है।

इसी सूक्त के प्रथम मन्त्र में यह बताया गया है कि प्राकृतिक नियम किस प्रकार उद्भूत होते हैं, मन्त्र है– (क्र. २५)

उषसः पूर्वाः अध यद् व्यूषुर्महद्विजज्ञे अक्षरं पदे गौः।
व्रता देवानामुप नु प्रभूषन् महद्देवानामसुरत्वमेकं ॥

भावार्थ— (गौः, गौः इति पृथिव्याः, आदित्यः, अपि गौः, निरुक्त अ. २, पाद २, अतः सामान्यतः गौः=लोक) लोकों की **पदे** उत्पत्ति के प्रथम चरण में, मूल में **महत् अक्षरं** महान् अविनाशी शक्ति **विजज्ञे** प्रगट हुई थी।
पूर्वाः उषसः विगत सृष्टि कालों की भाँति **अध** तब **यत्** जो **वि–ऊषुः** उषाकाल सर्गारम्भ हुआ **नु** निश्चय ही **देवानाम् व्रता** समस्त महाभूतों, ज्योतिर्पिण्डों के प्राकृतिक नियमों ने (उपसर्ग उप=समीपता) प्रकृति (मूल तत्त्वों) के गुणों की सन्निकटता से प्र प्रकर्षता से **भूषन्** सुशोभित करते हुए **देवानां** प्राकृतिक दिव्य शक्तियों, लोकों की **महत् असुरत्वं** महान् शक्ति को **एकं** बाँधने वाली एक केन्द्रिय व्यवस्था में किया।

मन्त्र में यह कहा गया है कि लोकों की, सृष्टि की उत्पत्ति के मूल में, आदि कारण रूप शाश्वत मूल तत्त्वों की अविनाशी, आधारभूत महान् शक्ति प्रगट होती है। इसी शक्ति की वृद्धि और विकास के समस्त भौतिक प्राकृतिक नियम अस्तित्व में आते हैं। प्रत्येक उषाकाल–सर्गारम्भ में, सृष्टि आरम्भ काल में लगभग एक-सी ही प्रक्रिया एक केन्द्रीय व्यवस्था के अन्तर्गत होती है।

ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त ६२ का ऋषि नोधा गौतम है वा देवता इन्द्र है। सूक्त के १० वें मन्त्र में सृष्टिकाल–प्रलयकाल को ईश्वर की दो अमर धर्म वाली पत्नी के रूपक से व्यक्त किया गया है, मन्त्र है– (क्र. २६)

सनात् सनीला अवनीरवाता व्रता रक्षन्ते अमृताः सहोभिः।
पुरू सहस्रा जनयो न पत्नीर्दुवस्यन्ति स्वसारः अह्रयाणम् ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ— **सनीडाः** एक स्थान में रहने वाली, **अवाता** न प्रवाहित होने वाली अर्थात् प्रवाह से स्थिर **अमृताः पत्नीः** सनातन पत्नियाँ **अवनीः** धरती की तरह विशाल, **जनयः न** पुरुष जैसे स्त्रियों की रक्षा करते हैं वैसे **सहोभिः** बलों से **सनात्** सदा ही, सनातन काल से **पुरु सहस्रा वृता रक्षन्ते** अनेक (प्राकृतिक) नियमों की रक्षा करती हैं। **स्वसारः** वे बहनें (**ह्रयाणम्**, ह्री = लज्जित होना के शानजन्त ह्रयाण से पृ. ५८०) साहसी (इन्द्र) की **दुवस्यन्ति** सेवा करती हैं।

सृष्टि रूपी उषाकाल तथा प्रलयावस्था रूपी रात्रिकाल ये दोनों (इन्द्र) ईश्वर की सनातन पत्नी हैं, सूर्य की नहीं अर्थात् शाश्वत ईश्वर द्वारा सृष्टि-प्रलय अबाध क्रम रूपी शाश्वत (दिन रात की तरह बार-बार आने के कारण बहुवचन का प्रयोग हुआ है) चक्र नियंत्रित है। यह शाश्वत चक्र सहस्रों नियमों, प्रकृति के शाश्वत गुणों और मूल्यों पर आधारित है। जिस प्रकार पत्नी का पति के आश्रय-भूत स्वतंत्र अस्तित्व होता है वैसे ही इन सनातन पत्नियों का ईश्वरीय छत्रछाया में स्वतंत्र अस्तित्व है और ईश्वर उन पत्नियों का रक्षक है।

इसी सूक्त के ८ वें मन्त्र पर विचार किया जाता है, मन्त्र है (क्र. २७)

सनात् दिवं परि भूमा विरूपे पुनर्भुवा युवती स्वेभिरेवैः।
कृष्णेभिरक्तोषा रुषद्भिर्वपुर्भिराचरतो अन्यान्या ॥

भाषार्थ — **विरूपे पुनर्भुवा** विपरीत रूप वाली, बार-बार उत्पन्न होने वाली **युवती** दो सदा युवा रहने वाली, नित्य **स्वेभिः** अपनी स्वशक्तियों के **एवैः** द्वारा ही (**सनात्**, सना = पुरातन से, अनादि पृ. ३४५, चिरकाल पृ. २८० वै. व्या.) अनादि काल से **दिवं** द्युलोक से **भूमा** पृथ्वी तक की **परि** परिक्रमा कर रही हैं। **अक्ता कृष्णेभिः** रात्रि काली देहों के द्वारा **उषा** सृष्टिकाल **रुषद्भिः** चमकीले **वपुभिः** देहों से **अन्या अन्या आ चरतः** एक दूसरे के पीछे स्वभाव से चलती हैं।

मन्त्र में उषा और रात्रि को एक अनन्त काल चक्र में एक दूसरे के पीछे घूमने वाला निरूपित किया गया है। विदित है कि रात्रि के अनन्तर उषाकाल आता है किन्तु सामान्य सूर्य उषाकाल के अनन्तर रात्रि नहीं आती। अतः मन्त्र आख्यात रात्रि-उषा, प्रलयकाल व सृष्टिकाल के द्योतक हैं। दूसरा तथ्य यह है कि सूर्य उषाकाल व रात्रि (स्वेभिः) स्वशक्तियों से उदय अस्त नहीं होते, पृथ्वी के भ्रमण पर आधारित हैं। अतः मन्त्र में सृष्टि, प्रलयकाल ही अभिप्रेत हैं। इस सूक्त के ७, ९, ११, १२ व १३ वें मन्त्र में सनातन शब्द प्रयुक्त हुआ है जो निरुद्देश्य नहीं है। १३ वें मन्त्र में यह पद आता है–

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सनातये ब्रह्म अतक्षत्'
शाश्वत मूल्यों के लिये वेद मन्त्र रचा गया है।

स्थल २ पर ऋग्वेद में शाश्वत मूल्यों की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है। ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त ५ का ४ था मन्त्र कहता है– (क्र. २८)

ऋतायिनी मायिनी सं दधात मित्वा शिशुं जज्ञतुर्वर्द्धयन्ती,
विश्वस्य नाभिं चरतो ध्रुवस्य कवेश्चित्तन्तुं मनसा वियन्तः।

भाषार्थ — ऋतायिनी ऋत्=सत्य प्राकृतिक नियमों को धारण करने वाली सृष्टि तथा मायिनी विनाशकारी प्रलय रात्रि दोनों सं दधाते सम्यक् रूप से धारण करती हैं। उन दोनों ने शिशुं बालक को (मित्वा, मा=मापना धातु का कत्वाद्यन्त पृ. ५३७) युक्त परिमाण से वर्द्धयन्ती बढ़ाते हुए जज्ञतुर् प्रकट किया है। कवेः मनसा क्रान्तदर्शी कवि मन की कल्पना से विश्वस्य समस्त जगत को नाभिं बाँधने वाले मूल के ध्रुवस्य स्थायी, शाश्वत एवं चरतः परिवर्तनशील चित् तन्तुं कुछ धागों को, कुछ सूत्रों को वियन्तः विशेषता से ले जाने वाले हैं।

तो बात विश्व की नाभि की है, जगत के मूल कारण की है, शाश्वत तत्त्वों की है, ध्रुव मूल्यों की है, यहाँ कोई घटिया किस्म की चर्चा नहीं है, सूर्य उषा की चर्चा नहीं है, यहाँ सृष्टि उत्पत्ति-प्रलय के सूत्रों को परिकल्पना में पिरोया जा रहा है। जगत के मूल में शाश्वत कारण क्या है और परिवर्तनशील द्रव्य का उद्भव कैसे हुआ इन दोनों के बीच तत्त्वदर्शियों ने विवेक किया है।

ऋग्वेद मण्डल ७ के सूक्त ७६ का ऋषि वसिष्ठ है और देवता उषा है। सूक्त के ३ रे मन्त्र में ईश्वरीय (रचनात्मक) शक्ति रूपी वेद प्रतिपादित प्रतीक उषा और सूर्य से उत्पन्न उषा में स्पष्ट रूप से भेद का निरूपण किया है। मन्त्र है– (क्र. २९)

तानीदहानि बहुलान्यासन् या प्राचीनमुदिता सूर्यस्य,
यतः परि जार इवाचरन्त्युषो ददृक्षे न पुनर्यतीव।

भाष्य— तानि उन उषाओं के, उन सृष्टि कालों के (या, बहुवः, नपु.लि.बै.व्या.) वे इत् ही बहुलानि बहुत से अहानि दिन सूर्यस्य सूर्य के उदिता उदय के, जन्म के प्राचीनं बहुत पूर्व काल के, में आसन् हुए थे। अनेक सृष्टियों में होने वाले रचना काल को निहित करने के तात्पर्य से बहुवचन "तानि" का प्रयोग है।

पार्थिव उषाकाल की अवधि सूर्योदय पूर्व अति संक्षिप्त होती है तथा उषा-काल सूर्योदय से अभिन्न रूप से संयुक्त है, सूर्योदय के अभाव में अर्थात् सूर्य के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभाव में उषाकाल का होना असम्भव है किन्तु मन्त्र में जिस उषा की बात है वह सूर्य के अभाव में अति प्राचीन काल से विद्यमान थी, वह सूर्य से किञ्चित मात्र भी संबद्ध नहीं थी। ध्यान रहे मन्त्र में आया पद "उदिता प्राचीनं" है, "उदिता पूर्वम्" नहीं है, यह उषाकाल सूर्योदय के पर्याप्त अवधि पूर्व बहुत दिनों तक वर्तमान रहा तब जाकर सूर्योदय हुआ। उषा के दिनों की बात भी एक पहेली है उषाकाल का बहुत दिनों तक वर्तमान रहना सूर्य उषा पर घटित नहीं होता।

मानलो उषा के १० वर्ष व्यतीत हो जाने पर सूर्योदय हुआ तो क्या सूर्योदय १० वर्ष तक स्थगित रहा ? अतः यहाँ बात सूर्य उत्पत्ति की हो रही है। उषाकाल सृष्टिकाल का बोधक है। मन्त्र में 'तानि' बहुवचन है अर्थात् अनेक उषाएँ हो चुकी हैं, अनेक सृष्टिकाल बीत चुके हैं उसके अनन्तर ही यह वर्तमान सृष्टिकाल प्रादुर्भूत हुआ है तथा इस सृष्टिकाल का पर्याप्त समय व्यतीत हो जाने पर सूर्य की उत्पत्ति हुई है। इस प्रकार मन्त्रोक्त उषाकाल सृष्टिकाल का ही द्योतक है। मन्त्र रचना में यह अभिप्रेत है कि उषा के बहुत से दिन सूर्य उत्पत्ति के अनन्तर भी हो गये हैं अर्थात् पर्याप्त सृष्टिकाल व्यतीत हो चुका है।

यतः क्योंकि जारः पति परमेश्वर इव की तरह आचरन्ती आचरण करती हुई उषः उषा पुनः फिर कभी यती सन्यासिनी, पति को त्यागने वाली इव की तरह न दृश्ये नहीं दिखाई दी।

पूर्व मन्त्रों में यह बताया जा चुका है कि उषा और प्रलय रात्रि ईश्वर की दो सनातन पत्नियाँ हैं। ये पति के नियमों के, परम्परा के अनुरूप वर्तती हैं अर्थात् ये ईश्वरीय शाश्वत नियमों में बँधी हैं। उनका परित्याग नहीं कर सकतीं।

वास्तव में ईश्वरीय दो शक्तियों सृजनात्मक शक्ति को उषा और विघटनात्मक शक्ति, विसर्जनात्मक शक्ति को रात्रि की संज्ञाओं से विभूषित किया गया है। ईश्वर के दो बाहु हैं, एक बाहु मूल कारण को जगत के रूप में निर्माण करने वाला सृजनात्मक शक्ति रूप है और दूसरा रचे हुए जगत को मूल कारण में पुनः परिवर्तित करने वाला प्रलय रूप है। यह तथ्य ऋग्वेद ४/५३/३ में निहित पाया जाता है, मन्त्र है– (क्र. ३०)

आप्रा रजांसि दिव्यानि पार्थिवा श्लोकं देवः कृणुते स्वाय धर्म्मणे।
प्र बाहू अस्राक् सविता सवीमनि निवेश्यन् प्रसुवन्नक्तुभिर्जगत्॥

भावार्थ— सविता जगत उत्पादक ईश्वर ने (सवीमनि, प्रेरित होने पर, निरु. ६/७) प्रेरित होने पर बाहू दो शक्तियां (प्र-अस्राक्, धातु सृज् = बाहर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकालना, लुङ्. धातु स् रूप प्र. पु. एक व. पृ. २१४) विशिष्टता से बाहर निकाली अक्तुभिः प्रलय रात्रियों के द्वारा जगत् जगत को निवेशयन् मूल कारण में छुपाता हुआ तथा दिन काल में (दिव्यानि रजांसि, लोकाः रजांसि उच्यन्ते, निरुक्त ४/१९) दिव्य लोकों व पार्थिवा जीवप्रजा के आश्रय योग्य पृथ्वीवत् लोकों की प्र-सुवन् विविध रूप में उत्पत्ति करता हुआ उनमें (आ अप्राः √प्रा लुङ्.स्) व्याप्त हुआ है। स्वाय धर्म्मणे अपनी धर्म व्यवस्था को प्रकट करने के लिये देवः परमात्म देव श्लोकं वेदवाणी को कृणुते रचता है।

लगभग इसी बात को गीता ने अपने श्लोक (१८/१८) में व्यक्त किया है –

अव्यक्ताद् व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे,
रात्र्यागमे – प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्त संज्ञके।

अव्यक्त, सूक्ष्म, मूल तत्त्व से सब जगत व्यक्त दशा में हुआ है। दिन के आगमन पर प्रगट होता है तथा रात्रि के आगमन पर तत्र एव उसी पूर्व अव्यक्त अवस्था में प्रवेश करता है। पदार्थ का नाश नहीं होता। यह अव्यक्त से व्यक्त और व्यक्त स्थूल अवस्था से पुनः उसी पूर्व अव्यक्त सूक्ष्म मूलभूत रूप में जाता है इन दो अवस्थाओं के बीच परिभ्रमण करता है। यह वैदिक विचारधारा का प्रसार है।

ऐतरेय ब्राह्मण की आख्यायिका में उषा का स्वरूप –

ऐतरेय ब्राह्मण का एक आख्यान (पञ्चिका १/अ.२/खं.१) उषा के वास्तविक स्वरूप के विषय में प्रकाश डालता है।

यज्ञ देवों के पास से चला गया। वे देव न कुछ कर सके, न ही कुछ जान सके। उन्होंने अदिति से प्रार्थना की कि तुम्हारे प्रसाद से हम यज्ञ को जानने में समर्थ होवें। उसने कहा– अच्छा, किन्तु मैं तुम लोगों से एक वर का वरण करती हूँ। उसने यह वर माँगा कि यज्ञ मुझसे ही प्रारम्भ हो तथा मुझ पर ही समाप्त हो। उन्होंने कहा– ऐसा ही होगा। उसने यह वर भी माँगा कि मेरे ही द्वारा तुम सब प्राची दिशा को जानो।

इस कथा का तात्पर्य यह है कि अदिति मूल शक्ति है, सृष्टि यज्ञ अदिति से आरम्भ होता है, अदिति से सभी भौतिक शक्तियाँ (देव) उद्भूत होती हैं, प्रलय-काल में अदिति में ही लीन होती हैं। देव अपनी सत्ता के लिये अदिति पर आश्रित हैं। प्राची दिशा का महत्व क्या है इस विषय पर आगामी सूत्र में प्रकाश डाला गया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्व दिशा में अवस्थित पथ्या देवता का यजन होता है इसलिये यह आदित्य पूर्व दिशा में उदित होता है। यह पथ्या देवता कौन है? इस विषय पर भाष्यकार भट्ट भास्कर (ऐतरेय ब्रा. भाष्य से उद्धृत) कहते हैं– (क्र. ३१)

अदितेरेव खल्ववस्थान्तरम् उषो लक्षणं पथ्यास्वस्तिरुच्यते ।
पथि साध्वी पथ्या शोभनविभूति हेतुः प्रजानां स्वस्ति
यत्र चोषा उदेति सा प्राची भवति ।

इसका तात्पर्य यह है कि उषा लक्षण वाली सभी अवस्थाओं में अवस्थान्तरित होने वाली मूल शक्ति अदिति को ही 'पथ्या स्वस्ति' कहा जाता है ।

पथ की रक्षा करने वाली पतिव्रत पारायणी होने से साध्वी है । क्रमांक ७ के मन्त्र में उषा को ईश्वर की सनातन पत्नी कहा गया है जो पति ईश्वर के व्रता रक्षन्ते अमृताः सहोभिः व्रत की पारायण है ईश्वर के निर्देशानुसार प्रलय के अनन्तर सृष्टि उद्भव करती हुई सनातन काल चक्र में परिभ्रमण कर रही है। सृष्टिकाल के उदय का सूर्य उदय से साम्य के आधार पर उषा देवता के लिये प्राची दिशा निर्धारित की गयी है । यज्ञ में किया जाने वाला यह यजन अदिति (या उषा) से सर्गारंभ होने का द्योतक है। सोमयाग में किया जाने वाला कर्मकाण्ड सृष्टि उत्पत्ति विषयक परिकल्पना की प्रकारान्त से पुनरुक्ति है ।

इस प्रकार सृष्टिकाल रूपी उषा अनादि-अनन्त काल-चक्र में अवस्थित होने के कारण अदिति है, अखंड है, अभेद्य है । अदिति मूल तत्त्व संघात (aggregate) है, मूल आद्या शक्ति है, उषा मूल शक्ति की कला है जो इस प्रकार तत्त्व से जानता है वह ऋग्वेद के रहस्य को जानता है ।



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय ३

मूलशक्ति, नक्षत्र, अन्तरिक्ष, ऊर्जादि का वर्गीकरण

ऋग्वेद में नक्षत्र, अन्तरिक्ष, ऊर्जादि का वर्गीकरण किया गया है इस अध्याय में उस वर्गीकरण पर प्रकाश डाला गया है।

ऋग्वेद के मन्त्रों में मूल आद्या भौतिक शक्ति को त्रिवर्गी कहा गया है। मन्त्रों में नक्षत्रों (सूर्यों) को तीन प्रकार का कहा गया है। इन तीन प्रकार के नक्षत्रों की गणना इस प्रकार बनती है। प्रथम वर्ग में वे नक्षत्र आते हैं जिनके साथ ग्रह होते हैं, जैसे कि सूर्य है जिसके साथ पृथ्वी, मंगल, बुध आदि संयुक्त हैं। दूसरे प्रकार के वे नक्षत्र हैं जिनके साथ ग्रह नहीं होते तथा तीसरे प्रकार के वे नक्षत्र हैं जो समूहों में पाये जाते हैं इन्हें ज्योतिष की भाषा में राशि कहते हैं। प्राचीन भारतीय ज्योतिर्विदों को अनेकों राशियां ज्ञात थीं। दो आकाशीय पिण्डों के बीच की दूरी को अन्तरिक्ष (inter stellar space) कहते हैं। ऋचा में तीन प्रकार के अन्तरिक्ष कहे गये हैं। यह गणना इस प्रकार की जाती है – दो नक्षत्रों (तारों) के बीच की दूरी, नक्षत्र से उसके मण्डल के ग्रह की दूरी तथा ग्रह से उपग्रह की दूरी। मन्त्र में तीन प्रकार की पृथ्वियां कही गयी है अर्थात् ऐसे लोक जिन पर प्राणि-जीवन संभव है तीन प्रकार के सृष्टि में हैं। आधुनिक विज्ञान में इस विषय में कुछ विशेष ज्ञान उपलब्ध नहीं है।

ईश्वर के तीन सामर्थ्य उत्पत्ति, संरक्षण एवं प्रलय हैं। वेद में ईश्वर को तीन पोषक शक्तियाँ कही गयी हैं ये हैं चेतना, घृतं एवं अन्नं। समग्र चेतन शक्ति को शास्त्रों में परा शक्ति कहा गया है। 'घृतं' मनोमय इन्द्रिय शक्ति (senses) का प्रतीक है अर्थात् घृतं जैविक शक्ति का प्रतीक है तथा अन्नमय शक्ति वह है जो प्राणि में रस, रक्त, मज्जादि संस्थान को तथा वनस्पति में रस का संचार करती है उस शक्ति का प्रतीक अन्नं है।

वेद में ऊर्जा को तीन प्रकार का कहा गया है। एक वह है जो आकाश में सर्वत्र व्याप्त है इसका ऋग्वैदिक नाम सोमः है। सोम शक्ति का प्रमुख लक्षण यह है कि यह समस्त लोकों के सन्तुलन में मूलाधार है। यह आधुनिक विज्ञान

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिपादित कास्मिक ऊर्जा है जो समग्र गुरुत्वाकर्षण की आधारभूता है। प्रकाश के रूप में दूसरे प्रकार की ऊर्जा सूर्य की तरह प्रज्वलित लोकों से उद्भूत होती है तथा तीसरे प्रकार की ऊर्जा विद्युत है जिसकी उत्पत्ति जलप्रपात से होती है। मन्त्र (क्र. ४६) में ऊर्जा का वर्गीकरण इस प्रकार से बताया गया है– वहाँ दो तेजों को सूर्य से प्रादुर्भूत होने वाला कहा गया है, ये हैं प्रकाश व ताप तथा तीसरे को सार्वभौमिक सत्ता वाला कहा गया है।

१. ग्रहों, नक्षत्रों, अन्तरिक्षों का वर्गीकरण–

ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त १०२ के ८ वें मन्त्र में मूल तत्त्व, लोकों तथा ऊर्जा का वर्गीकरण किया गया है, मन्त्र है– (क्र. ३२)

त्रिविष्टि धातु प्रतिमानमोजसस्तिस्रो भूमीर्नृपते त्रीणि रोचना।
अतीदं विश्वं भुवनं ववक्षिथाशत्रुरिन्द्र जनुषा सनादसि ॥

भाष्य— नृपते इन्द्र हे मानवों के पालक इन्द्र तिस्रः भूमीः तीन लोक या पृथ्वी त्रीणि रोचना तीन प्रकार के तेज तथा इदं विश्वम् भुवनम् इस समस्त ब्रह्माण्ड को ओजसः हे ओजस्वी तूने (त्रिविष्टि, विष्टिः = व्याप्ति) व्यापक धातु मूल तत्त्वों के प्रतिमानं अनुरूप (अति ववक्षिथ, √वक्ष् = बढ़ाना लिट् ल.) अतिशय बढ़ाया है। सनातन काल से तू शत्रु रहित है।

मन्त्र में यह कहा गया है कि तीन मूलभूत तत्त्व रचना की इकाई हैं इनका विवरण पूर्व (भाग १) में आ चुका है। तीन प्रकार के लोक हैं– प्रथम सूर्य की तरह प्रज्वलित पिण्ड जो नक्षत्रों के नाम से जाने जाते हैं, द्वितीय शुक्र, मगल आदि की तरह नक्षत्र की परिक्रमा करने वाले ग्रह तथा पृथ्वी की तरह वे ग्रह जो प्राणि जीवन के वास के लिये उपयुक्त हैं। तीन प्रकार के तेज अथवा ऊर्जाएँ हैं– ताप, प्रकाश और विद्युत।

मण्डल ४, सूक्त ५३ की ५ वीं ऋचा में अन्तरिक्षों के, नक्षत्रों के, पृथ्वी आदि के वर्गीकरण की चर्चा है, मन्त्र है– (क्र. ३३)

त्रिरन्तरिक्षं सविता महित्वना त्री रजांसि परिभूस्त्रीणि रोचना।
तिस्रो दिवः पृथिवीस्तिस्र इन्वति त्रीभिर्व्रतैरभि नो रक्षतित्मना॥

भाष्य — सविता जगत उत्पादक महित्वना अपने महत्व से त्रि अन्तरिक्षं तीन प्रकार के अन्तरिक्ष त्री रजांसि तीन प्रकार के लोक, ज्योतिर्पिण्ड (heavenly bodies) परिभूः को व्याप रहा है। त्रीणि रोचना तीन प्रकार के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेज (energy), त्रिसः दिवः तीन प्रकार के सूर्य पृथिवीः त्रिस्त्रः तीन प्रकार की पृथ्वी को (इन्वति, √इन्व् से) ले जाता है, चला रहा है। त्मना स्वयं के त्रिभिः व्रतैः तीन नियमों से नः हम लोगों की अभि रक्षति पूर्ण रूप से रक्षा करता है।

अन्तरिक्ष तीन प्रकार के हैं, दो नक्षत्रों के बीच की दूरी (स्पेश), द्वितीय नक्षत्र और ग्रह के बीच की दूरी जैसे सूर्य और बुध, सूर्य और शुक्र आदि के बीच की दूरी। मानलो सूर्य और बुध के बीच की दूरी ज्ञात है तो सभी ग्रहों की सूर्य से दूरी ज्ञात हो जाती है तथा परस्पर दो ग्रहों के बीच की दूरी भी ज्ञात हो जाती है। यदि सूर्य और बुध की दूरी 'क' है तो सूर्य और आगामी ग्रह शुक्र की दूरी २क होगी तथा सूर्य और पृथ्वी के बीच की दूरी ४क होगी। इस प्रकार सभी ग्रहों के बीच की दूरी ज्ञात हो जाती है। तीसरी ग्रह और उपग्रह के बीच की दूरी।

तीन प्रकार के लोक हैं – सूर्य की तरह प्रज्वलित लोक, ग्रहों की तरह ठंडे परकीय प्रकाश से प्रकाशित लोक तथा पृथ्वी की तरह जीव प्रजा के वास योग्य उपयुक्त लोक। तीन प्रकार के तेज हैं– ताप, विद्युत, प्रकाश। क्योंकि आकाश का समानार्थी शब्द अन्तरिक्ष आया हुआ है अतः दिवः का अर्थ सूर्य है आकाश नहीं। तीन प्रकार के सूर्य (नक्षत्र) हैं– ग्रहों के मण्डल से संयुक्त, ग्रहों के मण्डल से रहित (जिनके साथ एक भी ग्रह संयुक्त न हो), तीसरे प्रकार के वे हैं जो समूहों में हैं (जिन्हें ज्योतिष की भाषा में 'राशि' कहते हैं)। प्राणी जीवन के लिये उपयुक्त तीन प्रकार के पृथ्वी लोक हैं। इनका कोई ज्ञान उपलब्ध नहीं है। केवल इतना ज्ञात है कि प्राणी जीवन के लिये वायुमण्डल, पानी और एक विशेष तापक्रम की आवश्यकता है। वायुमण्डल और पानी के लिये एक विशिष्ट मात्रा में पिण्ड में आकर्षण होना चाहिये जिसके लिये पिण्ड की मात्रा (मास) भी एक सीमा से अधिक होना चाहिये ताकि वह वायुमण्डल को पृथ्वी की तरह आकर्षित करके रख सके। नक्षत्र (सूर्य) से एक विशिष्ट दूरी पर होने से ही किसी ग्रह में एक विशिष्ट तापक्रम हो सकता है जो प्राणी जीवन के लिये उपयुक्त हो।

परमात्मा के तीन स्वयं के नियम हैं– सृजन, संरक्षण और प्रलय।

२. मौलिक तत्त्वों व उनके प्रारंभिक परिणामों का वर्गीकरण–

अब ऋग्वेद मण्डल ३, सूक्त ५६ से मूल शक्तियों के महत्व एवं वर्गीकरण संबंधी विषय पर विचार किया जाता है। इस सूक्त के ऋषि प्रजापति वैश्वामित्रः वा वाच्यः हैं तथा देवता विश्वेदेवा (भौतिक शक्तियां) हैं। सूक्त का प्रथम मन्त्र है–

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(क्र. ३४) न ता मिनन्ति मायिनो न धीरा व्रता देवानां प्रथमा ध्रुवाणि।
न रोदसी अद्रुहा वेद्याभिर्न पर्वता निनमे तस्थिवांसः ॥

भाष्य— देवानाम् भौतिक शक्तियों के प्रथमा आदि, मौलिक ध्रुवाणि स्थिरों, नित्य तत्त्वों के ता व्रता उन प्राकृतिक नियमों को मायिनः कुटिल, मायावी (न मिनन्ति, धातु मी=क्षति पहुँचाना की लट् ल.) नहीं तोड़ते हैं, तोड़ सकते हैं न धीरः विचारवान् भी नहीं अद्रुहा परस्पर द्रोह रहित रोदसी प्रकाशित-अप्रकाशित लोक, पृथ्वी-आकाश न नहीं तोड़ सकते हैं, न वेद्याभिः न ही ज्ञान सम्पन्नों के द्वारा तोड़े जा सकते हैं। वे नियम (तस्थिवांसः, धातु स्था का क्वसु प्रत्ययान्त तस्थिवांस् से) अच्छी प्रकार स्थित हुए पर्वताः पर्वतों के समान (नि-ननमे, नम्=झुकना धातु का तुम. कृ.) नीचे झुकने के लिये न नहीं होते।

आगामी मन्त्र है- (क्र. ३५)

षड् भारान् एको अचरन् बिभर्त्यृतं वर्पिष्ठमुप गाव आगुः।
तिस्रो महीरुपरास्तस्थुरत्या गुहा द्वे निहिते दर्श्येका ॥

भाष्य— एकः एक अकेला अचरन् स्थिर रहता हुआ (आ उपसर्ग=) स्वाभाविक रूप से उप आगुः निकटता को प्राप्त हुई षट् गावः भारान् छै किरणों, तेजों के भार के द्वारा (वर्पिष्ठम्=उच्चतम, पृ.१३० वे. व्या) उच्चतम, अन्ततम ऋतं सत्य कारण को बिभर्ति धारण करता है तिस्रः महीः उपराः तीन पृष्ठ-भूमियों के ऊपर अत्याः सातत्य गतिशील-बाह्य (अश्व) शक्तियाँ तस्थुः स्थित हैं, द्वे शक्ति के दो रूप – एक अपां नपात् नाम से कही गयी नाभिक अवस्था, द्वितीय सप्त अर्द्ध गर्भः=तन्मात्रा=परमाणु अवस्था गुहा निहिते गूढ़ रूप से, अव्यक्त रूप से छिपे हुए स्थित हैं एका एक रूप – महाभूतों वाला विश्व दर्शि दिखाई दिया है।

मन्त्र में अचरन्=ध्रुव पद से सर्वव्यापी ईश्वर निर्दिष्ट है जो सर्वव्यापी होने से अचल है; तथा 'वर्पिष्ठम् ऋतं'=उच्चतम सत्य कारण से मूल प्रकृति अभिप्रेत है। गावः रश्मियों को कहते हैं – सर्वे अपि रश्मयः गाव उच्यन्ते निरु. २/२ तथा निघण्टु १/५। मन्त्र में यह बताया गया है कि सर्वव्यापी निश्चल ईश्वर मूल कारण प्रकृति (अदिति) को मूल कारण के अत्यन्त समीप के छै परिणामों के द्वारा सृष्टि में धारण करता है। ये छै परिणाम त्रिवर्गी मूल शक्ति से उत्पन्न होते हैं। इस विषय में इसी अध्याय का मन्त्र क्रमांक ४० देखें।

आगामी मन्त्र है- (क्र. ३६)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रि पाजस्यो वृषभो विश्वरूप उत त्र्युधा पुरुध प्रजावान्,
त्र्यनीकः पत्यतेमहिनावान्त्स रेतोधा वृषभः शश्वतीनां ।

भाष्य — **वृषभः** वर्षणशील (**त्रि पाजस्यः**, पाजः = बल, निघ. २/९) तीन रक्षण सामर्थ्यों से **विश्वरूपः** सभी रूपों को **उत** तथा **त्रि-उ-धा** निश्चय ही तीन धारणावती शक्तियों से या **त्रि-उधा** तीन स्तनरूप पोषक शक्तियों से (**पुरुध** = नाना प्रकार से, क्रि. विशे. वै. व्या. पृ. ६६५) नाना प्रकार **प्रजावान्** प्रजा को धारण करने वाला हुआ है ।

ईश के तीन सामर्थ्य हैं – निर्माण, व्यवस्था एवं लय । जब पूर्व सत्तावान् भौतिक कारण तत्त्वों (already existing material cause) से उन तत्त्वों के गुण स्वभावानुसार परस्पर संयोग द्वारा नवीन द्रव्य सत्ता में आता है तो इस नवीन द्रव्य को पूर्व विद्यमान कारण तत्त्वों का कार्य कहते हैं । अत्यन्ताभाव = अत्यन्त + अभाव (absolute negation) से कोई उत्पत्ति नहीं होती । पूर्व सत्तावान् कारण तत्त्वों से नवीन द्रव्य की रचना ईश का प्रथम सामर्थ्य है इसी सामर्थ्य से सृष्टि रचना होती है । बहुरूपी (multiferious) पदार्थ सत्ता के बीच व्यवस्था एवं तालमेल ईश का दूसरा सामर्थ्य है इस शक्ति से सृष्टि अनेकता में एकरूपता (unity in diversity) को प्राप्त होती है । विविध नाम रूपधारी पदार्थ-सत्ता को पुनः मूल कारण में लय करने की शक्ति तृतीय सामर्थ्य है ।

ईश्वर की तीन पोषक शक्तियाँ हैं – घृतं, अन्नं, चेतना । घृतं वह शक्ति है जिससे प्राणीमात्र में मन-इन्द्रिय मानसिक व्यापार संचालित होता है । अन्नं वह भौतिक शक्ति है जिससे प्राणी में दैहिक शक्ति (मोटर नर्वज) तथा वनस्पति में रस प्रवाहित होता है । घृतं तथा अन्नं का संयुक्त वैदिक नाम पूषन् है । तीसरी शक्ति चेतना = जीवात्मा (individual consciousness) है जो प्रकृति की तरह शाश्वत है जिसके स्वाभाविक लक्षण हैं ज्ञातृत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व (knowing, willing & fealing) । गीता में समष्टि जीवात्म शक्ति को परा प्रकृति कहा गया है समष्टि मूल भौतिक सत्ता को अपरा प्रकृति ।

सः वह **रेतोधाः** बहुवः पूर्वोक्त बीजरूप समग्र मौलिक सत्ताओं को धारण करने वाला **वृषभः** उन्हें वर्षाने वाला **महिनावान्** महामहिम **त्रि** तीन **शश्वतीनां** नित्यों की, सनातनों की **अनीकः** सेना का (**पत्यते**, केवल वेद में पत्य = स्वामी होना इस पद का क्रिया की तरह प्रयोग देखा जाता है, वै. व्या. पृ. ४०५) स्वामित्व करता है । ये तीन शाश्वत सेनाएँ प्रकृति के तीन वर्ग मित्र, वरुण, अर्यमा हैं ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगामी ऋचा है– (क्र. ३७)

अभीक आसां पदवीरबोध्यादित्यानामह्वे चारु नाम ।
आपश्चिदस्मा अरमन्त देवीः पृथग् व्रजन्तीः परिषीमवृञ्जन् ॥

भाष्य— इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से अनुवृत्ति है । पूर्व चर्चित त्रिवर्गी प्रकृति के लिये इस मन्त्र में 'आसां' पद आया है । (आसां, बहु व., ष. वि.) उन (आदित्यानां, ष. बहु व.) अदिति के पुत्रों, अङ्गरूपों का (अभीके, अभि = की ओर) निकटता से, सूक्ष्म रूप में पदवीः स्थिति, प्रतिष्ठित पद (अबोधि, कर्मवाच्य लुङ्., प्र. पु. एक व., वै. व्या. पृ. २३७) जाना गया है ।

इस हेतु मैं चारु नाम परमात्मा का सुन्दर नाम (अह्वे, धातु हू = बुलाना का लुङ्. मू. लोट-इन्जंक्टिव मूड, वै. व्या. पृ. ५७९) कहूँ अस्मै जिसकी (चित् = देखना, अनुभव करना, पृ. ५०५) इच्छा से देवीः दिव्य शक्तियों आपः प्रकृति के क्रियाशील तत्त्वों ने (अरमन्त, भ्वा. आत्म. √रम् = रमण करना का लङ्. ल. बहु व.) परस्पर क्रीड़ा की थी च तथा पृथक् पृथक्-पृथक् (व्रजन्तीः, व्रज = गतौ का शत्रन्त, स्त्री लि., बहु व.) मार्गों पर भ्रमण करते हुए परि चारों ओर (सीम्, निपात = पूरी तरह, अच्छी तरह, वै. व्या. पृ. ३२८) अच्छी तरह (अवृञ्जन्, धातु वृज् = वक्र करना, टेढ़ा करना का लङ्.ल.बहु व.) चक्राकार, वक्र गति की थी।

इस मन्त्र में परमाणु रचना काल की प्राकृतिक घटना का वर्णन है। ईश्वरीय ईक्षण शक्ति से त्रिवर्गी प्रकृति के तत्त्व गतिमान होते हैं पुनः आकर्षण के कारण इनका संयोग होता है । केन्द्र में एक नाभिक (nucleus) को प्रस्थापित कर कुछ अन्य तत्त्व उसके चारों ओर परिक्रमा करते हैं । इस प्रकार एक नवीन यौगिक (परमाणु) की रचना होती है । जैसे-जैसे परिवृजन (चक्राकार गति) करने वाले तत्त्वों (electrons) की संख्या बढ़ती जाती है वैसे-वैसे विभिन्न परमाणुओं की रचना होती जाती है । इस प्रकार पूर्व विद्यमान अनादि तत्त्वों के मात्र मेल (संयोग) से नवीन द्रव्यों (यौगिकों) की उत्पत्ति होती है किसी प्रकार भी अवस्तु से (शून्य से) वस्तु की, अभाव से भाव (सत्ता) की उत्पत्ति नहीं होती । यह बात मन्त्र में कही गयी है ।

सूक्त की आगामी ऋचा है– (क्र. ३८)

त्रि सधस्था सिन्धवस्त्रिः कविनामुत त्रिमाता विदथेषु सम्राट् ।
ऋतावरीर्योषणास्तिस्र अप्यास्त्रिरा दिवो विदथे पत्यमानाः ॥

भावार्थ— त्री तीन सधस्था प्राणियों के आश्रय स्थान– जैसे जल, थल, नभ या

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणि जीवन के लिये उपयुक्त पृथ्वी की तरह के तीन प्रकार के लोक सिन्धवः त्रिः तीन समुद्र उत तथा त्रि माता तीन माताएँ–ऋक्, यजु, साम (विदथेषु, विदथन् = विद्-अथ्–अन्, विद् = ज्ञाने) ज्ञान हेत्वार्थक अवस्थाओं में कविनां विद्वानों को सम्-राट् सम्राट की तरह प्रतिष्ठित करती हैं। ऋतावरी स्वस्वरूप में निहित स्वगुणों के अनुसार वर्तने वाली योषणाः स्त्रियां तिस्र तीन अप्या आपः, आद्या शक्तियाँ (विदथे, विदथन् = ज्ञान, निरु. ६/७) ज्ञानमय – सृजन कार्य के लिये त्रि दिवः तीन तेजस् शक्तियों का (पत्यमाना, वै. व्या. पृ. ४०५) आधिपत्य करती हैं।

समुद्र की तरह तीन व्यापक सत्ताएँ हैं– विस्तृत आकाशस्थ लोक, आकाशस्थ विस्तृत सूक्ष्म भूत, तथा काल। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार – लोकों से भरा आकाश, अथवा सूक्ष्म, स्थूल भूतों से भरा आकाश समुद्र कहलाता है।

इस मन्त्र का 'ऋतावरी योषणाः तिस्र अप्या' पद पूर्व मन्त्रोक्त 'देवीः आपः' के निमित्त प्रयुक्त हुआ है, देवीः के स्थान पर योषणाः व आपः के स्थान पर 'तिस्र अप्या' पद आया है। वास्तव में त्रिवर्गी प्रकृति का प्रसंग उससे भी पूर्व के मन्त्र से चला आ रहा है जहाँ उसे 'त्रि अनीकः' कहा गया है। ऋग्वेद में त्रिवर्गी प्रकृति को तीन स्त्रियों के रूपक से व्यक्त करने की कुछ प्रणाली सी है जैसे ऋग्वेद २/३५/५ में कहा गया है–

अस्मै तिस्रो अव्यथ्याय नारीर्देवाय देवीर्दिधिषन्त्यन्नम्।

अस्मै अव्यथ्याय देवाय उस अचल देव के लिये तिस्रः नारीः देवीः तीन श्रेष्ठ दिव्य शक्तियाँ अन्नं दिधिषन्ति परिपूरक शक्ति धारण करती हैं।

तीन मूल आद्या शक्तियों से तीन तेजस् परिणामों व तीन देवों के जोड़ों का उद्भव होता है यह तथ्य ऋग्वेद मण्डल ७, सूक्त ३३ के ७ वें मन्त्र में प्रतिपादित किया गया है यथा– (क्र. ३९)

त्रयः कृण्वन्ति भुवनेषु रेतस्तिस्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्राः।
त्रयो घर्मास उषसं सचन्ते सर्वा इत्ताँ अनु विदुर्वसिष्ठाः॥

भाष्य — भुवनेषु त्रयः रेतः कृण्वन्ति ब्रह्माण्ड में तीन बीजरूप मूल कारण होते हैं। तिस्रः आर्याः तीन श्रेष्ठ शक्तियां ज्योतिः अग्राः जिनके आगे ज्योति (विद्युत) होती है ऐसी प्रजाः जन्मी हुई, प्रजारूप (अनुवृत्ति से-कृण्वन्ति) होती है। (त्रयः घर्मासः, तदेतद् देव मिथुनं यद् घर्मः, यह जो घर्म है देवों का जोड़ा है ऐ. ब्रा. १/४/५) तीन देवों के जोड़े अर्थात् तीन प्राकृतिक शक्तियों के जोड़े (कण-प्रतिकण)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उषसं आदि सृष्टि काल को सचन्ते संयुक्त करते हैं उन सबको (इत्, निपात्) ही वसिष्ठ गण विदुः जानते हैं।

मन्त्र में यह तथ्य है कि ब्रह्माण्ड के मूल में तीन कारण तत्त्व हैं। इन तीन से अन्य तीन यौगिकों की उत्पत्ति होती है जो विद्युत वाहक (चार्जड्) हैं। आदि सृष्टिकाल में प्राकृतिक शक्तियों के तीन जोड़े कार्यरत होते हैं। विज्ञान से हमें ज्ञात होता है कि ये तीन जोड़े कण-प्रतिकण के हैं। ये तीन जोड़े इस प्रकार हैं- १. इलेक्ट्रान – पाजीट्रान, २. म्यूओन – एन्टीम्यूओन, ३. न्यूट्रीनो – एन्टीन्यूट्रीनो। वसिष्ठ कण (न्यूट्रान) की उत्पत्ति भी आदि सृष्टिकाल में होती है अतः वसिष्ठगण उन सबको समकालीन होने से जानते हैं। वसिष्ठ की उत्पत्ति के संबंध में ग्रन्थ भाग १, अध्याय १३ देखें।

सूक्त का आगामी मन्त्र है- (क्र. ४०)

त्रिरा दिवः सवितर्वार्याणि दिवे दिवे आसुव त्रिर्नो अह्नः।
त्रिधातु राय आसुवा वसूनि भग त्रातर्धिषणे सातये धाः॥

भाष्य— सवितः हे सर्वोत्पादक देव आप दिवे दिवे प्रतिदिन त्रिः दिवः तीन तेजस् रूपों को (वार्याणि, वृ = चुनना धातु के कृत्य वार्य से) वरणीय रूपों को (आ सुव, धातु सू = प्रेरित करना का लोट्) अच्छी तरह प्रेरित करिये। भग हे ऐश्वर्यवान् नः हमारे लिये त्रिः अह्नः जीवन के तीन कालों में त्रि धातु रायः तीन मूल तत्त्वों के ऐश्वर्य को आ सुव आप अच्छी तरह प्रेरित करिये। त्रातः हे रक्षक वसूनि ऐश्वर्यों को (सातये, धातु सन् का तु. कृ. पृ. ५६८) प्राप्त करने के लिये (धिषणे, धिषणः = बुद्धि, कोश) बुद्धि के लिये नः हमें धाः धारण करिये।

सूक्त के पूर्वोक्त (क्र. ३८) मन्त्र में जिन (त्रि दिवः) तीन तेजस् शक्तियों की बात है उन्हीं तीन शक्तियों के वरणीय तेज की याचना की गयी है। सूक्त का आगामी मन्त्र है- (क्र. ४१)

त्रिरा दिवः सविता सोषवीति राजाना मित्रावरुणा सुपाणी।
आपश्चिदस्य रोदसी चिदुर्वी रत्नं भिक्षन्त सवितुः सवाय॥

भाष्य— सविता सर्व प्रेरक त्रिः दिवः तीन दिव्य तेजों को (आ सोषवीति, धातु सू = प्रेरित करना का यङ्लुगन्त, इसका प्रयोग जोर देने के लिये होता है) तीव्रता से प्रेरित करता है, (राजाना, द्वि व.) सर्वश्रेष्ठ, मूलभूत मित्र वरुण सुपाणी उत्तम दानशील को भी। (चित् = कोई, हर एक, सब, पृ. ३०५) संपूर्ण आपः क्रियात्मक मूल तत्त्व व रोदसी प्रकाशित - अप्रकाशित लोक सवितुः

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वप्रेरक से **सवाय** प्रेरणा के लिये **अस्य** उसके **उर्वी** बहुत **रत्नं** रत्न की **भिक्षन्त** भिक्षा मांगते हैं।

सर्वप्रेरक ईश्वर की प्रेरणा से तीन दिव्य शक्तियाँ अर्थात् मूल सत्ताएँ मित्र, वरुण, अर्यमा प्रेरित हो कार्यरत होते हैं। मूल तत्त्वों की उद्वेलित अवस्था **आपः** है जो अपनी शक्ति के लिये मूल स्रोत मूल तत्त्व अदिति पर आश्रित है। यह आपः अवस्था सर्वप्रेरक प्रभु से (**रत्नं** =) मौलिक शक्ति अर्थात् मूल तत्त्व की भिक्षा मांगते हैं क्योंकि वास्तविक अन्ततम शक्ति मूल शक्ति में ही निहित है। सूक्त की अन्तिम ऋचा है– (क्र. ४२)

त्रिरुत्तमा दूणशा रोचनानि त्रयो राजन्त्यसुरस्य वीराः।
ऋतावान इषिरा दूलभासस्त्रिरा दिवो विदथे सन्तु देवाः॥

भाष्य— **उत्तमा** सर्वश्रेष्ठ (दू-नशा, √नश्=नष्ट होना, पृ. ५२३) नष्ट होने को दुर्लभ – अनश्वर **त्रिः** तीन (**रोचनानि**, √रुच्=चमकना) तेजस् तत्त्वों की **वीराः** शक्तिशाली **असुः–अस्य** प्राणरूप होकर **राजन्ति** स्वप्रकाशित हो रही हैं। **त्रयः** वे तीनों **ऋतावानः** ऋत्=प्राकृतिक नियमों को धारण करने वाले (दूडभासः, दू–डभ=दुस्–दभ्, हानि पहुँचाने को दुर्लभ) हानि से परे रहने वाले (इषिराः, दिवादि √इष्=भेजना) पहुँचे हुए (हैं), अर्थात् नित्य हैं। **त्रिः** तीन **दिवः** तेजस् **देवाः** देव, दिव्य शक्तियाँ (**विदथे**, विदथन्=ज्ञान, निरु.) ज्ञानमय सृजन के लिये **सन्तु** हों। प्रथम तीन मूल तत्त्व हैं, द्वितीय तीन देव मूल से उत्पन्न सूक्ष्म परिणाम (यौगिक) हैं।

३. सार्वभौमिक गुरुत्वाकर्षण एवं ऊर्जाओं का विवरण –

पूर्वोक्त अनुच्छेदों में चर्चा का क्षेत्र मूल तत्त्व एवं उनके सूक्ष्म प्रारंभिक परिणामों तक सीमित था अब भौतिक शक्ति के (सृष्टि में नियोजित) रूपों के विषय में विचार होगा। इस हेतु ऋ. १/९५/३ रे मन्त्र पर विचार किया जाता है। सूक्त का ऋषि कुत्स अङ्गिरस है वा देवता अग्नि है। मन्त्र है– (क्र. ४३)

त्रीणि जाना परिभूषन्त्यस्य समुद्र एकं दिव्येकमप्सु।
पूर्वामनु प्र दिशं पार्थिवानामृतून् प्रशासद् विदधावनुष्ठु॥

भाष्य — **अस्य त्रीणि जाना परिभूषन्ति** इस अग्नि के तीन जन्म सब जगह सुशोभित हैं। **समुद्रे एकं** एक आकाश में व्याप्त है **दिवि** सूर्य में **एकं** एक है **अप्सु** जल में **एकं** एक है। उस अग्नि ने **पार्थिवानां** पृथ्वी के द्रव्यों के लिये

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वीम् प्रदिशं पूर्वादि दिशाओं की अनु प्रशासत सम्यक् व्यवस्था करते हुए ऋतून् ऋतुओं को (अनुष्ठु=अनु-स्थु) क्रमपूर्वक स्थापित करते हुए (वि-दधौ, √धा लिट् ल.) विशिष्टता से धारण किया है।

मन्त्र में शक्ति के तीन उपयोगी रूपों के जन्म का विवरण है। आकाश में व्याप्त अग्नि का रूप कास्मिक विकिरण है अथवा सर्वत्र व्याप्त चुम्बक, आकर्षण रूप है। एक ऊर्जा सूर्य से प्रकाश व ताप के रूप में प्रवाहशील है तथा एक जल से विद्युत के रूप में उद्भूत होती है। सूर्य इसी अग्नि का प्रकट रूप है जो दिशाओं की व्यवस्था करते हुए ऋतुओं पर शासन करता है।

शक्ति (अग्नि) के तीन रूपों का ज्ञान ही नहीं था वरन् उसके तीन रूपों को प्रकट करने की विधि का भी ज्ञान था, यह तथ्य ऋग्वेद १०/८८/१० वें मन्त्र में स्पष्ट रूप से कही गयी है। मन्त्र है- (४४)

स्तोमेन हि दिवि देवासो अग्निमजीजनञ्छक्तिभी रोदसिप्राम्।
तमू अकृण्वन् त्रेधा भुवे कं स ओषधीः पचति विश्वरूपाः॥

भाष्य— स्तोमेन हि यथार्थ गुणों के वर्णन से ही देवासः विद्वानों ने अग्निम् शक्ति को (अजीजनन्, √जन् का लुङ्. धातु साभ्यास रूप) उत्पन्न किया। शक्तिभिः रोदसी-प्राम् इन शक्तियों से पृथ्वी आकाश परिपूर्ण है। तं उसको उ निश्चय ही कं भुवे सुखदायी होने के लिये त्रेधा तीन रूपों में अकृण्वन् किया था। (देखिये अथर्व वे., त्रीणि ज्योती ँषि सचते ८/३६) सः वही विश्वरूपाः ओषधीः अनेकों रूप वाली वनस्पतियों का पचति परिपाक करती है।

मन्त्र में यह कहा गया है कि ऊर्जा के तीन रूपों प्रकाश, ताप, विद्युत को जाना था तथा प्रकट किया था। उसी शक्ति के ताप, प्रकाश रूपों से वनस्पति का परिपाक होता है। उस विकिरण शक्ति से आकाश परिपूर्ण है।

मण्डल १, सूक्त ३५ की ६ वीं ऋचा में सार्वभौमिक गुरुत्वाकर्षण बल (universal force of gravitation) सम्बन्धी विचार निहित है। ऋचा है- (क्र. ४५)

तिस्रो द्यावः सवितुर्द्वा उपस्थाँ एका यमस्य भुवने विराषाट्।
आणिं न रथ्यममृताधि तस्थुरिह ब्रवीतु य उ तच्चिकेतत्॥

भाष्य— द्यावः तिस्रः तेज तीन है- प्रकाश, ताप एवं सर्वव्यापी कास्मिक विकिरण द्वा सवितुः उपस्थान् दो - ताप और प्रकाश सूर्य के पास हैं एका एक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यमस्य, √यम् = निर्देश, नियंत्रण) नियंता ईश के भुवने ब्रह्माण्ड में (विरापाड् = वि-रा-पाट्, रा = देना) सर्वत्र व्यापक है। आणिम् न रथ्यम् रथ का धुरा (axle) जैसे चके को घुमाता है उसी सदृश्यता से अमृता अधि तस्थुः आकाशीय पिण्ड स्थित हैं। इह ब्रवीतु यह कहो उ उससे ही य जो तत् चिकेतत् उसे समझ सके।

लोकों को अमृत की संज्ञा इस कारण दी जाती है कि वैदिक परिकल्पनानुसार सृष्टि (=लोक) प्रलय के अनन्तर पुनः प्रस्थापित हो जाने से प्रवाह से नित्य है इस विषय में यह कहा गया है–

'सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्'

सूर्य चन्द्रादि को पूर्व (सृष्टि) के अनुसार विधाता ने रचा, अस्तु ये प्रवाह से नित्य हैं।

यही विचार ऋचा १/८९/१० में व्यक्त हुआ है जहाँ लोकों को इसी दृष्टि-कोण से अदिति अर्थात् अखण्ड (नित्य) कहा गया है।

इस मन्त्र में विशिष्ट ज्ञान निहित है। विकिरण तीन प्रकार की है। सूर्य से तथा उसी प्रकार के अन्य प्रकाशित लोकों से दो प्रकार के विकिरण ताप, प्रकाश उद्भव होते हैं। एक सर्वव्यापी विकिरण है जिसे अन्यत्र ऋग्वेद ने सोम कहा है यह आदिकाल में उद्भूत होता है इस कारण इसे कास्मिक विकिरण कहते हैं। यह सर्वत्र एक-से मान (value) वाला है। यही विकिरण लोकों के गुरुत्वाकर्षण बल को उद्भूत करने में आधारभूत है। इससे समस्त लोक अपनी कक्षा में स्थित होते हैं। यह विकिरण सार्वभौम गुरुत्वाकर्षण (universal force of gravitation) का आधार है। यह अन्वेषण सन् १९६५ में वैज्ञानिक द्वय आरनो पेन्जियाज एवं राबर्ट विलसन द्वारा हुआ है।

रथ का चका जैसे धुरे (axle) पर घूमता है इससे केन्द्रीय बल (centrifugal force) उद्भूत होता है। धुरे के घूमने से चके की परिधि (rim) गतिवान होती है तथा बल रेखायें परिधि से धुरे को स्पोक्स के द्वारा जोड़ती हैं यह स्थिति वैसी ही होती है जैसी रस्सी में बँधे हुए पत्थर को बलपूर्वक घुमाने से चक्राकार गति में स्थित हुआ पत्थर सन्तुलित होता है। इसी अनुरूपता से ज्योतिर्पिण्ड केन्द्रीभूत शक्ति की परिक्रमा करते हैं। उदाहरणार्थ ग्रह (पृथ्वी आदि) सूर्य की परिक्रमा करते हैं।

सूर्य केन्द्र में स्थित है तथा ग्रह जैसे पृथ्वी सूर्य के चारों ओर दीर्घा (orbit) पर इस प्रकार घूमती है जैसे चके की परिधि (rim) अक्ष (axle) पर घूमती है या

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रस्सी में बँधा हुआ पत्थर चक्राकार घुमाया जाता है इस प्रकार केन्द्रीय बल (centrifugal force) के कार्यरत होने से पृथ्वी सन्तुलित हो दीर्घा में भ्रमण करती है। उसी प्रकार सूर्य अपने परिवार सौर्य मण्डल सहित गैलेक्सी की अक्ष पर भ्रमण करता है। पुनः सम्पूर्ण गैलेक्सी एक पिण्ड की तरह ब्रह्माण्ड के अक्ष पर घूमती है। इस गम्भीर ज्ञान के ऋचा में निहित होने के कारण ऋषि ने स्वयं सचेत किया है– 'इह ब्रवीतु य उ तत् चिकेतत्'।



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय ४

क्या इन्द्र-वृत्र कथा के रूपक में सृष्टि सृजन रहस्य है ?

– वैदिक वृत्र रहस्य –

सर्गारंभ या आदि सृष्टिकाल में सृष्टि रचना की दिशा में आदि भौतिक सत्ता में क्रमिक विकास के तारतम्य में हुई महत्वपूर्ण घटनाओं को ऋग्वेद में इन्द्र-वृत्र के रूपक में निहित किया गया है। पुराणों में ऐसी कथा है कि देवताओं के राजा इन्द्र ने महर्षि दधीचि की हड्डियों से वज्र का निर्माण कर वृत्रासुर का वध किया था। इस कथा का प्रभाव मस्तिष्क पर पड़े बिना नहीं रह सकता तथा मन्त्र को देखकर वृत्र की कथा की कल्पना करना एक स्वाभाविक प्रेरणा ही हो सकती है, किन्तु वास्तविकता कुछ और है। वेद पुराण से प्राचीन है अतः पौराणिक कथा का आधार तो वेद मन्त्र हो सकते हैं, किन्तु वेद मन्त्रों का भाव कथा के आधार पर करने में वेद के मौलिक विचारों से पृथक् हो जाने की संभावना है। अस्तु वेद में वर्णित इन्द्र-वृत्र कथा का रहस्य खोजने हेतु वेद की आन्तरिक साक्षी को प्राथमिकता देना श्रेयस्कर है तब कहीं वास्तविकता के निकट पहुँचने में सफलता प्राप्त हो सकती है। इन्द्र-वृत्र कथा में सृष्टि उत्पत्ति (कॉस्मालॉजी) से संबंधित घटनाओं का वर्णन रहस्यमयी ढंग से ऋचाओं में किया गया है। उन घटनाओं को ऋग्वेद की आंतरिक साक्षी के आधार पर प्रकाश में लाने का प्रयास इस अध्याय में किया गया है।

१. वैज्ञानिक परिकल्पना–

सर आइन्सटीन के सूत्रों के आधार पर आधुनिक विज्ञान ने (बिग-बैंग) महाविस्फोट (माडेल) प्रतिमान तैयार किया है। इस प्रतिमान के अनुसार सृष्टि आरंभ एक महाविस्फोट से होता है जिसे बिग-बैंग कहते हैं। विज्ञान के अनुसार प्रकृति अपने आप को दो रूपों में व्यक्त करती है – द्रव्य (मेटर) तथा विकिरण (रेडियेशन)। द्रव्य भाग कण-प्रतिकण (particle, antiparticle) रूप वाला होता है। ये कण-प्रतिकण विरुद्ध धर्म वाले चार्ज (विद्युत) वहन करते हैं इस प्रकार के कई जोड़े हैं। विकिरण उदासीन (चार्ज रहित) तरंगवत् शक्ति (इनर्जी) वाहक है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपयुक्त ताप दबाव में कण-प्रतिकण संयुक्त हो विकिरण में परिवर्तित हो जाते हैं, इसी प्रकार उपयुक्त परिस्थितियों में विकिरण कण-प्रतिकण में विभक्त हो जाती है। इस प्रकार प्रकृति के द्रव्य भाग एवं विकिरण में परस्पर आदान-प्रदान (आवर्तन-प्रत्यावर्तन) सम्भव है।

विज्ञान के अनुसार आदिकाल में जो द्रव्य भाग एवं विकिरण का संयुक्त महामण्डल था उसे सुपरनोभा कहते हैं। उस सुपरनोभा में एक भयंकर विस्फोट हुआ जिसे वैज्ञानिक भाषा में बिग-बैंग कहते हैं। उस समय का तापमान अत्यधिक उच्च (१० अरब डिग्री से.) था। प्रकृति के द्रव्य भाग (कण-प्रतिकण) एवं विकिरण भाग में निरन्तर मन्थन हो रहा था अर्थात् प्रकृति के द्रव्य भाग एवं विकिरण के मध्य परस्पर विनिमय, रूपान्तरित होने की क्रिया सतत जारी थी।

यहाँ यह बता देना समयानुकूल है कि महाविस्फोट (बिग-बैंग) के पूर्व के आद्य अनुबन्ध (initial conditions) क्या थे अर्थात् महाविस्फोट क्यों हुआ, किन परिस्थितियों के कारण हुआ, इसका ज्ञान विज्ञान में उपलब्ध नहीं हैं केवल विज्ञान में यह ज्ञान उपलब्ध है कि महाविस्फोट के समय प्रकृति के द्रव्य भाग पर विकिरण का वर्चस्व था अर्थात् विकिरण का घनत्व द्रव्य भाग से अधिक था। इसके अतिरिक्त उस महाविस्फोट के होने के कारण के संबंध में कोई ज्ञान नहीं है। ऋग्वेद में इस महाविस्फोट का कारण इन्द्र-वृत्र कथा के रूपक द्वारा कहा गया है।

२. ऋग्वैदिक परिकल्पना-

ऋग्वेद में महाविस्फोट को हिरण्यगर्भः प्रतीक से प्रतिष्ठित किया गया है। हिरण्यगर्भः के पूर्व की स्थिति को ऋग्वेद में इन्द्र-वृत्र के रूपक से कहा गया है। ऋग्वेद के अनुसार मूल आद्या शक्ति त्रिवर्गी है। तीनों वर्गों के संघात को अदितिः प्रतीक से प्रतिष्ठित किया गया है यह ब्राह्मी स्थिति है। प्रकृति जब क्रियाशील हो सृष्टि में रचना हेतु नियोजित होती है प्रकृति की उस अवस्था का प्रतीक आपः या माया है।

ऋग्वेद के अनुसार क्रियात्मक मूल शक्ति आपः में एक स्वनिर्मित अवरोध (dead lock) की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिससे विकास क्रम रुक जाता है। ऋग्वेद ने इस प्राकृतिक स्थिति को वृत्र कहा है। वृत्र के निवारण हेतु इन्द्र द्वारा प्रारंभिक तैयारी के रूप में सोमपान किया जाता है। यह रूपक ईश्वर द्वारा विकिरण एकत्रीकरण का द्योतक है। सोम विकिरण ऊर्जा है। इसके अनन्तर (इन्द्र) ईश्वर द्वारा वज्रपात का आयोजन किया जाता है। ऊर्जाओं की नियोजित टक्कर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वज्र संधान नाम से कही गयी है। इस नियोजित टक्कर से समस्त आपः प्रज्वलित हो उठती है जिसके परिणामस्वरूप वृहत् अग्निकाण्ड (बिग-बैंग) होता है। ऋग्वेद में इस अग्निकाण्ड को हिरण्यगर्भः कहा गया है। इस प्रकार ऋग्वेद में अग्निकाण्ड की पूर्ववर्ती स्थिति एवं अग्निकाण्ड का कारण बताया गया है। जैसा कि कहा जा चुका है विज्ञान में अग्निकाण्ड (बिग-बैंग) के पूर्व की स्थिति का ज्ञान नहीं है।

३. वृत्र–वज्र की रूप रेखा–

भौतिक द्रव्य (मेटर) सत्ता के अन्ततम (अल्टीमेट), आद्या कारण (initial cause) को वेद ने अदिति (सांख्य दर्शन, गीता में प्रकृति) नाम से संबोधित किया है। अदिति को मूल स्वरूप में त्रिवर्गी कहा गया है। इस तथ्य को दर्शाने हेतु ऋग्वेद में "त्रि-विष्टि धातु", "त्रिनाभि", "त्रीणि पदा" आदि पद स्थान-स्थान पर आये हैं। इस प्रकार वेद के अनुसार मूल भौतिक तत्त्व तीन भेदों वाला है। वृत्र शब्द की व्युत्पत्ति वृ (वर्=आवरणे) धातु को त्रयः शब्द का "त्र" लगाकर की गयी है, जिससे इसका सूत्र इस प्रकार बनता है –

"वृणोति यत् मूल कारणं त्र्यात्मकं स वृत्रः"

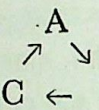
जो आदि मूल त्रि-आत्मिक भौतिक सत्ता को आवरण करके रखता है वह वृत्र है। निरुक्त २/१७ में भी ऐसी ही व्याख्या की है यथा– यत् अवृणोत् तत् वृत्रस्य वृत्रत्वं, उसने ढँग दिया यही वृत्र की विशेषता है। आदि सृष्टि काल में जिस भौतिक मूल तत्त्व की महान् मात्रा (मॉस) से सृष्टि आरंभ हुई थी, वैज्ञानिक भाषा में उस महान् मात्रा को सुपर नेबुला कहते हैं। वेद की परिकल्पना के अनुसार सृष्टि आरंभ काल में त्रिवर्गीकृत मूल तत्त्व समूह में विरुद्ध धर्म वाले तत्त्व परस्पर क्रिया करते हैं किन्तु ये क्रियाएं एक चक्रीय क्रम का रूप धारण कर लेती हैं। इस कारण सृष्टि निर्माण की दिशा में कोई विकास नहीं हो पाता। सृष्टि रचना में असमर्थ, अतः सोये हुए से पड़े, चक्रीय विवर्तन (cyclic order) में उलझे हुए क्रियात्मक मूल तत्व के सृष्टि विकास की दृष्टि से निष्क्रिय पड़े महान् निहार मंडल (super nova) को ऋग्वेद ने वृत्र की संज्ञा प्रदान की है। इस चक्रीय क्रिया में उलझे हुए वृत्र का निवारण सृष्टि रचना विकास हेतु परमावश्यक था, अन्यथा अनन्तकाल तक भी सृष्टि विकास असंभव था। सृष्टि रचना की इच्छा से ईश्वर ने योजनानुसार जो शक्तिपात् किया, अर्थात् बृहत् मात्राओं के टकराव का नियोजन किया, उसे वेद ने वज्र चलाना कहा है। कहीं-कहीं वृत्र के स्थान पर पर्वत का प्रयोग मिलता है। पर्वत मात्रा की सघनता, कठोरता और अचलता का द्योतक है। इस वज्रपात या संघर्षण के अनन्तर समस्त मूल तत्त्व जल उठता है

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा एक विस्फोट होता है। वेद ने इसे हिरण्यगर्भः की संज्ञा दी है। विस्फोट के अनन्तर मूल तत्त्व का पहाड़ छिन्न-भिन्न हो कई टुकड़ों में बिखर जाता है। इन विशाल टुकड़ों से द्यु–लोक (गैलेक्सियों = आकाश गंगाओं) का निर्माण होता है।

चक्रीय क्रिया का अर्थ यह है कि क्रिया जिस अवस्था से आरंभ होती है द्रव्य परिवर्तित होता हुआ पुनः-पुनः उसी अवस्था में आ जाता है उदाहरण के लिये यदि A. B. C. प्रकृति की तीन अवस्थाएँ हैं तो चक्रीय क्रिया इस प्रकार होगी–



A से B अवस्था, B से C अवस्था और C से A अवस्था फिर आ जाती है यह क्रम सतत चलता रहता है।

प्रकृति उद्वेलित हो जब सृष्टि रचना हेतु सन्नद्ध होती है तो प्रकृति की उस अवस्था का प्रतीक आपः कहा गया है। आदिकाल में त्रिवर्गी मूल तत्त्व समूह में विरुद्ध धर्म (आकर्षण चार्ज संबंधी) वाले तत्त्व कण-प्रतिकण सक्रिय हो जाते हैं साथ ही विकिरण भी उद्वेलित हो जाती है। इस स्थिति में प्रकृति के द्रव्य भाग कण.प्रतिकण एवं विकिरण के मध्य मंथन होने लगता है जिससे ताप में निरन्तर वृद्धि होने लगती है। इस अवस्था में द्रव्य भाग, विकिरण में रुपान्तरित होता है तथा विकिरण भी विभक्त हो कण-प्रतिकण में परिवर्तित हो जाती है इस प्रकार एक क्रिया-प्रतिक्रिया (action–reaction = reversible reaction) का चक्र (cycle) चल पड़ता है। यह सब प्रकृति की स्वशक्ति से अपने आप होता है। इस क्रिया-प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप प्रकृति के द्रव्य भाग (कण-प्रतिकण) एवं विकिरण की मात्रा (घनत्व) में सतत आवर्तन परिवर्तन होता रहता है तथा एक ऐसी स्थायी स्थिति निर्मित हो जाती है कि सृष्टि विकास असम्भव हो जाता है। ध्यान रहे, जब तक द्रव्य को योजनानुसार आदि संवेग प्राप्त न होगा हिरण्यगर्भ (बिग-बैंग) की स्थिति निर्मित न होगी। परिणामस्वरूप सृष्टि का आरंभ भी न होगा। इस प्रकार एक अनिश्चितता की स्थिति उद्भूत होती है। इसे सूत्र द्वारा इस प्रकार दर्शाया जा सकता है–

कण + प्रतिकण ⇄ विकिरण

इस चक्रीय विवर्तन में फँसा हुआ मूल द्रव्य अनन्त काल तक भी अपने आप मुक्त नहीं हो सकता न ही सृष्टि विकास क्रम आगे बढ़ सकता है। यही वेद का वृत्रः है। इस स्थिति से मूल द्रव्य को मुक्त करने हेतु ईश्वरीय हस्तक्षेप आवश्यक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। यह विचारणीय है कि वृत्र को मूल क्रियात्मक तत्त्व आपः में भँवर उत्पन्न करने वाला कहा गया है (ऋ.१/३२/११) जो उपरोक्त चक्रीय क्रिया का द्योतक है। यह भी कहा गया है कि आपः गतिशील थे किन्तु फिर भी पूर्ण रूप में स्थिति अंधकारपूर्ण अर्थात् निराशाजनक थी क्योंकि उस गति के होते हुए भी सृष्टि रचना विकास में कोई प्रगति सम्भव न थी (ऋ. १/३२/१०)।

४. वृत्र हाथ पैर से रहित था–

मन्त्रों में वृत्र को हाथ पैर से रहित बताया गया है यह तथ्य वृत्र के स्वरूप निर्धारण में महत्वपूर्ण है। ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त ३२ के ७ वें मन्त्र में कहा गया है– (क्र. ४६)

अपात् अहस्तः अपृतन्यत् इन्द्रं, अस्य वज्रं अधि सानौ जघान।

पैर हाथ से रहित वृत्र ने इन्द्र से युद्ध की इच्छा की, तब उसके शिखर पर वज्र चलाया।

वृत्र हाथ पैर से रहित था। ऐसे अपंग पर वज्र चलाना इन्द्र के गौरव को कदापि नहीं बढ़ाता फिर भी वही ऋषि बड़े उत्साह के साथ उसी सूक्त के प्रथम मन्त्र में कहता है– (क्र. ४७)

इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री।

मैं इन्द्र के पराक्रम का अच्छी प्रकार प्रवचन करुँगा जो (पराक्रम) वज्रधारी ने सर्वप्रथम किये।

क्या ऋषि ने अपनी प्रतिज्ञा का निर्वाह उचित ढंग से किया? उसने तो अपंग पर वज्र चलाने का विवरण दिया है जो इन्द्र के पराक्रम को बढ़ाने वाला नहीं है वरन् कलंकित करने वाला है। वास्तव में युद्ध का वर्णन तो ऋषि को अभीष्ट है ही नहीं, उसने तो एक रूपक का मात्र सहारा लिया है यह व्यक्त करने के लिये कि इन्द्र ने सृष्टि उत्पत्ति क्रम में आये प्राकृतिक गत्यवरोध का निराकरण कैसे किया। ऋषि ने 'प्रथमानि' शब्द के द्वारा यह संकेत किया है कि ये घटनाएँ आदि काल की हैं।

प्रथम सापेक्ष (relative) शब्द है। सापेक्ष शब्द किसी घटना की अपेक्षा से, संदर्भ से होता है। सापेक्ष घटना के उल्लेख के अभाव में तुलना करने का कोई आधार नहीं होता। तब प्रश्न होता है किससे प्रथम? उत्तर यही होता है प्रत्येक घटना से प्रथम, अर्थात् यह एक सर्वकालिक, तुलना निरपेक्ष सत्य है इस प्रकार यह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयं सृष्टि की प्रथम घटना है यह निश्चित होता है। तो बात आदि काल की है जब मूल तत्त्व उद्वेलित हुआ था।

वृत्र हाथ पैर रहित ही नहीं वरन् देह रहित भी था। यह बात इसी ऋषि ने इसी सूक्त के १० वें मन्त्र में कही है– (क्र. ४८)

काष्ठानां मध्य निहितम् शरीरम् वृत्रस्य निण्यं,
विचन्त्यापो दीर्घं तम आशयदिन्द्र शत्रुः।

वृत्रस्य निण्यं शरीरं निहितम् वृत्र का गुप्त अव्यक्त शरीर छिपा था। यह अव्यक्त शरीरी वृत्र मूल क्रियात्मक तत्त्व की गति अवरोधक स्थिति ही है जिसके विषय में कवि उसी मन्त्र में कहता है–
दीर्घं तमः आ अशयत् इन्द्रशत्रुः गहन अँधकार रूप इन्द्र का वह शत्रु सब ओर ही सो रहा था अर्थात् वृत्र स्वभाव से सोने वाला है। अस्तु गत्यवरोध जो स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होता है वही वृत्र है। वृत्रः शब्द की व्युत्पत्ति में यह अभिप्रेत है कि आवरण करना उसका लक्षण है। गहन अँधकार रूप वह स्थिति सृष्टि रचना विकास की दृष्टि से विकास पराङमुख हुई महान् निराशजनक अवस्था की द्योतक थी। इस अवस्था में उलझे मूल द्रव्य को विकास की दिशा में उन्मुख करना ही इन्द्र (ईश्वर) की महानता थी। यही इन्द्र का पराक्रम था जिसका वर्णन कवि को अभीष्ट था।

केवल इसी मन्त्र में वृत्र को हाथ पैर रहित नहीं बताया गया वरन् ऋग्वेद ३/३०/८ से तो ऐसा विवरण उपलब्ध होता है कि वृत्र के हाथ पैर होते ही नहीं। मन्त्र है– (क्र. ४९)

सहदानुं पुरुहूत क्षियन्तमहस्तमिन्द्र सं पिणक्कुणारुम्।
अभि वृत्रं वर्धमानं पियारुमपादमिन्द्र तवसा जघन्थ॥

भाष्य— हे पुरुहूत इन्द्र बहुतों से स्तुत्य इन्द्र त्वम् तुमने अहस्तं हाथों से रहित (सहदानुम्, दानु=बूंद, वै. व्या. पृ. ३४१) बूंदों पर अधिपत्य किये क्षियन्तं छाये हुए कुणारुम् आवाज करते हुए को (संपिणक् √पिष् लङ्. ल.) अच्छी तरह पीस डाला। इन्द्र हे इन्द्र तुमने अपादं पैर रहित पियारुम् शक्ति का पान किये अभि वर्धमानं सब ओर वृद्धिशील वृत्रं वृत्र को (तवसा जघन्थ √हन् लिट् ल.) अपने बल से मारा।

हाथ पैर से रहित किन्तु शक्ति का पान किये, आपः की बूँद का अधिग्रहण किये, छाया हुआ, सब ओर फैलता हुआ, इस प्रकार का विवरण किसी जीवधारी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का नहीं हो सकता। यह विवरण उस भौतिक स्थिति का है जब मौलिक ऊर्जाओं का विशाल पहाड़ हाथ पैर से रहित किन्तु मौलिक शक्ति से अभिभूत हो सभी भौतिक द्रव्य का अधिग्रहण किये अनियंत्रित हो उठता है।

इसी विकास अवरोधक स्थिति को गहन अँधकार रूप कहा गया है। ऋग्वेद १/५४/१० वें मन्त्र में तो स्पष्ट कहा गया है कि मूल क्रियात्मक तत्त्व आपः को वह कुटिल अँधकार रूप वृत्र जकड़े था। मन्त्र है– (क्र. ५०)

अपामतिष्ठद् धरुणह्वरं तमोऽन्तर्वृत्रस्य जठरेषु पर्वतः।
अभीमिन्द्रो नद्यो वव्रिणा हिता विश्वा अनुष्ठाः प्रवणेषु जिघ्नते॥

भाष्य — अपां क्रियात्मक मूल तत्त्वों को धरुण-ह्वरं जकड़े कुटिल तमः अतिष्ठत् अँधकार स्थित था। वृत्रस्य वृत्र के जठरेषु पेटों के अन्तः अन्तस् में पर्वतः पर्वत था। अनु स्थाः अनुकूलता से स्थित किन्तु वव्रिणा हिता वृत्र द्वारा आवरण में धारण किये गये ईम् विश्वा अपां नद्यः उन सभी मूल तत्त्वों के प्रवाहों को प्रवणेषु नीचे की ढलानों पर (जाने के लिये) इन्द्रः इन्द्र अभि जिघ्नते पूर्ण रूप से, सब ओर से प्रहार करता है।

ऋचा में यह कहा गया है कि वृत्र क्रियात्मक मूल तत्त्व के नीचे की ओर प्रवाह को रोकने वाली अँधकारपूर्ण स्थिति है अर्थात् वृत्र मूल उपादान कारण से अपेक्षाकृत स्थूल यौगिकों की रचना में बाधक है इस प्रकार ऊपर से नीचे की ओर अर्थात् सूक्ष्म से स्थूल की उत्पत्ति की ओर प्रगति नहीं होती। इसी स्थिति को अँधकारपूर्ण अर्थात् सृष्टि उत्पत्ति की दृष्टि से निराशाजनक कहा गया है। वृत्र के पेटों में पर्वत था। ऋचा के अनुसार वृत्र के अनेक पेट थे अर्थात् चक्रीय विवर्तन के अनेक केन्द्र थे अर्थात् सृष्टि आरम्भ काल की उस अँधकारपूर्ण अर्थात् अव्यवस्थित (कन्फ्यूस्ड) स्थिति में आकाश के मध्य भाग में मूल क्रियात्मक तत्त्व की अति सघन पर्वताकार मात्रा (मास) वर्तमान थी जिसके अनेक केन्द्रों पर द्रव्य चक्रीय क्रिया में संलग्न था। विज्ञान से हमें विदित होता है कि बिग-बैंग के समय पदार्थ का घनत्व अत्यधिक बढ़ा हुआ था (प्रति घन सेन्टीमीटर अनेक टन था। बहने के लिये तत्पर अर्थात् विकास के लिये उपयुक्त किन्तु चक्रीय विवर्तन में उलझे मूल तत्त्व की प्रारंभिक अवस्था को ईश्वर ने मुक्त कर विकासोन्मुख करने के लक्ष्य से आदि (initial impetus) संवेग प्रदान किया, यह मन्त्र का तात्पर्य है। आपः का कुटिल अँधकार के द्वारा जकड़ा जाना, अनेकों प्रवाहों का रुकना, वृत्र के पेटों में पर्वत का होना आदि अति विचित्र विवरण प्राकृतिक घटनाओं सम्बन्धी हैं रहस्योद्घाटन की दृष्टि से जिनकी पूर्ण रूप से संगति की जाना अपेक्षित है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृत्र जीवधारी नहीं था यह तथ्य ऋ.२/१४/२ रे मन्त्र से भी प्रमाणित होता है उस मन्त्र में कहा गया है– (क्र. ५१)

अध्वर्यवो यो इन्द्रो वृत्रं जघान ।

(अध्वर्यवः, √धृ=हिंसा करना, अध्वर्=अहिंसा) अहिंसा के इच्छुक इन्द्र ने वृत्र का वध किया। यदि वृत्र जीवधारी होता तो इन्द्र के द्वारा उसका वध अहिंसक कर्म नहीं हो सकता। अस्तु वृत्र गति अवरोधक भौतिक स्थिति मात्र है।

५. इन्द्र–वृत्र घटना का स्थल क्या था–

किसी घटना के विवेचन के लिये घटना स्थल के निर्णय का महत्वपूर्ण योगदान होता है अतः अब घटना स्थल के विषय में प्रकाश डालना आवश्यक है। अनेक मन्त्रों में वृत्र को समुद्र में लेटा हुआ बताया गया है। यथा–

अहन् अहिम् परिशयानं अर्णः । ऋ. ३/३२/११

समुद्र में फैलकर लेटे हुए वृत्र को मारा।

ऋग्वेद मण्डल २, सूक्त ११ के ९ वें मन्त्र में भी यही बात कही गयी है, मन्त्र है– (क्र. ५२)

इन्द्रो महां सिन्धुमाशयानम् मायाविनं वृत्रमस्फुरन्निः ।
अरेजेतां रोदसी भियाने कनिक्रदतो वृष्णो अस्य वजात् ॥

भाष्य— इन्द्रः इन्द्र ने महां सिन्धुं अत्यन्त विशाल सिन्धु में आ–शयानं सब ओर लेटे हुए मायाविनं कुटिल रूप वाले, प्रकृति से उद्भूत हुए वृत्रं आवरण कर्त्ता को (निः अस्फुरत्, √स्फुर्=फुर्ती देना, लङ्. ल.) निरन्तर फुर्ती दी थी। अस्य वज्रात् वृष्णः उसके गिरे हुए वज्र से भियाने डरे हुए रोदसी आकाश एवं मूल क्रियात्मक तत्त्व का महान् समूह (कनिक्रदतः, √क्रन्द=आवाज करना का शत्रन्त से) शब्द करते हुए (अरेजेताम्, √रेज=काँपना, लङ्. ल.) काँप गये थे।

यहाँ कुछ बातें विचारणीय हैं जो वृत्र के राक्षस होने की परिकल्पना (थियोरी) के विपरीत हैं। आ उपसर्ग पूर्वक शयानं का अर्थ होता है जो सब ओर सोने वाला हो अर्थात् जो स्वभावगत सोने वाला हो तथा महासिन्धु में फैलकर लेटा हो, द्वितीय यह कि वृत्र को फुर्ती देने की बात भी उस परिकल्पना में आड़े आती है। तीसरी बात यह है कि अनेक मन्त्रों में वृत्र को नदियों के प्रवाह को रोकने वाला कहा गया है (जैसे क्र. ५० में), सिन्धु का अर्थ समुद्र है समुद्र में फैलकर लेटने तथा नदियों के प्रवाह को रोकने में परस्पर सम्बन्ध दिखाई नहीं देता।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन सभी बातों का समाधान वृत्र के सृष्टि रचना सम्बन्धी घटना के होने में है। माया शब्द प्रकृति की उद्वेल्लित अवस्था के लिये आता है (अ. ४ ग्र. भा. १)। आकाश में फैले मूल तत्त्व के विस्तार को सिन्धु कहा गया है। आकाश में फैले द्रव्य में स्वभावगत फैलकर लेटा रहना वृत्र की विकास अवरोधक भूमिका दर्शाता है। क्रियात्मक मूल तत्त्व से यौगिकों के रूप में बनकर निकलने वाले सप्तवर्गी परमाणुओं के सप्तवर्गी प्रवाहों (सप्त सिन्धु) के उद्भव एवं विकास का अवरोधक होने के कारण वृत्र को मन्त्रों में दिव्य प्रवाहों को रोकने वाला कहा गया है।

ऋग्वेद ३/३२/६ वें मन्त्र में कहा गया है– (क्र. ५३)

अदेवं देवीः अपः परि वव्रिवांसं वधेन ।

अँधकार रूप गतिरोधक अदेव का, जो दिव्य आपः को चारों ओर से आच्छादित किये था, वध किया।

मन्त्रों में पार्थिव जल प्रवाहों की बात नहीं है। सप्त सिन्धु नाम से कहे गये प्रवाह आदिकाल में आकाश में उद्भूत हुए परमाणु अवस्था के सप्तवर्गी व्यापक प्रवाह हैं जिनके विषय में पृथक् अध्याय में प्रकाश डाला जा रहा है।

६. (अ) - इन्द्र-वृत्र युद्ध उच्चाकाश में ही हुआ था–

वास्तव में मन्त्रों में यह तथ्य सुरक्षित है कि इन्द्र–वृत्र युद्ध उच्चाकाश में हुआ था। ऋ. १/३३/७ वाँ मन्त्र इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश डालता है, यथा– (क्र. ५४)

त्वमेतान्रुदतो जक्षतश्चायोधयो रजस इन्द्र पारे ।
अवादहो दिव आ दस्युमुच्चा प्र सुन्वतः स्तुवतः शंसमावः ॥

भाष्य — **इन्द्र** हे इन्द्र, **त्वं** तुमने (**रुदतः च जक्षतः**, धातु जक्ष् = हँसना, पाणिनि) रोते हुए या हँसते हुए **एतान्** इनसे **रजसः पारे** आकाशीय ज्योतिर्पिण्डों–द्युलोक के परे **अयोध्यः** युद्ध किया था। तुमने **दस्युं** दस्यु को **उच्चा दिवः** ऊँचे आकाश में (far high in sky) (**अव आ अदहः**, अव उपसर्ग–निन्दा) अच्छी तरह जलाया था। इस प्रकार तुमने **सुन्वतः** यज्ञकर्ताओं **स्तुवतः** स्तुतिकर्ताओं **शंसम्** के कीर्तिगान की **प्र–आवः** प्रकर्षता से रक्षा की थी।

रजसः शब्द ज्योतिर्पिण्डों के लिये प्रयुक्त होता है।
लोकाः रजांसि उच्यँते (सभी लोकों को रजः कहते हैं। निरुक्त ४/३९)
रजसः = अन्तरिक्ष, वै. व्या. पृ. २९९, **रजसः** = लोक, वै. व्या. पृ. ३०९।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्तु युद्ध नक्षत्रों के परे उच्च आकाश में हुआ था, वहाँ मूल तत्त्व को बृहत् अग्नि मण्डल में, जलते हुए सुपर नोभा में पकाया गया था। विज्ञान के अनुसार यह स्थल पृथ्वी से अति दूर नभ में गैलेक्सियों के केन्द्र में स्थित है। ऋचोक्त रजसः पारे शब्द भी द्यु-लोक के परे सुदूर आकाश में इस घटना का होना व्यक्त कर रहा है। अतः इन्द्र-वृत्र से पृथ्वी पर किसी सप्त सिन्धु प्रदेश में आर्य दस्यु संग्राम की कल्पना निरी कपोल कल्पना है तदनुसार आर्यों द्वारा शम्बर के १०० किलों के ध्वंस किये जाने का इतिहास भी कल्पित है।

पुनः इसी सूक्त के ५ वीं ऋचा में यह बताया गया है कि आकाश में स्थित वृत्र को ब्रह्माण्ड से निकाल दिया, यथा- (क्र. ५५)

प्र यद् दिवो हरिवः स्थातरुग्र निरव्रतान् अधमो रोदस्योः।

भाषार्थ — हरिवः हे अश्व शक्ति के संचालक उग्र बलशाली तुमने दिवः स्थातः आकाश में स्थित यत् जिस अव्रतान् नियमों का पालन न करने वाले अधमः नीच को रोदस्योः द्युलोक, आकाश से निः प्र पूरी तरह निकाल दिया है।

इस प्रकार मन्त्र में यह बताया गया है कि वृत्र का स्थान आकाश है। वृत्र ऋत् का, प्राकृतिक नियमों का, नैसर्गिक उत्कर्ष का विरोधी है। रोदसी का अर्थ होता है आकाश-पाताल, द्युलोक-पृथ्वी अर्थात् ब्रह्माण्ड। वृत्र को ब्रह्माण्ड से पूरी तरह निकाल देने की बात इस तथ्य की द्योतक है कि सृष्टि रचना में आये गत्यवरोध का पूर्ण रूप से उन्मूलन किया गया। दिवः स्थातः आकाश में स्थित वृत्र की घटना सृष्टि उत्पत्ति (कॉस्मालाजी) संबंधी विवरण है।

६. (ब) - क्या सेना ने अंतरिक्ष में प्रयाण किया था-

ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त ५१ के २ रे मन्त्र में युद्ध के सेनानी और युद्ध स्थल का जो विवरण है वह जानने योग्य है- (क्र. ५६)

अभीमवन्वन्त्स्वभिष्टिमूतयो ऽन्तरिक्षप्रां तविषीभिरावृतम्।
इन्द्रं दक्षास ऋभवो मदच्युतं शतक्रतुं जवनी सूनृतारुहत्॥

भाषार्थ— सु-अभिष्टिं शुभ संकल्प वाले दक्षासः बलवान् ऋभवः ऋभुओं ने ऊतयः रक्षक तविषीभिः बलों के द्वारा मदच्युतं गर्व चूर्ण करने वाले शतक्रतुं सहस्रकर्मा इन्द्रं इन्द्र की अवन्वन् सहायता की तथा ईम्-अभि चारों ओर से आवृतम् घेरे हुए अंतरिक्ष नक्षत्रों के बीच के आकाश को प्राम् छा लिया। तब सूनृता जवनी सत्य वाणी भी-प्रेरणा देने आ-आरुहत् आकाश में चढ़ गयी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा सूनृता सत्य प्राकृतिक प्रवाह आरम्भ होने पर (जवनी = परदा, कोश) सृष्टि रचना रूपी परदा आ आरुहत् सब ओर, स्वाभाविक रूप से उठ गया।

नक्षत्रों के बीच के आकाश (inter stellar space) को अंतरिक्ष कहते हैं। अंतरिक्ष में होने वाली यह घटना पूर्ण रूप से प्राकृतिक है। ऋभुः प्रकृति से उद्भूत भौतिक ऊर्जाएँ हैं जिनका वैयक्तीकरण किया गया है। इनका शुभ संकल्प सृष्टि उत्पत्ति है इन्द्र के द्वारा प्राकृतिक अवरोध के निवारण होते ही भौतिक ऊर्जाएँ आकाश में चारों ओर से घुमड़ घुमड़ कर विकासरत हो जाती हैं, यह कहा गया है।

ऋग्वेद १/५६/५ से ज्ञात होता है कि चक्राकार विवर्तन के कट जाने पर आकाश में स्थित मूल तत्त्व के प्रारम्भिक परिणाम को सरल गति प्राप्त हुई थी और वह सृष्टि रचना की दिशा में आगे बढ़ा था, यथा– (क्र. ५७)

वि यत्तिरो धरुणमच्युतं रजो ऽतिष्ठिपो दिव आतासु बर्हणा।
स्वर्मीळ्हे यन्मद इन्द्र हर्ष्याहन्वृत्रं निरपामौब्जो अर्णवं ॥

भावार्थ— हे इन्द्र, दिवः आकाश में आतासु सभी दिशाओं में (बर्हणा, बृह् = वृद्धौ = बढ़ना, निरुक्त ६/८३ परिवृद्ध) अतिवृद्धि को पाये, परिवृद्ध धरुणं स्थित हुआ, पकड़ा हुआ सा, अच्युतं अविनाशी, न हटने वाला रजः मूल तत्त्व आपः यत् जैसे ही तिरः मुक्त होकर (वि, अतिष्ठिपः √स्था ण्यन्त लुङ्.) तेरे द्वारा विशेषता से स्थापित हुआ यत् मदे जिसके बल से स्वः भीढ़े स्वयं आनंदित हो, अभिभूत हो हर्ष्या हर्षपूर्वक वृत्रं वृत्र को अहन् मारा तदा तब तुमने अपां अर्णवं मूल तत्त्व के (ऊर्जाओं के) समुद्र को निः नीचे की ओर (औब्जः, √उब्ज् = आर्जवे = सरल होना धातु का भूतकाल पाणिनि धातु पाठ) नीचे की ओर अर्थात् स्वाभाविक सरल मार्ग पर कर दिया।

आदि रचना काल का सुस्पष्ट विवरण है। यह ध्यान देने योग्य है कि मन्त्र में दो विरोधाभासी विशेषणों का प्रयोग किया गया है। धरुणं पकड़ा हुआ, अच्युतं आगे न बढ़ने वाला किन्तु अतिशय वृद्धि को पाये हुए। यह उस स्थिति का वर्णन है जब तत्त्व चक्राकार विवर्तन (cyclic reaction) में फँसा हो, जहाँ चक्र में वृद्धिशील होते हुए भी चक्र को तोड़कर आगे बढ़ने में अपने आप को असमर्थ पाता है। इन्द्र ने मूल तत्त्व, मूल शक्तियों के बल से ही चक्रीय क्रियाओं की स्थिति को भंग कर मूल तत्त्व को रचना की ओर आगे बढ़ने का मार्ग प्रशस्त किया। रचना के मार्ग में अवस्थित गत्यवरोध का अन्त ही वृत्र का वध है। ये सारी घटनाएँ आकाश में घटित हुई थीं। मन्त्र में स्पष्ट रूप से आकाश में स्थित आपः के (अर्णवः) समुद्र की बात कही गयी है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार मन्त्रों में कहीं भी विरोध नहीं है। वृत्र को जहाँ महासिन्धुः में लेटा बताया गया है वहाँ प्रकारान्त से आकाशस्थ इसी महाविस्तार वाले सूक्ष्म तत्त्व को सिन्धु की संज्ञा दी गयी है। आकाश में फैले द्रव्य को समुद्र कहना अनुचित नहीं है जैसे तारों के विस्तार को आकाश गंगा कहते हैं। शतपथ ब्राह्मण में समुद्र के प्रयोग के विषय में स्पष्ट रूप से प्रकाश डाला गया है – (क्र. ५८)

अयं वै समुद्रो योयं वायु पवत, एतस्मात वै समुद्रात्
सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि च समुद्रवन्ति ।

समुद्र वही है जो वायु की तरह प्रवाहशील हो। इस कारण ज्योतिर्पिण्डों तथा सूक्ष्म स्थूलभूतों से भरा आकाश समुद्र कहलाता है।

निघण्टु (१/३) में अन्तरिक्ष के १६ नामों में समुद्र भी एक है।
निरुक्तकार कहते हैं कि आकाश के १६ नामों में समुद्र भी एक है जिसका भ्रम पार्थिव समुद्र से हो जाता है। (निरु. २/३) अस्तु आकाशस्थ द्रव्य को समुद्र[1] कहने में कोई विरोध नहीं है।

आधुनिक विज्ञान के अनुसार आदिकाल में मूल शक्तियों के तरल की महान् मात्रा जो अत्यधिक सघन थी गैलेक्सिटक केन्द्र में वर्तमान थी। एक घन सेन्टीमीटर में अनेक टन की मात्रा थी। विज्ञान ने इसे सुपर नोभा, नेबुला या बादल (cloud of cosmic dust) कहा है इसे पर्वत कहना अनुपयुक्त नहीं है इसी कारण ऋ. १/३२/२ में वृत्र को पर्वते शिश्रियाणं पर्वत पर आश्रय वाला कहा गया है। पर्वत द्रव्य की मात्रा की सघनता का द्योतक है। इस प्रकार विरोध क्वचित भी नहीं है विरोधाभास का कारण मन्त्रों में वर्णित विषय वस्तु की विविधता है।

७. इन्द्र-वृत्र घटना का काल निर्णय–

किसी घटना के काल के निर्णय का उस घटना के विवेचन में महत्वपूर्ण योगदान होता है। मन्त्रों में यह तथ्य सुरक्षित है कि इन्द्र–वृत्र घटना सर्गारंभ (सृष्टि आरंभ काल) की सर्वप्रथम घटना है जब लोकों की उत्पत्ति नहीं हुई थी।

ऋग्वेद १/५१/४ में कहा गया है– (क्र. ५९)

वृत्रं यदिन्द्र शवसावधीरहिमादित् सूर्यम् दिव्यारोहयो दृशे।
इन्द्र यत् शवसा अहिम् वृत्रं अवधीः हे इन्द्र जब तुमने अपने बल से अहि वृत्र

1 गोपथ ब्राह्मण में दिये गये समुद्र संबंधी विचार को अध्याय ११ में देखें।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को मारा **आत् इत्** तब ही **सूर्यम्** सूर्य को **दृशे** प्रकाश हेतु **दिवि आरोहयः** आकाश में चढ़ाया, स्थापित किया।

इस मन्त्र में अहि वृत्र का विशेषण है जिससे सिद्ध होता है कि अहि वृत्र का ही उपनाम है। अहि, वृत्र दो पृथक् सत्ताएँ नहीं हैं। अहि कुण्डलाकार होता है जो वृत्र के चक्रीय क्रिया वाले स्वरूप का द्योतक है। ध्यान रहे, गैलेक्सियों को कुण्डलाकार (spiral shaped) कहा जाता है आदिकाल के तत्त्व का विस्तार का स्वरूप भी तदनुरूप होगा। ऋचा से यह स्पष्ट है कि वृत्र के उन्मूलन के अनन्तर ही सूर्य की उत्पत्ति हुई थी।

यह तथ्य कि वृत्र की घटना आदिकाल की है अन्य ऋचाओं में भी निहित है। ऋग्वेद १/३२/४ में भी यह तथ्य स्पष्ट रूप से कहा गया है कि वृत्र के निवारण के अनन्तर ही सृष्टि काल का आरम्भ हुआ तब द्युलोक एवं सूर्य अस्तित्व में आये, ऋचा है– (क्र. ६०)

यदिन्द्राहन् प्रथमजामहीनाम् आत् मायिनाममिनाः प्रोत मायाः।
आत् सूर्यम् जनयन् द्यामुषासं तादीत्ना शत्रुं न किला विवित्से॥

भाष्य— **इन्द्र** हे इन्द्र, **यत्** जब तुमने **प्रथमजाम् अहिनां** अहियों में सर्वप्रथम उत्पन्न अहि को **अहन्** मारा, **आत्** अनन्तर तुमने **मायिनां** मायावी वृत्रों की **मायाः** बहुरूपी गत्यवरोधक कुटिल **रचना** को **उत्** निश्चय ही **प्र अमिनाः** पूर्ण रूप से नष्ट कर दिया। **आत्** तब **उषासं** सृष्टिकाल, **द्याम्** प्रज्वलित लोक वा **सूर्यम्** सूर्य की **जनयन्** उत्पत्ति की **तादीत्ना** तब **किल** वास्तव में **शत्रुम्** तुमने किसी शत्रु को **न न (विवित्से,** √विद् लिट् ल.) प्राप्त किया अर्थात् कोई शत्रु न रहा।

मन्त्र में अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि मायावी वृत्रों की रचना के उन्मूलन के अनन्तर ही सृष्टि का उषाकाल (डान आफ क्रियेशन) का उद्भव हुआ तब प्रज्वलित लोकों एवं सूर्य की उत्पत्ति हुई। ध्यान रहे, वैज्ञानिक कास्मालॉजी में बिग-बैंग के पर्याप्त समय बाद प्रज्वलित पिण्ड उद्भूत होते हैं अनन्तर इन्हीं प्रज्वलित पिण्डों से ग्रहों की उत्पत्ति होती है। अस्तु वृत्र की घटना पूर्ण रूप से भौतिक है जो आदि सृष्टिकाल में (**द्याम्**) गैलेक्सियों, नक्षत्रों की उत्पत्ति की पूर्ववर्ती है।



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय ५

क्या इन्द्र-वृत्र कथा के रूपक में सृष्टि सृजन रहस्य है ?

गत अध्याय में यह कहा गया है कि इन्द्र-वृत्र कथा के रूपक में सृष्टि सृजन रहस्य है। उस अध्याय में इन्द्र-वृत्र संबंधी ऋचाओं के विवेचन से यह निश्चय हुआ कि वृत्र के राक्षस होने की कल्पना निराधार है। वहाँ यह भी निश्चित हुआ कि इन्द्र-वृत्र घटना उच्चाकाश में लोकों के परे हुई थी तथा यह भी कि घटना आदि सृष्टिकाल में हुई थी। वृत्र, अहि एवं पर्वत प्रकारान्त से एक ही स्थिति के द्योतक हैं। ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त ३२ के प्रथम चार मन्त्रों में अहि शब्द का प्रयोग है मन्त्र ५, ७, ९, १० में वृत्र शब्द का प्रयोग है तथा मन्त्र ८ और ११ में अहि एवं वृत्र का साथ-साथ प्रयोग है तथा पुनः मन्त्र १३ में अहि का प्रयोग है तथा एक ही सातत्य घटना का विवरण है अस्तु वृत्र एवं अहि पर्यायवाची हैं। इस अध्याय में तीन तथ्यों पर विचार किया गया है – प्रथम यह कि क्या इन्द्र ऐतिहासिक पुरुष है, द्वितीय यह कि वृत्र के उन्मूलन में हेतु क्या था, वृत्र का प्रमुख दोष क्या था तथा तृतीय यह कि वृत्र के उन्मूलन पर सृष्टि रचना पर क्या प्रभाव पड़ा।

सर्वप्रथम इन्द्र के व्यक्तित्व के विषय में विचार होगा। गत लेखों में जिन चार ऋषियों के सूक्तों से वृत्र के विषय में जानकारी प्रस्तुत की गयी है, उन्हीं ऋषियों की इन्द्र के विषय में क्या धारणा है यह क्रमशः आगामी अनुच्छेदों में दिया जा रहा है। इन्द्र इस घटना का नायक है। नायक के विषय से जितनी अधिक जानकारी होगी, उतनी ही उस घटना के विषय में हमारे ज्ञान में अभिवृद्धि होगी। तत्पश्चात् वृत्र के उन्मूलन में प्रमुख हेतु क्या था इस पर विचार होगा।

क्या इन्द्र ऐतिहासिक व्यक्ति है –

हिरण्यस्तूप ऋषि– ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त ३२ का देवता इन्द्र है। इसका ऋषि हिरण्यस्तूप अंगिरस है। १५ वें मन्त्र में इन्द्र का ईश्वर के रूप में दिग्दर्शन है, यथा– (क्र. ६१)

इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा क्षमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः।
सेदु राजा क्षयति चर्षणीनामरान्न नेमिः परि ता बभूव॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ — वज्रबाहुः इन्द्रः वज्रबाहु इन्द्र शमस्य शान्त शृङ्गिणः क्रूर, सींग वाले, यातः चर, प्राणी अवसितस्य अचर सबका राजा राजा है। सः इत् राजा वही राजा उ निश्चय ही चर्षणीनां क्षयति मनुष्यों का भी अधिपति है। अरान् न नेमिः अरों (स्पोक्स) को जिस प्रकार घेरकर नेमि (रिम) स्थित होता है वह ताः परि बभूव सबको घेरकर स्थित हुआ है।

ऋचा में यह कहा गया है कि इन्द्र जगत को चक्र की नेमि की तरह घेरकर स्थित है तथा चर अचर सभी का स्वामी है अतः फिर शेष कोई न रहा। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इन्द्र ईश्वर ही है।

सव्य ऋषि– ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त ५२ का ऋषि सव्य अंगिरस है। इसने मन्त्र १२, १३ में इन्द्र के ईश्वरीय स्वरूप को अप्रतिम शब्दों में निखारा है– (क्र. ६२)

त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः।
चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसोऽपः स्वः परिभूरेष्या दिवम् ॥

भाषार्थ — हे धृषत्–मनः सबके चित्तों को साहस देकर प्रेरित करने वाले त्वं इन्द्र तुम रजसः व्योमनः लोकों से परिपूर्ण व्योम के पारे परे भी विद्यमान हो। स्वभूति ओजाः हे स्वज्ञान, स्वक्रिया से युक्त अवसे हमारी रक्षा के लिये ओजसा प्रतिमानं अपने शौर्य के अनुरूप तुमने भूमिं चकृषे पृथ्वी को, सृष्टि को रचा है। तुम अपः प्रकृति को स्वः जीवात्माओं को दिवं आकाश को परिभूः आ एषि व्यापते हुए स्थित हो।

मन्त्र के अनुसार इन्द्र परम व्योम में व्यापक सर्वाधिपति है। भूमि का अर्थ ब्रह्माण्ड है; (देखें अ. १ विषय प्रवेश) वह भौतिक अन्ततम सत्ता अपरा प्रकृति व समष्टि जीव सत्ता को धारण कर रहा है।

अब १३ वें मन्त्र पर विचार किया जाता है– (क्र. ६३)

त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिर्भूः।
विश्वमाप्रा अन्तरिक्षं महित्वा सत्यमद्धा नकिरन्यस्त्वावान् ॥

भाषार्थ — त्वं हे इन्द्र तुमने पृथिव्याः पृथ्वी के (भुवः=अन्तरिक्ष, कोश) अन्तरिक्ष प्रतिमानं के माप को स्थिर किया है। तुम बृहतः विस्तृत (ऋष्व–वीरस्य, √ऋष्, गतौ से) गतिशील (अपनी-अपनी कक्षा में) दृढ़ता से स्थित लोकों के पतिः भूः स्वामी हो। तुम विश्वं अन्तरिक्षं लोकों के बीच के समस्त आकाश को, अन्तरिक्ष को महित्वा आ अप्राः महत्व से व्याप्त रहे हो। सत्यं अद्धा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सत्य निश्चय है, निष्ठा है कि **त्वावान् अन्यः न किः** तेरे जैसा दूसरा कोई नहीं है।

ऋचा में कहा गया है कि इन्द्र विश्व व्यापी एवं सृष्टि का अद्वितीय स्वामी है।

इसी सूक्त का १४ वाँ मन्त्र इन्द्र को पुनः सर्वव्यापी एवं सृष्टिकर्ता निरूपित करता है, यथा– (क्र. ६४)

अस्य व्यचः द्यावाः पृथिवी न अनु
उसके विस्तार को आकाश पृथ्वी नहीं पाते।

रजसः सिन्धवः न अन्तं आनशुः
प्रकाशित लोकों का महाव्योम भी उसके अन्त को नहीं पाता।

हे इन्द्र **एकः अन्यत् विश्वं आनुषक् चकृषे** तुझ अकेले ने अपने से पृथक् जगत को सदैव बनाया है।

इन्द्र ने सृष्टि रचना ही नहीं की, वरन् वह अकेला ही शाश्वत सृष्टि कर्ता है। अतः इन्द्र ईश्वर का ही नाम है।

गृत्समद ऋषि– ऋग्वेद मण्डल २ के अधिकांश भाग का ऋषि गृत्समद है। इनमें सूक्त ११ से २३ का देवता इन्द्र है। इन्द्र के ईश्वरत्व के निरूपण करने वाले अनेक मन्त्र हैं, कुछ मन्त्रों के अंश मात्र दिये जाते हैं–

(क्र. ६५) **यः सूर्यं, यः उषसं जजान, यो अपां नेता स जनास इन्द्र।** १२/७
जिसने सूर्य को, जिसने सृष्टि काल को उत्पन्न किया, जो प्रकृति का स्वामी है, हे मनुष्यो वह इन्द्र है।

(क्र.६६) **यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत्स जनास इन्द्रः।** १२/९
जो विश्व के अनुरूप होकर विराट् स्वरूप हुआ है, जो (सर्वव्यापी होने से) न हटने वाला होकर भी गतिमान है वह मनुष्यों इन्द्र है।

सूक्त १३ का ३ रा मन्त्र एक ईश्वरवाद की अप्रतिम अभिव्यक्ति है, यथा– (क्र. ६७)

अन्वेको वदति यददाति तद्रूपा मिनन्तदपा एक ईयते।
विश्वा एकस्य विनुदस्तितिक्षते यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः॥

भावार्थ— **एकः** अकेले वह **यत्** जो **अनुवदति** ज्ञान करता है, **तत्** उसी के **रूपा** अनुरूप विश्व को रूप **ददाति** देता है। **तत् अपाः** उस कर्म ने **मिनत्**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थिर करते हुए एकः एक–व्यवस्थित जगत ईयते किया है। विश्वाः सब जगत एकस्य एक उसकी विनुदः प्रेरणाओं से है वही तितिक्षते जगत (उत्पत्ति संचालन) के कष्ट को सह रहा है। इसके लिये यः जो करना चाहिये हे इन्द्र ता उन्हें प्रथमं अकृणोः आपने सर्वप्रथम किया है सः उक्थ्यः असि उस प्रशंसा के योग्य तू है।

विश्वामित्र ऋषि– इस प्रकरण से संबंधित अन्तिम ऋषि विश्वामित्र ऋग्वेद मण्डल ३ के अधिकांश भाग का मन्त्र द्रष्टा है। इन्द्र के विषय में विश्वामित्र के विचार दिये जाते हैं– (क्र. ६८)

एको द्वे वसुमती समीची इन्द्र आ पप्रौ पृथिवीमुत द्याम्। ३०/११

इन्द्र ने अकेले ही पृथ्वी और सूर्य दोनों को सुसंगत करके ऐश्वर्य से, प्राणी जीवन से (आ पप्रौ, √प्रा लिट् ल.) पूर्ण किया है।

(क्र. ६९) अस्तभ्नाद् द्यां वृषभो। ३०/९

वर्षणशील ने द्यु–लोक (ज्योतिर्पिण्डों) को स्थापित किया है।

(क्र. ७०) इन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि, व्रतानि देवा न मिनन्ति विश्वे,
दाधार यः पृथिवीं द्यामुतेमां जजान सूर्यमुषसं, सुदंसाः। ३२/८

इन्द्र के अनेक उत्तम कर्म (हैं)। नियमों को लोक नहीं तोड़ सकते सब ही। धारण किया है जिसने पृथ्वी और द्युलोक को, और उत्पन्न किया है सूर्य और उषा को शुभ कर्मा ने।

इस प्रकार ये चारों ऋषि इस विषय में एक मत हैं कि इन्द्र सृष्टिकर्ता ईश्वर है। जैसे ही इन्द्र ईश्वरीय आसन पर आसीन होता है, इन्द्र वृत्र की घटना का स्थानीय ऐतिहासिक होना धूमिल होने लगता है और हमारे सामने सृष्टि उत्पत्ति रचना के परिपेक्ष्य में हुई महान् घटनाओं के बृहत् रूप उभरने लगते हैं।

वृत्र को मारने में हेतु क्या था–

इस अनुच्छेद में मन्त्रों के माध्यम से उस हेतु को प्रकाश में लाया जायगा जिसके कारण वृत्र का उन्मूलन आवश्यक हुआ। इस प्रकरण पर प्रकाश डालने वाले मन्त्रों की कमी नहीं है। सभी मन्त्र एक स्वर से यह कह रहे हैं कि वृत्र आपः के प्रवाह का अवरोध किये था तथा वृत्र के निवारण से आपः के प्रवाह मुक्त हो बह निकले। यह प्रस्थापित हो चुका है कि आपः मूल तत्त्व की क्रियात्मक अवस्था

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रतीक है। आप: अवस्था का दूसरा नाम माया है। वृत्र को मन्त्रों में मायावी कहा गया है जिसका तात्पर्य यह है कि वृत्र प्रकृति की आदिकाल की क्रियात्मक अवस्था में उद्भूत हुई स्थिति है।

मण्डल १, सूक्त ५४ की १० वीं ऋचा[1] में वृत्र को मारने का हेतु बताया गया है–

अपां धरुणं ह्वरं तम: अतिष्ठत् आप: को जकड़े कुटिल अंधकार स्थित था। **अनु स्था:** अनुकूलता से स्थित किन्तु **वज्रिणा हिता** आवरण में वृत्र द्वारा धारण किये गये **ईम् विश्वा: नद्य:** सभी प्रवाहों को **इन्द्र:** इन्द्र **प्रवणेषु** नीचे की ओर प्रवाहों में करने **अभि जिघ्नते** चारों ओर से मारता है।

मूल क्रियात्मक तत्त्व आप: के स्वाभाविक विकास को, ऋत् को अर्थात् प्राकृतिक प्रवाह को वृत्र रोके था। अत: वृत्र के उन्मूलन का हेतु सृष्टि विकास क्रम में आये आवरण, व्यवधान को हटाना था। सृष्टि विकास क्रम में सूक्ष्मादि सूक्ष्म मूल से क्रमानुसार अपेक्षाकृत स्थूल यौगिक बनते हैं इस रचना को नीचे की ओर बहने वाला कहा गया है। मूल तत्त्व में सूक्ष्मता की पराकाष्टा है, सृष्टि विकास के तारतम्य में मूल तत्त्व से यौगिकों की उत्पत्ति होती है जो मूल तत्त्व से अपेक्षाकृत स्थूल होते हैं। इस प्रकार मूल तत्त्व को ऊपर की ओर अवस्थित मान लेने पर जो मूल से परिणामों की उत्पत्ति होती है उसे नीचे की ओर प्रवाहित होना कहा गया है।

वृत्र नामक प्राकृतिक अवरोध के कारण मूल से परिणामों की उत्पत्ति रूप प्रवाह रुक जाता है। ऋचा में इन्हीं प्रवाहों के अवरुद्ध होने की बात कही गई है। अत: वृत्र कोई राक्षस नहीं है वरन् वृत्र प्राकृतिक विकास में उत्पन्न हुई स्वाभाविक अवरोधक स्थिति है। ध्यान रहे, यदि सृष्ट्युत्पत्ति विकास प्रकृति की स्वशक्ति से सम्पन्न हो जावे तो ईश्वर की भूमिका की कोई आवश्यकता न रहे। पर वैदिक परिकल्पनानुसार प्रकृति में अपने आप जगत रूप में विकसित होने का सामर्थ्य नहीं है। अत: वृत्र नाम को प्रकृति जन्य स्थिति के निवारण हेतु ईश्वर का होना अनिवार्य शर्त है।

प्रकारान्त से यही तथ्य ऋ. १/५७/६ वें मन्त्र में निहित है, मन्त्र है– (क्र. ७१)

त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुं वज्रेण वज्रिन् पर्वशश्चकर्तिथ।
अवासृजो निवृता: सर्तवा अप: सत्रा विश्वं दधिषे केवलं सह:॥

1 पूर्ण भाष्य क्र. ५० में देखें।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाष्य— वज्रिन् इन्द्र त्वं हे वज्रधारी इन्द्र तूने तं महां उरुं पर्वतं उस महान् विस्तार वाले पर्वत के वज्रेण वज्र से (पर्व शः = पर्व-पर्व करके पृ. २८१, चकर्त्तिथ) टुकड़े-टुकड़े कर दिये। तूने नि-वृताः घिरे हुए अपः मूल क्रियात्मक तत्त्व को अव सर्तवे नीचे की ओर बहने के लिये असृजः बाहर निकाला अर्थात् मूल से नीचे की ओर के परिणामों की रचना हेतु मुक्त किया। तूने विश्वं विश्व को (सत्रा = एक स्थान में, पृ. ६८६ वै. व्या.) एक सूत्र में, एक व्यवस्था में (केवलं सहः दधिषे, √धा की लिट् ल.) केवल अपने बल से धारण किया है।

जगत को केवल अपने बल से एक व्यवस्था में धारण करने वाला इन्द्र, ईश्वर ही है अतः मन्त्र से स्पष्ट है कि प्रकरण सृष्टि रचना का है। मन्त्र में वृत्र से संबंधित सभी घटनायें आयी हैं जैसे आपः का घेरा जाना, वज्र का चलाया जाना, आपः के प्रवाह का मुक्त किया जाना। अस्तु यहाँ 'पर्वत' पद वृत्र के लिये ही प्रयुक्त हुआ है अपितु वृत्र मूल क्रियात्मक तत्त्व का महा विशाल पर्वत ही है जो विज्ञान के महा निहार मण्डल (सुपर नोभा, सुपर नेबुला) का द्योतक है, जिसके विभक्त होने पर सृष्टि रचना हेतु मार्ग प्रशस्त हुआ तथा मूल क्रियात्मक तत्त्व आगामी रचना हेतु अवरोध से मुक्त होकर विकासरत हुआ।

ऋग्वेद २/१२/२ रे मन्त्र से ज्ञात होता है कि इन्द्र ऐतिहासिक पुरुष नहीं है न ही कोई देवता है वरन् ईश्वर ही है— (क्र. ७२)

यो पृथिवीम् व्यथमानाम् अदृहत् जिसने (√व्यथ् = डगमगाना) गतिशील पृथ्वी को दृढ़ किया।

(यो पर्वतान् प्रकुपितान् अरम्णात् √रम् = रमण करना की लङ्. ल.) जिसने कोपयुक्त पहाड़ों को रम्य बनाया।

(यो अन्तरिक्षं विममे, ममे-मा = मापना की लिट् ल. वै. व्या., वरीयः) जिसने विस्तृत अन्तरिक्ष अर्थात् लोकों के बीच की दूरी को विशेष प्रतिमान, नाप से निर्धारित किया।

यो द्याम् अस्तभनात् जो प्रकाशित लोकों को आकाश में स्तम्भित करता है।

सः जनासः इन्द्रः हे मनुष्यों वह इन्द्र है।

ज्योतिर्पिण्डों की कक्षाओं, उनके बीच की दूरियों का निर्धारण, पृथ्वी को कक्षा में स्थिर करना आदि सृष्टि निर्माण संबंधी महत्वपूर्ण कर्म हैं। इन कर्मों का कर्ता ईश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं हो सकता। मन्त्र में पर्वतों को कोपयुक्त कहकर वैयक्तीकरण किया गया है। यह सर्गारंभ के उद्वेलित मूल तत्त्व के निहार मण्डल के लिये प्रयुक्त हुआ है। जिस प्रकार ज्योतिर्पिण्डों की कक्षा, अन्तरिक्ष का

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिमान आदि निर्धारण भौतिक घटनायें हैं उसी प्रकार पर्वत अर्थात् वृत्र को रमण योग्य बनाना भी सृष्टि रचना संबंधी भौतिक घटना ही है, अर्थात् मूल तत्त्व के वृत्र रूपी उद्वेलित पहाड़ का लोकों में विकास कर वास योग्य बनाया जाना एक सृष्टि विकास संबंधी घटना है।

अब इसी विषय पर ऋ. ३/३२ के ६ वें मन्त्र पर विचार किया जाता है, यथा– (क्र. ७३)

त्वमपो यद्व वृत्रं जघन्वाँ अत्याँइव प्रासृजः सर्त्तवाजौ ।
शयानमिन्द्र चरता वधेन वव्रिवांसं परि देवीरदेवम् ॥

भाष्य — आजौ सर्त्तवै संग्राम को गतिशील करने **अत्यान् इव** घोड़े को (चाबुक से) आगे बढ़ाया जाता है वैसे ही **इन्द्र** हे इन्द्र आपने **शयानं** सोते हुए **अदेवं** अँधकार रूप, गतिरोधक **देवी:** दिव्य शक्ति (आप:) को **परि:** चारों ओर से **वव्रिवांसं** घेरकर स्थित हुए को **चरता** गतिशील को **वधेन** वज्र से **जघन्वान्** मारते हुए **त्वं** आपने **यत् ह** जो प्रसिद्ध **अप:** आप: तत्त्व को **प्रा-असृज:** विशिष्ट रूप से मुक्त किया था।

पुन: वृत्र को राक्षस मानने से **कई** प्रश्न उपस्थित होते हैं। प्रथम यह कि घोड़ा युद्ध स्थल पर विजय के अर्थ सवार का सहयोगी है, शत्रु नहीं है। युद्ध भूमि पर घोड़े की गति को नियंत्रित किया जाता है उसका वध नहीं किया जाता। प्रस्तुत उपमा में यह भाव अभिप्रेत है कि वृत्र सृष्टि रचना में सहयोगी है जो युद्ध स्थल पर अड़े घोड़े की तरह ताड़ना देने पर आगे बढ़ता है। द्वितीय यह कि उसी पंक्ति में वृत्र को मारकर आप: से विविध सृजन की बात है। आप: प्रकृति की प्रारंभिक अवस्था है अत: सम्पूर्ण घटना आदि सृष्टिकाल की है। सृज् धातु का अर्थ रचना भी है अत: प्रसृज: का अर्थ विशिष्ट रचना भी है, किन्तु जल से प्र–सृजन समझाना दुरूह ही नहीं, असंभव है अस्तु जैसा कहा जा चुका है कि **शयानं** आकाश में फैले हुए 'वृत्रं' चक्रीय विवर्तन में फँसे हुए सृष्टि रचना में असमर्थ आप: तत्त्व को मुक्त कर विविध सृष्टि रचना हेतु गतिशील करने के इन्द्र (ईश्वर) के प्रयास का मन्त्र में वर्णन है यही अर्थ सब पदों को समझाने में समर्थ है।

इस प्रकार अनेक ऋचाओं में एक ही बात कही गयी है कि वृत्र को मारने में प्रमुख हेतु आप: को मुक्त किया जाना था। ऋग्वेद १/३२/१ ले मन्त्र में कहा गया है– (क्र. १५)

अहन् अहिम् अप: अनु ततर्द–उसने वृत्र को मारा तब आप: को मुक्त किया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी सूक्त के ८ वें मन्त्र में कहा गया है, मन्त्र है– (क्र. ७४)

नदं न भिन्नममुया शयानं मनो रुहाणा अति यन्त्यापः ।
याश्चिन् वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत् तासमहि पत्सुतः शीर्बभूव ॥

भाष्य– **अमुया** शयानं पृथ्वी पर फैली **भिन्नम्** तट तोड़ती हुई **मनः रुहाणा** मनोहारी **नदं न** नदी की तरह **आपः अति यन्ति** मूल क्रियात्मक तत्त्व तीव्रता से जाते हैं **याः चित्** जिन आपः पर **वृत्रः महिना** वृत्र अपनी महिमा से **परि अतिष्ठत्** पूर्ण रूप से अधिष्ठित था **तासाम्** उन्हीं के **पत्सुतः शीः** पैरों के तले सोने वाला **अहि बभूव** वह अहि हो गया ।

पृथ्वी स्थित नदी की तुलना से स्पष्ट है कि आपः के दिव्य प्रवाह आकाश-वर्ती तत्त्व के विकास संबंधी हैं । वृत्र अप् तत्त्व के प्रवाह पर हावी था अर्थात् प्रारंभिक रासायनिक विकास अवरुद्ध था पर वृत्र के पराभव से उस प्रारंभिक रासायनिक विकास को गति प्राप्त हुई और वृत्र मरा नहीं वरन् सो गया अर्थात् वृत्र व्यक्ति नहीं था वह प्राकृतिक अवरोध मात्र था जो अप्रभावी हो गया यह ऋचा में कहा गया है । वृत्र और अहि एक ही हैं ।

उसी सूक्त की ११ वीं ऋचा में कहा गया है– (क्र. ७५)

अपां विलमपिहितं यदासीत् वृत्रं जघन्वाँ अप तद् ववार ।

आपः में जो भी छिपी हुई भँवर थी वृत्र को मारने वाले (इन्द्र) ने उसे **अप ववार** दूर कर दिया ।

उसी सूक्त के १२ वें मन्त्र में कहा गया है– (क्र. ७६)

हे इन्द्र तुमने **सप्त सिन्धून् सर्तवे अव असृजः** सात सिन्धुओं को प्रवाहित होने के लिये नीचे की ओर खोल दिया ।

ऋग्वेद १/५२/२ में कहा गया है– (क्र. ७७)

स पर्वतो न धरुणेष्वच्युतः सहस्रमूतिस्तविषीषु वावृधे ।
इन्द्रो यद् वृत्रमवधीन्नदीवृतमुब्जन्नर्णांसि जहृषाणो अन्धसा ॥

भाष्य– **अन्धसा जहृषाणः** सोम रूपी अन्न से हर्षित हो **यत्** जब **इन्द्रः** इन्द्र ने **अर्णांसि उब्जन्** प्रवाहों को सरल करते हुए **नदीवृतम् वृत्रम्** प्राकृतिक प्रवाह को रोकने वाले वृत्र को **अवधीत्** मारा तब **सः पर्वतः न अच्युतः** पर्वत की तरह वह अडिग इन्द्र **सहस्रम् ऊतिः धरुणेषु तविषीषु वावृधे** सहस्रों रक्षक धाराओं के बलों में समृद्ध हुआ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी सूक्त की ६ वीं ऋचा है– (क्र. ७८)

परीं घृणा चरति तित्विषे शवोऽपो वृत्वी रजसो बुध्नमाशयत् ।
वृत्रस्य यत् प्रवणे दुर्गृभिश्वनो निजगन्थ हन्वोरिन्द्र तन्यतुम् ॥

भाष्य— अपः वृत्वी आपः को आवरण कर रजसः बुध्नं आशयत् लोकों के मूल में, अन्तरिक्ष के केन्द्र में सो गया था यत् जब प्रवणे नीचे की ओर बहने के लिये इन्द्र हे इन्द्र तूने दुर्गृभिश्वनः वश में करने को कठिन वृत्रस्य वृत्र के हन्वोः प्रमुख भाग पर तन्यतुम् नि जगन्थ वज्र को ठीक से मारा तब ईम् ही (घृणा, तना. पर. √घृण् = चमकना) प्रकाश परि चरति चारों ओर फैलता है और इन्द्र तेरा (शवः तित्विषे, √त्विष् की लिट् ल.) बल चमक उठा ।

इस मन्त्र में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि आपः के प्रवाह अन्तरिक्ष के मूल में रोके गये थे । पार्थिव जल प्रवाहों की बात नहीं की गयी है अपितु अन्तरिक्ष के मूल में मूल क्रियात्मक शक्ति के प्रवाह रोके जाने की बात है । इस प्रकार क्रमांक ७१ से क्रमांक ७८ तक जो मन्त्र उद्धृत किये गये हैं उनमें वृत्र के निराकरण किये जाने में प्रमुख हेतु उसके द्वारा आपः के प्रवाह को आकाश में अवरुद्ध किया जाना बताया गया है । यह जानते हुए कि आपः क्रियात्मक मूल तत्त्व है तथा आपः के प्रवाह आकाश में वृत्र द्वारा आदि सृष्टिकाल में अवरुद्ध किये गये थे तथा उन अवरोधों से मूल तत्त्व को मुक्ति प्रदाता इन्द्र कोई ऐतिहासिक देव नहीं था वरन् सृष्टि रचयिता ईश्वर ही था, यह निश्चित हो जाता है कि वृत्र सृष्टि विकास क्रम में प्राकृतिक व्यवधान का सूचक है तथा इन्द्र–वृत्र रूपक वेद की परोक्ष वाणी में सृष्टि उत्पत्ति संबंधी रहस्य को छिपाये है ।

वृत्र के उन्मूलन से सृष्टि रचना में उत्कर्ष का संयुक्त होना–

वृत्र के निवारण से सृष्टि रचना में उत्कर्ष की घटना अनिवार्य रूप से संयुक्त है अर्थात् वृत्र के निराकरण की घटना के फलस्वरूप ही सृष्टि रचना में विकास हुआ अतः वृत्र उन्मूलन की घटना सृष्टि उत्पत्ति क्रम के सतत चरणों में एक महत्वपूर्ण चरण है जिसका उलंघन नहीं हो सकता । वृत्र उन्मूलन के लिये वज्र संचालन आवश्यक है । वज्र संचालन के बिना प्रकृति को आदि संवेग (initial impulse) प्राप्त नहीं हो सकता, जिसके अभाव में महाविस्फोट (big bang) न हो सकेगा तथा महाविस्फोट के अभाव में द्रव्य मण्डल का विस्तार (the fact of expanding universe) न होगा, फलस्वरूप मौलिक द्रव्य के तापमान का गिरना न हो सकेगा जो कि मौलिक द्रव्य के अवस्थान्तरित होने की अनिवार्य शर्त है

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फलतः न परमाणु रचना होगी न ही गैलेक्सियों और लोकों की उत्पत्ति होगी। इस प्रकार वृत्र के उन्मूलन की घटना सृष्ट्युत्पत्ति की दिशा में महत्वपूर्ण प्रारंभिक चरण है। ये सभी तथ्य वैदिक विज्ञान तथा आधुनिक विज्ञान समर्थित हैं।

मण्डल १, सूक्त ३२ की ४ थी ऋचा में कहा गया है–

यत् इन्द्र अहन् प्रथमजाम् अहीनाम् जब इन्द्र ने वृत्रों में सर्वप्रथम उत्पन्न वृत्र को मारा

आत् सूर्यम् जनयन् द्याम् उषसम् तब ही नक्षत्रों, सूर्य एवं उषा (सृष्टिकाल) को उत्पन्न किया।

यहाँ उषा की उत्पत्ति सूर्य से पृथक् कही गयी है अर्थात् उषा की सत्ता सूर्य की सत्ता से पृथक् मानी गयी है। पार्थिव सूर्य–उषा सूर्य की कला मात्र है उसका सूर्य से पृथक् अस्तित्व नहीं है। सूर्य की व पृथ्वी को उत्पत्ति से उषा की उत्पत्ति अपने आप हो जाती है अतः ऋचोक्त उषा सृष्टिकाल का प्रतीक है। इस प्रकार वृत्र के उन्मूलन के अनन्तर ही सृष्टिकाल का आरंभ हुआ और लोकों की उत्पत्ति हुई यह बात ऋचा में कही गयी है।

उसी सूक्त की १२ वीं ऋचा है– (क्र. ७९)

अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र सृके यत् त्वा प्रत्यहन् देव एकः।
अजयो गा अजयः शूर सोममवासृजः सर्तवे सप्त सिन्धून्॥

भाष्य— यत् जब (सृके, सृकः = वज्र, निघ. २/२०) वज्र सहित त्वा तेरे प्रति प्रति एकः देवः अहन् एक दिव्य शक्ति वृत्र ने प्रहार किया तत् अश्व्यः वारः अभवः वह प्रहार घोड़े के पूंछ झटकारने जैसा तुमने कर दिया।

शूर इन्द्र हे शूरवीर इन्द्र गाः अजयः[1] तुमने किरणों को जीता, उस पर स्वामित्व किया सोमम् अजयः तुमने सोम विकिरण पर आधिपत्य किया, तुमने सप्त सिन्धून् सर्तवे सप्तवर्गी (परमाणु) प्रवाहों को प्रवाहित होने के लिये अव असृजः नीचे की ओर खोल दिया, नीचे की ओर बहने के लिये मार्ग प्रशस्त किया।

सृष्टि उत्पत्ति विकास क्रम में जो आदिकाल में वृत्र नामक प्राकृतिक अवरोध उत्पन्न हुआ था ईश्वर ने आसानी से उसका निराकरण कर दिया क्योंकि ईश्वर के पूर्ण नियंत्रण में मूल प्रकृति का एक भाग था जिसे वज्र (और कहीं आहवनीय

1 सर्वेऽपि रश्मयो गाव उच्यन्ते। निरु. अ. २/६ सभी किरणों को गौः कहते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्नि) कहा गया है। इस शक्ति की सहायता से ईश्वर ने प्रकृति के अन्य अनियंत्रित भाग, जो दो रूपों में थे, पर नियंत्रण हासिल किया। ये दो रूप थे गाः किरण रूप में कण-प्रतिकण (particle antiparticle) तथा विकिरण रूप में सोम। ज्ञातव्य है कि कण-प्रतिकण आल्फा, बीटा, गैमा आदि किरण रूप में प्रवाहित होते हैं। सप्तसिन्धु सप्तवर्गी परमाणु प्रवाह हैं जिनकी उत्पत्ति का मार्ग इन्द्र ने प्रशस्त किया। ध्यान देने योग्य है कि परमाणु प्रवाहों के उद्भूत होने के अनन्तर अर्थात् परमाणु रचना की महत्वपूर्ण कड़ी के अनन्तर गैलेक्सियों और ज्योतिर्पिण्डों की उत्पत्ति की पृष्ठभूमि तैयार होती है यह समस्त विवरण सृष्टि उत्पत्ति संबंधी है।

ऋचा में दो वस्तुओं पर आधिपत्य पा लेने की बात है। एक है (गाः) किरण और दूसरा है सोम। किरणें प्रकृति का द्रव्य भाग (matter part) है जो कण-प्रतिकण (particle & antiparticle) का संयुक्त रूप है तथा सोम विकिरण है। इस विकिरण के एक भाग पर तथा मौलिक कणों के एक भाग पर वृत्र का आधिपत्य हो गया था अर्थात् ये तत्त्व ईश्वरीय योजना के अन्तर्गत न थे वरन् ये क्रिया प्रतिक्रिया रूप चक्रीय विवर्तन में संलग्न थे जो यथास्थिति (stand still) का सूचक है अर्थात् सृष्टि विकास रहित स्थिति का पर्याय है। इस विकास रहित स्थिति में अविग्रहीत द्रव्य भाग एवं सोम विकिरण को ईश्वर ने मुक्त कर उसे अपनी सृष्टि उत्पादक योजना का अंगभूत बनाया यह तात्पर्य है किरणों पर विजय प्राप्त करने तथा सोम पर जय प्राप्त करने का। इस प्रकार मौलिक कणों और विकिरण के समग्र भाग पर वर्चस्व होने पर उनके सृष्टि क्रम (cosmological cycle) में नियोजित होने पर सृष्टि विकास अनवरत रूप से चल पड़ा। इस विकास क्रम में सप्तवर्गी परमाणु प्रवाह उद्भूत हुए अनन्तर लोकों की उत्पत्ति सृजन के क्रम में यथासमय हुई। यह वेद का विशुद्ध विज्ञान है।

ऋचा १/३३/१० में कहा गया है– (क्र. ८०)

न ये दिवः पृथिव्या अन्तमापुर्न मायाभिर्धनदां पर्यभूवन्।
युजं वज्रं वृषभश्चक्र इन्द्रो निर्ज्योतिषा तमसो गा अधुक्षत्॥

भाष्य — ये दिवः पृथिव्याः अन्तम् न आपुः जो (वृत्र) द्युलोक और पृथ्वी का अन्त न पा सके। जो मायाभिः मायामय रचनाओं के द्वारा धनदां ऐश्वर्य-दाता इन्द्र का न परि अभूवन् आवरण न कर सके। वृषभः इन्द्रः युजं वज्रं चक्रे वर्षणशील इन्द्र ने अपने सहायक वज्र को चलाया और ज्योतिषा गाः नि अधुक्षत् किरणमयी मूल शक्ति के द्वारा लोकों को दुह लिया अथवा ज्ञानमय प्रकाश के द्वारा किरणों को पूर्ण रूप से दुह लिया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर ने प्रकृति को सृष्टि रचना के तारतम्य में लाने हेतु पूर्व से सुरक्षित अप् तत्त्व रूप वज्र[1] का सहारा लिया। भौतिक शक्ति को भौतिक शक्ति से ही बाँधा जा सकता है। यह वृत्र सम्पूर्ण प्रकृति पर आधिपत्य न कर सका था अर्थात् मूल क्रियात्मक शक्ति का एक भाग ही वृत्र नामक अव्यवस्था में अधिग्रहीत था जिसे पूर्व ऋचा में अँधकारपूर्ण स्थिति कहा गया है। सम्पूर्ण प्रकृति पर केवल ईश्वर का आधिपत्य था। ईश्वर ने दिव्य शक्ति आपः को व्यवस्थित कर लोकों का निर्माण किया। इस प्रकार वृत्र के उन्मूलन के फलस्वरूप सृष्टि सृजन होने की बात बार-बार कही गयी है।

ऋचा १/५६/६ में कहा गया है– (क्र. ८१)

त्वं दिवो धरुणं धिष ओजसा पृथिव्या इन्द्र सदनेषु माहिनः।
त्वं सुदस्य मदे अरिणा अपो वि वृत्रस्य समया पाष्यारुजः॥

भाष्य— हे इन्द्र त्वं सुतस्य मदे वृत्रस्य पाष्या समया अरुजः तुमने सोम विकिरण से सशक्त हो वृत्र के बंधन को यथासमय तोड़ दिया। अपः अरिणाः तुमने आपः को प्रवाहित किया, प्राकृतिक प्रवाह को सृष्टि विकास की ओर उन्मुख किया। त्वं धिषः दिवः धरुणं तुमने बल से द्युलोक को धारण किया। त्वं ओजसा तुमने अपने तेज से पृथिव्याः पृथ्वी को सदनेषु प्राणी निवासों के लिये (धारण) किया।

ऋचा में यह कहा गया है कि ईश्वर ने सोम विकिरण का सहारा लिया। उसने अपने आप को विकिरण से सशक्त किया। इससे प्रथम तो मूल आद्या भौतिक शक्ति की स्वतंत्र सत्ता का तथ्य प्रस्थापित होता है द्वितीय यह कि उस अन्तराल में प्रकृति के एक भाग पर वृत्र का आधिपत्य हो गया था अर्थात् प्रकृति का एक भाग अव्यवस्था में ग्रस्त था। ईश्वर ने विकिरण के द्वारा ही इस भौतिक बंधन को काटा। यहाँ वृत्र को स्पष्ट रूप से (पाष्या) बंधन करने वाला कहा गया है। सोम विकिरण द्वारा बंधन को काटने का तथ्य यह प्रतिपादित करता है कि भौतिक अवरोध को भौतिक शक्ति के द्वारा काटा गया। इस प्रकार ईश्वर के आधिपत्य में प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता के सिद्धान्त का प्रतिपादन ऋग्वेद में स्थान-स्थान पर देखा जाता है।

सृष्टि विकास क्रम में वृत्र रूपी अवरोध का निवारण उपयुक्त समय पर हुआ जिसके परिणामस्वरूप अव्यवस्था में (क्रिया-प्रतिक्रिया में) अधिग्रहीत मूल

---

1 वज्रो हि वा आपः। शत. ब्रा.

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रियात्मक तत्त्व मुक्त होकर विकासोन्मुख हुआ। विकास की आरम्भ हुई उस प्रक्रिया के फलस्वरूप कालान्तर में प्रकाशित लोक व पृथ्वी उद्भूत हुए।

ऋग्वेद ३/३०/४ में कहा गया है (क्र. ८२)

त्वं हि एकः अच्युतानि च्यावयन् वृत्रः जिघ्नमानः चरसि स्म।
केवल अपने पद पर दृढ़ रहने वाले आपः ही गिरते हुए वृत्र को मारते हुए जाते हो।

द्यावा पृथिवी पर्वतासः तव व्रताय निमिता इव अनु तस्थुः।
प्रकाशित लोक पृथ्वी व पर्वत तेरे नियमों में व्यवस्थितों की तरह आबद्ध हो स्थित हुए।

वृत्र के निवारण के अनन्तर ही लोकादि के व्यवस्थित क्रम का उदय हुआ। वृत्र अनियमितता उद्भूत करने वाली स्थिति है। सभी ऋचाएँ एक स्वर से यह उद्घोष कर रही हैं।

ऋग्वेद १/५१/४ में कहा गया है–

वृत्रं यद् इन्द्र शवसा अवधीः अहिम्,
आत् इत् सूर्यम दिवि आरोहयो दृशे।

हे इन्द्र, जब तुमने अपने बल से अहि रूप वृत्र को मारा तब ही सूर्य को प्रकाश हेतु आकाश में स्थापित किया।

सूर्य यहाँ प्रतीकात्मक रूप से आया है अभिप्राय यह है कि वृत्र के उन्मूलन के अनन्तर ही सूर्यादि लोकों की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार वृत्र की घटना आदि सृष्टिकाल में लोकों की उत्पत्ति की पूर्ववर्ती है। उस समय ईश्वर के अतिरिक्त मात्र क्रियात्मक प्रकृति विद्यमान थी अन्य कोई सत्ता न थी। स्पष्ट है कि वृत्र एक सृष्टि विकास अवरोधक भौतिक स्थिति के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है।

पुनरपि ऋचा (३/३१/२१) में यह कहा गया है कि वृत्र का परिहार करने वाले इन्द्र ने लोकों के अन्तस् में आकर्षण का प्रसार किया। ऋचा है– (क्र. ८३)

अदेदिष्ट वृत्रहा गोपतिर्गा अन्तः कृष्णान् अरुषैर्धामभिर्गात्।
प्र सूनृता दिशमान ऋतेन दुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वाः॥

भाष्य — गोपतिः लोकों के स्वामी वृत्र हा वृत्र विनाशक ने (अदेदिष्ट, √दिश् = संकेत करना, लङ्. ल.) संकेत प्रसारित किया कि अरुषैः धामभिः सूर्यवत प्रज्वलित लोकों के द्वारा उत्पन्न लाल वर्ण की देदीप्यमान किरणों के कृष्णान् आकर्षणों को गाः लोकों के अन्तः अन्तस् में (गात्, √गा लेट्) ले

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जावें। ऋतेन सत्य प्राकृतिक नियम के द्वारा (दिशमानः, √दिश् के शानज. कृ. से) किया गया संकेत (सूनृता = सत्य सुखद, निष्कपट) सत्य स्वाभाविक प्रेरणा से (प्र-दुरः, √द्रु = दौड़ना) पूर्ण रूप से प्रसारित हुआ च तथा उसने विश्वा स्वाः सब के सुख हेतु अप अवृणोत् आवरण को खोला अर्थात् विस्तार किया।

इन्द्र के लिये 'वृत्र हा' पद यह दर्शाता है कि आकर्षण के विस्तार एवं लोकों के सन्तुलित होने की घटना वृत्र उन्मूलन के बाद की है। वृत्र के परिहार के उपरान्त ही इन्द्र को 'वृत्र हा' पद से प्रतिष्ठित किया जा सकता है। दूसरी बात यह है कि इस पद का प्रयोग यह दर्शाता है कि वृत्र नाम की भौतिक घटना से ब्रह्माण्ड रचना का घनिष्ट सम्बन्ध है। ब्रह्माण्ड में ज्योतिर्पिण्डों के सन्तुलन का प्रश्न लोकों की उत्पत्ति के बाद ही आता है।

ऋचा में यह कहा गया है कि सूर्यवत देदीप्यमान पिण्ड किरणों के प्रसार के माध्यम से आकर्षण शक्ति का लोकों के अन्तस् तक संचार (communication) स्थापित करें। इस प्रकार आकर्षण शक्ति का विस्तार समस्त ब्रह्माण्ड में हुआ जिससे लोक लोकान्तर अपनी-अपनी कक्षा में गतिमान रहते हुए परस्पर गुरुत्वाकर्षण में आबद्ध हुए।

इस ऋचा में दर्शन और विज्ञान का अभूतपूर्व समन्वय है। सृष्टिकर्ता जगत का रचयिता ईश्वर सर्वशक्तिमान एवं सर्वज्ञ है प्रकृति अपने गुण धर्म सहित स्वयंभू अचेतन शक्ति है किन्तु वह ईश्वराधीन है। ईश्वर अपनी सर्वज्ञता से (ऋतेन) प्रकृति के गुण धर्म के ज्ञान के द्वारा प्रकृति की शक्ति का दोहन करता है। उसके द्वारा सत्य प्रेरणा से प्रकृति सृष्टि रचना में नियोजित होती है और प्रकृति के गुण-धर्मानुसार ही सृष्टि का विकास होता है। ईश्वर ने देदीप्यमान लोकों का विस्तार ऐसी योजना से किया कि समस्त आकाशीय पिण्ड आकर्षण शक्ति द्वारा परस्पर सन्तुलन में बँध गये।

ऋचा २/१२/३ में अग्नि ताण्डव (big bang) की तथा सप्तवर्गी परमाणु प्रवाहों के उद्भूत होने की बात वृत्र के उन्मूलन के साथ-साथ आई है जो कि एक बहुत महत्वपूर्ण तथ्य है और जो वृत्र को तथा सप्तसिन्धु को सृष्टि विकास के तारतम्य में हुई भौतिक घटना निरूपित करता है। ऋचा है–

यो हत्वाहिमरिणात्सप्तसिन्धून्यो गा उदाजदपधा वलस्य।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक्समत्सु स जनास इन्द्रः॥

भाष्य — हे जनासः मनुष्यों! यः जिसने (सं वृक्, वृकः = वज्र, निघ. २/२०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वज्र के सम्यक् प्रहार से (अश्मन: = बादल) महा निहार मण्डल (super nova) के अन्त: अन्तस् में अग्निं जजान अग्नि को उत्पन्न किया था। समत्सु भीषण प्रलयंकारी ताण्डवों में (सं वृक्, वृक् = फाड़ना) सम्यक् वर्गीकरण करते हुए य: जिसने अहिम् उस बादल रूप निहार मण्डल को हत्वा छिन्न-भिन्न करके सप्त सिन्धून् सप्तवर्गी परमाणुओं के प्रवाहों को (अरिणात् √रि = बहना की लङ्.ल.) चलाया था, प्रवाहित किया था तथा य: जिस वलस्य आवरण को अप धा हटाने वाले ने गा: लोकों को उद् आजत् ऊपर आकाश में चलाया स: इन्द्र: वह इन्द्र है।

अश्मन: का अर्थ यहाँ आदिकाल का बादल है जिसे विज्ञान में निहार मण्डल या सुपर नोभा कहते हैं। ऋचा में कहा गया है कि वृत्र को मारने की घटना के साथ निहार मण्डल जल उठा था अर्थात् वज्र के प्रहार से महाग्नि ताण्डव हुआ जिसे विज्ञान में बिग-बैंग कहते हैं। यह वज्र प्रहार ऊर्जाओं की नियोजित टक्कर का प्रतीक है। इस महा घर्षण से अग्नि उत्पन्न हुई जिसने द्रव्य मण्डल को आदि-संवेग (initial momentum) प्रदान किया। इस संवेग में सृष्टि सृजन के चरणों की आदि सामर्थ्य (initial capacity) निहित थी। इसने आकाश में यथासमय सप्तवर्गी परमाणुओं की उत्पत्ति की, साथ-साथ प्रकाशित व अप्रकाशित लोकों की भी उत्पत्ति की तथा उन्हें आकाश में कक्षाओं (orbits) में स्थापित किया। यह विचार विज्ञान सम्मत है कि परमाणु रचना तथा लोकों की उत्पत्ति साथ-साथ होती है।

इस प्रकार ऋचाओं में वृत्र का भौतिक स्वरूप सुरक्षित है। वृत्र सृष्टि विकास को आवरण करने वाली, सृष्टि विकास में गत्यवरोध करने वाली नैसर्गिक भौतिक स्थिति है। वृत्र कोई राक्षस या असुर नहीं है ऋचाओं में कहीं भी वृत्र के असुर होने का न तो विवरण है न ही कहीं युद्ध का वर्णन है यद्यपि इन्द्र–वृत्र संबंधी हजारों ऋचाएँ उपलब्ध है। यदि वृत्र राक्षस था तो उसका परिचय देने में ऋषियों को कोई आपत्ति नहीं होना चाहिये थी, रूपक में उस रहस्य को निहित करना उद्देश्य रहित ही है। वास्तव में इन्द्र–वृत्र रूपक में यथार्थ सृष्टि विज्ञान है। इन्द्र सृष्टिकर्ता ईश्वर है और वृत्र सृष्टि विकास क्रम में आया हुआ आद्य नैसर्गिक अवरोध है जिसका निवारण कर ईश्वर प्रकृति में सृष्टि विकास करने की योजना का बीजारोपण करता है।



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय ६

वृत्र एवं शम्बर के स्वरूप का विवेचन
शम्बर के १०० किलों का रहस्य

गत दो अध्यायों में इन्द्र–वृत्र घटना से संबंधित अनेक तथ्यों पर चर्चा हो चुकी है। इस प्रकरण पर आगे विचार करने से पूर्व स्थिति का पुनरावलोकन आवश्यक है। अध्याय ४ में यह निश्चय हो चुका है कि–

१. वृत्र जीवधारी नहीं है वरन् भौतिक घटना मात्र है।

२. वृत्र का उद्भव उच्चाकाश में हुआ था।

३. वृत्र की घटना आदिकाल में हुई थी तब सूर्यादि लोकों की उत्पत्ति नहीं हुई थी।

अध्याय ५ में यह विचार किया गया है कि–

४. इन्द्र ऐतिहासिक व्यक्ति अथवा देवता नहीं है वरन् सृष्टि रचयिता ईश्वर ही है।

५. वृत्र के उच्छेदन में प्रमुख हेतु अवरुद्ध हुए (आपः) मूल तत्त्व के विकास क्रम को उन्मुक्त कर गति प्रदान करना था।

६. वृत्र के उन्मूलन के अनन्तर ही सृष्टिकाल आरंभ हुआ तथा सूर्यादि लोकों की उत्पत्ति हुई। वृत्र की घटना से मूल तत्त्व के विकास का घनिष्ट सम्बन्ध है।

इस प्रकार यह देखा जा चुका है कि वृत्र की घटना से प्रारंभिक सृष्टि उत्पत्ति की घटना अविच्छिन्न रूप से संबंधित है। यह देखा जा चुका है कि वृत्र सृष्टि विकास क्रम में प्राकृतिक व्यवधान है जो प्रकृति की स्वयंभू सत्ता के कारण अपने आप उद्भूत होता है। इस अध्याय में वृत्र के भौतिक गत्यवरोधक स्वरूप पर और प्रकाश डाला जायगा तथा शम्बर के स्वरूप का विवेचन किया जायगा।

आदिकाल में जब मूल तत्त्व उद्वेलित होता है तो उस अवस्था का वैदिक प्रतीक आपः या माया है। आदिकाल में क्रियात्मक मूल तत्त्व के मण्डलाकार विद्युन्मय बादल के उद्भूत होने की चर्चा मन्त्रों में है।

१. वृत्र की उत्पत्ति–

आदिकाल में त्रिवर्गी मूल तत्त्व परस्पर क्रिया में संलग्न हो जाता है तथा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह क्रिया द्रव्य में व्याप्त हो जाती है किन्तु ये क्रियाएँ अव्यवस्थित होने से शीघ्र ही द्रव्य का एक भाग क्रिया की दृष्टि से अनेकानेक भागों में विभक्त हो अनेकानेक केन्द्रों के चारों ओर भँवर की तरह क्रिया-प्रतिक्रिया रूप चक्रीय विवर्तन (reversible cyclic reaction) में संलग्न हो जाता है यह स्थिति ऋचा १/३२/४ में 'प्रथमजाम् अहीनाम्' पद द्वारा दर्शाई गयी है जिसका तात्पर्य यह है कि वृत्र अनेक थे तथा ये समय-समय पर उद्भूत होते रहे। इस प्रकार सम्पूर्ण द्रव्य अनेकानेक केन्द्रों में विभक्त हो क्रिया में संलग्न हो गया था। इसी तथ्य को प्रकारान्त से शम्बर के ९९ या सौ किले कहा गया है। सौ या ९९ की संख्या केन्द्रों की वास्तविक संख्या नहीं है वरन् मात्र प्रतीकात्मक (सिम्बॉलिक) संख्या है जो स्थिति के स्वरूप पर प्रकाश डालती है।

ऋचा १/३२/११ में वृत्र के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। वहाँ यह कहा गया है कि 'अपां बिलं अपिहितं यदासीत्' क्रियात्मक मूल तत्त्व में जो भी भँवर थी 'वृत्रं जघनवान् अप तद् ववार' वृत्र को मारने वाले इन्द्र ने उसे खोल दिया। बिलम् का अर्थ छेद है तरल में छेद या तो भँवर है अथवा वह स्थल है जहाँ तरल नष्ट हो जाता है। इस स्थिति को तरल गति विज्ञान (fluid dynamics) में सिंक (sink) कहते हैं। सिंक वह स्थल है जहाँ तरल नष्ट हो जावे अर्थात् ऐसे स्थलों पर ऋग्वैदिक तरल आपः रूपान्तरित होता है अर्थात् उसका पूर्व स्वरूप लुप्त हो जाता है। इस प्रकार इन भँवरों में अध्याय ४ में दर्शाई हुई चक्रीय क्रियाएँ (cyclic reversible reaction) प्रस्थापित हो जाती हैं जो यथास्थिति बनाये रखती हैं और विकास रुक जाता है यह ऋचा का आशय है।

इस स्थिति को हम इस प्रकार कह सकते हैं– आपः का छेदों (sink) में नष्ट होने का तात्पर्य है कण एवं प्रतिकण (particle & antiparticle) का अपने स्वरूप को खोकर रूपान्तरित होकर विकिरण सोम (radiation) में परिवर्तित होना है तथा सोम विकिरण का कण-प्रतिकण (वरुण एवं मित्र) में विभक्त हो द्रव्य भाग में परिवर्तित हो जाना है। जब इसी क्रिया की बार-बार पुनरावृत्ति होती है तो एक चक्रीय क्रिया प्रस्थापित हो जाती है। यह विदित है कि द्रव्यांश (मेटर = पार्टिकल + एन्टीपार्टिकल) रूपान्तरित होने पर विकिरण (रेडियेशन) में परिवर्तित हो जाता है तथा विकिरण विभक्त होने पर कण-प्रतिकण (पार्टिकल-एन्टीपार्टिकल) में परिवर्तित हो जाती है। इस चक्रीय क्रिया में उलझ जाने पर मूल तत्त्व विकास की दिशा में पराङमुख हुआ एक ऐसे स्वनिर्मित चक्कर में फँस जाता है कि उससे उसकी अपने आप निवृत्ति असम्भव है। यही चक्रीय क्रिया ऋग्वेद का वृत्र है जिसका वैयक्तीकरण कर दिया गया है। अनेकानेक मन्त्रों में जो वृत्र द्वारा (आपः)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल क्रियात्मक तत्त्व के प्रवाह को अवरुद्ध करने की बात आयी है वह मूल क्रियात्मक तत्त्व की इसी स्वनिर्मित चक्रीय विवर्तन की द्योतक है जिसमें फँस कर द्रव्य विकासोन्मुख नहीं रह जाता तथा अनन्त काल तक भी उसकी इस स्थिति से मुक्ति सम्भव नहीं है। ऋग्वेद के अनुसार यहाँ ईश्वर के हस्तक्षेप की आवश्यकता पड़ती है जो वज्र प्रहार के रूप में उपलब्ध होती है।

२. वृत्र प्रकृति में उद्भूत हुई भौतिक स्थिति है--

वृत्र आद्या मूल क्रियात्मक प्रकृति में स्वगुण के कारण स्वनिर्मित अवरोध है इसका तात्पर्य यह है कि ईश्वरीय योजना से बाहर होने पर प्रकृति स्वनिर्मित गर्त में, स्वनिर्मित चक्रव्यूह में उलझ जाती है, प्रतिबन्धित हो जाती है। ऋग्वेद के अनुसार प्रकृति स्वयंभू है अतः प्रकृति के गुण स्वभाव की स्वतन्त्र निरपेक्ष सत्ता है। अपने आप पर छोड़ी हुई प्रकृति स्वशक्ति से सृष्टि निर्माण करने में असमर्थ है।

जगत में प्रकृति अपने आप को दो रूपों में व्यक्त करती है द्रव्य (matter) एवं विकिरण (radiation)। द्रव्य भाग कण रूप वाला (particle in nature) है तथा विकिरण तरंग (wave nature) रूप वाला है।

विज्ञान के अनुसार आदि सृष्टिकाल में द्रव्य भाग एवं विकिरण में निरन्तर मन्थन हो रहा था अर्थात् द्रव्य भाग का रूपान्तर विकिरण में हो रहा था और विकिरण का रूपान्तर द्रव्य भाग में हो रहा था। यह एक ऐसा वैज्ञानिक तथ्य है जिससे वेद के वृत्र का स्वरूप निर्धारित होता है।

अपने आप पर छोड़ी हुई प्रकृति ईश्वरीय योजना के बाहर हो गयी थी तब उस पर सृष्टि विकास अवरोधक स्वनिर्मित स्थिति रूप वृत्र का आधिपत्य हो गया था। ईश्वर ने प्रकृति को अपने वश में कर उस प्रकृति की ही शक्ति से वृत्र का उन्मूलन किया। यह तथ्य मन्त्रों में सुरक्षित है। ऋग्वेद १/५६/५ वें मन्त्र में कहा गया है– हे इन्द्र इन्द्र धरुणम् सबको धारण करने वाला बहुना परिवृद्ध, उन्नत किया गया अच्युतं अविनाशी, अपनी स्थिति पर दृढ़ रहने वाला रजः मूल तत्त्व यत् जब विततिरः पूर्ण रूप से मुक्त किये गये, छोड़े हुए को दिवः आतासु अतिष्ठपः आकाश की दिशाओं में तूने स्थापित किया यत् तो उसकी मदे शक्ति से हृष्यो हर्षपूर्वक वृत्रं वृत्र को मारा तब अपां अर्णवम् मूल तत्त्व के सागर को निः नीचे की ओर बहने के लिये तुमने औब्जः सरल मार्ग पर कर दिया।

वृत्र प्रकृति में उद्भूत हुआ, प्रकृति की शक्ति से ही नष्ट हुआ, प्रकृति में ही

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लय को प्राप्त हुआ। समस्त कार्य-कलाप आकाशस्थ मूल क्रियात्मक तत्त्व में हुआ। वृत्र क्रियात्मक मूल तत्त्व में मात्र अवरोधक स्थिति का प्रतीक है।

ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त ३२ के ८ वें मन्त्र में यही बात प्रकारान्त से कही गयी है– (क्र. ८४)

याश्चित् वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत् तासामहिः पत्सुतः शीर्बभूव।

याः चित् जिन आपः पर, मूल क्रियात्मक शक्तियों पर वृत्रः महिना परि अतिष्ठत् वृत्र अपनी महिमा से पूर्ण रूप से अधिष्ठित था तासाम् उन्हीं के पत्सुतः शीः पैरों तले सोने वाला अहि बभूव वह अहि हो गया।

प्रकृति पर हावी हुई, प्रकृति को सृष्टि विकास पथ से पथ-भ्रष्ट करने वाली जो स्थिति थी वही वृत्र नाम से कही गयी है ईश्वरीय हस्तक्षेप से मूल क्रियात्मक तत्त्व का उस स्थिति से निष्क्रमण हुआ। तत्त्व का नियत, निर्धारित मार्ग पर पुनर्गमन ही वृत्र के उन्मूलन एवं लय की स्थिति है इसे ही मन्त्र में वृत्र का प्रकृति के पैरों तले सोना कहा गया है। यह वृत्र स्थिति के असक्त, पराभूत, क्रियाहीन हो जाने का द्योतक है।

विज्ञान से हमें विदित है कि महाविस्फोट के समय प्रकृति के द्रव्य भाग पर विकिरण का वर्चस्व था जिसका अर्थ यह है कि उस समय विकिरण भाग की मात्रा द्रव्य भाग की मात्रा से अधिक थी। वैदिक सोम वैज्ञानिक विकिरण का प्रतीक है। यह तथ्य ऋचाओं में पूर्ण रूप से सुरक्षित है कि आदि सृष्टिकाल में सोम पर (इन्द्र) ईश्वरीय वर्चस्व हो जाने पर ही वृत्र का उन्मूलन हुआ था। वृत्र को मारने के लिये इन्द्र ने सोम को पिया था। ये सब रूपक इस आधुनिक विज्ञान के द्योतक हैं कि आदिकाल में सृष्टि क्रम में विकास के लिये सोम विकिरण की मात्रा का वर्चस्व होना आवश्यक है।

आदिकाल में सोम की भूमिका संबंधी वैदिक विचारों पर अब ऋचाओं से प्रकाश डाला जाता है। सोम कोई पेय नहीं है जिसको पीकर शक्तिशाली हो इन्द्र ने वृत्र को पराभूत किया। उन रूपकों में निहित विज्ञान को समझना वैदिक द्रष्टाओं के दर्शन विज्ञान को समझना है इसमें किञ्चित भी संदेह नहीं है। वैदिक मंतव्य के अनुसार प्रकृति स्वयंभू है फलतः प्रकृति के गुण धर्म भी स्वयंभू हैं जिनमें परिवर्तन की कल्पना करना प्रकृति की स्वयंभू सत्ता में बाधक है अतः प्रकृति का अनियंत्रित हो जाना और ईश्वर का उसे सृष्टि उत्पत्ति हेतु योजना के अन्तर्गत लाना एक स्वाभाविक परिणाम है। इस परिणाम से फलित हुई घटनाओं में निहित

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्शन विज्ञान के पक्ष की अभिव्यक्ति वैदिक द्रष्टाओं ने अपनी अलौकिक वाणी में की है। ईश्वर की स्वयंभू सत्ता और उसके प्रकृति से सनातन संबंध से दर्शन पक्ष बनता है तो प्रकृति के गुण धर्म की स्वयंभू सत्ता से विज्ञान पक्ष उभरता है दोनों पक्षों का सामञ्जस्यपूर्ण निखार द्रष्टाओं का लक्ष्य है।

मण्डल १, सूक्त ३२ की ८ वीं ऋचा में कहा गया है कि – **अजयः शूर सोमम्** – शक्तिशाली ने सोम विकिरण को जीता, स्ववश किया। प्रकृति का अनियंत्रित हो स्वनिर्मित चक्रव्यूह में अन्तर्ग्रस्त हो जाना, प्रतिबन्धित हो जाना ही वृत्र स्थिति का द्योतक है। उस स्थिति का निराकरण कर उसे (प्रकृति को, विकिरण को) स्ववश कर अपनी योजना का अंग बनाना ही उसे जय करने का प्रतीक है। इस तथ्य को बार-बार दुहराया गया है।

ऋग्वेद १/५६/६ में कहा गया है–

'त्वं सुतस्य मदे वृत्रस्य पाष्या समया अरुजः'

हे इन्द्र, तुमने सोम विकिरण से सशक्त हो यथासमय वृत्र के अवरोध को तोड़ दिया **अपः अरिणाः** आपः को प्रवाहित किया। ईश्वर ने सोम विकिरण पर आधिपत्य कर उसी के सहारे प्रकृति के अन्य भाग में वर्तमान अवरोध को नष्ट कर दिया। भौतिक शक्ति को भौतिक शक्ति से ही बाँधा जा सकता है वृत्र स्थिति द्वारा उद्भूत (पाष्या) बंधन का स्वरूप भी भौतिक गत्यवरोधक हो था।

ऋचा १/३२/३ में सोम विकिरण से सशक्त होना इन्द्र द्वारा सोमपान के रूपक से व्यक्त किया गया है, यथा– (क्र. ८५)

वृषायमाणोऽवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्य ।

वर्षणशील (इन्द्र) ईश्वर ने सोम विकिरण को वरण किया। उसने त्रिवर्गी प्रकृति के कणों में उत्पन्न सोम विकिरण का पान किया अर्थात् उसने सोम विकिरण को अपने देहभूत आकाश में एकत्र किया तथा उसे सघन किया ताकि उससे वृत्र स्थिति में अधिग्रहीत प्रकृति के दूसरे भाग पर आघात कर उसे मुक्त कर सके।

आदिकाल में सोम पर वृत्र का आधिपत्य हो गया था किन्तु जब इन्द्र ने प्रकृति के अवरोध को नष्ट किया तब सोम विकिरण पर उसका स्वत्व हो गया। ऋचा ७/९८/५ में कहा गया है– (क्र. ८६)

प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि प्र नूतना मघवा या चकार ।
यदेददेवीरसहिष्ट माया अथाभवत्केवलः सोमो अस्य ॥

इन्द्रस्य प्रथमा कृतानि प्र–वोचम् इन्द्र के आदि सृष्टिकाल में किये गये कर्मों को

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं कहता हूँ तथा मघवा ऐश्वर्यवान् इन्द्र ने या जिन नूतना नये-नये कार्यों को (चकार, √कृ लिट् ल.) किया या करता है उन्हें भी कहता हूँ।

यहाँ प्रथमा और नूतना दो प्रकार के कार्य कहे गये हैं। 'प्रथमा' पद से कहे गये कार्य आदि सृष्टिकाल के कार्यों के द्योतक हैं 'नूतना' पद से कहे गये कार्य सृष्टि क्रम में बाद में आये कार्यों के द्योतक हैं।

इन्द्र ने यदा इत् अदेवीः मायाः असहिष्ट जैसे ही सृष्टि विकास अवरोधक रचना का बलपूर्वक निवारण किया अथ सोमः केवलः अस्य अभवत् अनन्तर सोम केवल उसका हो गया।

सोम विकिरण ईश्वरीय आधिपत्य एवं योजना के बाहर कार्यरत हो गया था अर्थात् प्रकृति अपनी स्वयंभू शक्ति से स्वनिर्मित चक्र में अवस्थित हो गयी थी। प्रकृति स्वयं अपने आप व्यवस्था निर्मित करने में अक्षम है अस्तु ईश्वरीय हस्तक्षेप एवं नियंत्रण आवश्यक है इसी ईश्वरीय नियंत्रण से बाहर हुई स्थिति का वैयक्तीकरण कर उसे वृत्र रूपक से कहा गया है।

मन्त्रों में वृत्र के सम्बन्ध में ऐसे अनेकों तथ्य वर्तमान है जो वृत्र के विषय में पूर्वोक्त विवेचन को पूर्ण रूप से प्रस्थापित करते हैं। जैसे कि कहा जा चुका है (ऋ. ३/३०/८) कि वृत्र अहस्तं सहदानुं शियन्तं कुणारुम हाथों से रहित, बूँदों पर आधिपत्य किये, छाया हुआ, आवाज करता हुआ अभि वर्धमानं सब ओर फैला हुआ था। मन्त्रों में बार-बार यह कहा गया है कि आपः वृत्र के द्वारा अधिग्रहीत था। अस्तु यहाँ जो बूँदों की, कणों की चर्चा है वह भी क्रियात्मक मूल तत्त्व की ही है। वृत्र की स्थिति का पुलाधार प्रकृति है। वृत्र प्रकृति में उत्पन्न गत्यवरोध है। प्रकृति में ही उसका लय हो जाता है। उपरोक्त ऋचा में पूर्ण रूप से वृत्र के प्राकृतिक स्वरूप का निखार हुआ है। वृत्र पूर्ण रूप से प्राकृतिक घटना का प्रतीक है।

पुनः ऋचा १/३२/९ महत्वपूर्ण प्रकाश डालती है, ऋचा है– (क्र. ८७)

नीचावया अभवद्वृत्रपुत्रेन्द्रो अस्या अव वधर्जभार।
उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीदानुः शये सहवत्सा न धेनुः॥

भाष्य—सूः उत्तरा पुत्रः अधरः आसीत् माता ऊपर पुत्र नीचे था सहवत्सा न धेनुः गाय जैसे बछड़े के साथ रहती है वैसे दानुः शये ही वृत्र माता के नीचे सोता है। वृत्रपुत्रा वृत्र की माता की नीचावयाः अभवत् शक्ति कम हो गयी तब इन्द्रः इन्द्र ने अस्याः वधः अव जभार उस माता के नीचे से वज्र चलाया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्रों से विदित होता है कि वज्र सूर्य की तरह प्रज्वलित था। ऐसे अस्त्र के प्रहार से वृत्र तो मर गया, जो नीचे पड़ा था, पर उसकी माता, जो उसके ऊपर लेटी थी, बच गई; यह कैसे हो सकता है। स्पष्ट है कि यह एक रूपक है वज्र का इस प्रकार चलाया जाना सम्भव नहीं है। वास्तव में वृत्र प्रकृति की अवस्था विशेष है अर्थात् रूपक भाषा में वृत्र प्रकृति का पुत्र है। वृत्र प्रकृति का परिणाम है प्रकृति के अन्दर वह क्रियाशील रहता है। वृत्र के अस्तित्व का आधारभूत द्रव्य प्रकृति है इस कारण प्रकृति को माता कहा गया है। इन्द्र के प्रहार का लक्ष्य प्रकृति नहीं है वरन् सृष्टि विकास अवरोधक वह स्थिति है जो प्रकृति में उत्पन्न हो जाती है और जो वृत्र संज्ञा से विज्ञेय है इस कारण यह कहा गया है कि वृत्र अपनी माता (प्रकृति) की आड़ में सो रहा था और इन्द्र द्वारा वज्र के प्रहार से वृत्र नष्ट हो गया पर प्रकृति को जो शाश्वत है, कुछ हानि न हुई।

फिर कहीं कहते हैं कि समुद्र में सो रहा था (क्र. ५२)। कहीं कहते हैं कि पर्वत पर था (ऋ. १/३२/२), कहीं कहते हैं वज्र उसकी चोटी पर मारा (क्र.४६), कहीं कहते हैं कि आपः को रोके था (क्र. ५०)। ऋचाओं में वृत्र के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के विवरण उपलब्ध हैं जो परस्पर विरोधी होने का आभास देते हैं इन विवरणों में वर्णित घटनाओं का परस्पर सामञ्जस्य स्थापित किया जाना अपेक्षित है।

ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त ३२ के १० वें मन्त्र में आदि सृष्टिकाल में होने वाली भौतिक घटनाओं का अत्यन्त सुन्दर चित्रण है। इस मन्त्र में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि आपः गतिशील थे, अस्थिर थे, निवास रहित थे। इसी सूक्त के अनेकों मन्त्रों में कहा गया है कि आपः का प्रवाह अवरुद्ध था। यदि आपः का प्रवाह अवरुद्ध था तो वह गतिशील नहीं हो सकता तथा यदि गतिशील था तो अवरुद्ध नहीं हो सकता। अस्तु इस रहस्यमयी ऋचा का विवेचन आवश्यक है। ऋचा है– (क्र. ८८)

अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्य निहितं शरीरम्।
वृत्रस्य निण्यं विचरन्त्यापो दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः॥

भावार्थ — अतिष्ठन्तीनाम् स्थिर न रहने वाले अर्थात् क्रियावान्, वेगवान् (अनिवेशनानां, निवेश = पड़ाव, ठहरने का स्थान, कोश पृ. ५४१) मूल स्थान से च्युत होने वाले, ठिकानारहित, (काष्ठानां मध्ये, काष्ठा = दिशा, स्थावर जल, निरु. २/१५। काष्टा = दिशा, चरम सीमा, कोश पृ. २७४। काष्टा = चरम सीमा, कठोपनिषद् १/३/११) उस चरम सीमा के मध्य भाग में या स्थावर आपः

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के मध्य में **निहितं** अंतर्हित हुए **वृत्रस्य** वृत्र के [निरण्यं = नि = नयं नि उपसर्ग (= नीचे, अन्तः) पूर्वक, नय = गतौ धातु से अन्तस् में गया, छिपा] छिपे, गुप्त, अव्यक्त **शरीरं** शरीर को **आपः विचरन्ति** आपः विचरण करते हैं। **दीर्घं तमः** गहन अंधकार **इन्द्र शत्रुः** इन्द्र का शत्रु **आ अशयत्** सब ओर सोया था।

मन्त्र में यह कहा गया है कि आपः गतिशील थे, अस्थिर थे, निवेश रहित थे। मन्त्र में तीन लगभग समानार्थी शब्द अतिष्ठन्तीनां, अनिवेशनानां तथा विचरन्ति का प्रयोग है इससे यह आभास होता है कि ये शब्द भिन्न-भिन्न स्थितियों के द्योतक होना चाहिये अतः 'अनिवेशनं' शब्द का प्रयोग रूप बदलने वाले अर्थात् रासायनिक दृष्टिकोण से अस्थिर के अर्थ में किया गया होना चाहिये तथा 'अतिष्ठन्तीनां' का प्रयोग क्रियाशील स्थिति दर्शाने के लिये हुआ है। क्रियाशील थे इसीलिये अस्थिर थे फिर भी वह स्थिति समग्र रूप में काष्ठा अर्थात् चरम सीमा की स्थिति बन चुकी थी, उसमें विकास की कोई सम्भावना न थी। पूर्व मन्त्रों में यह बताया गया है घिरे हुए आपः को नीचे की ओर बहने के लिये बाहर निकाला अर्थात् आपः का बहाव अवरुद्ध था। आपः गतिशील थे पर रुके हुए भी थे, इन दो विरोधाभासी स्थितियों में सामंजस्य होना आवश्यक है। इसका स्पष्ट अर्थ यही है कि आन्तरिक रूप से चक्रीय क्रिया में आपः के तत्त्व गतिशील तो थे किन्तु सृष्ट्युत्पत्ति की दृष्टि से वह स्थिति विकासोन्मुख न थी। आपः के अवयव सातत्य गतिशील थे तथा निरन्तर रूप बदल रहे थे किन्तु क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं के परिणामस्वरूप चक्रीय क्रिया (cyclic reaction) में संलग्न थे तथा सृष्टि विकास रुका हुआ था। इस चक्रीय क्रम में संकेन्द्रित हो तत्त्व यद्यपि गतिशील एवं (अनिवेशनम्) आवास रहित, अस्थिर था तथापि समग्र दृष्टिकोण से विकास की दिशा में गत्यवरोध (dead lock) वर्तमान था। यही समष्टि रूप में मन्त्रों का भाव अभिप्रेत है।

पूर्व मन्त्रों में वृत्र का हाथ-पैर रहित होना बताया गया है। अतः इस मन्त्र के **'वृत्रस्य निरण्यं शरीरं निहितं'** पद से वृत्र का अशरीरी एक भौतिक स्थिति होना ही प्रतिपादित हुआ है। पुनः मन्त्र में यह भी कहा गया है कि गहन अंधकार रूप इन्द्र का शत्रु चारों ओर सो रहा था, छाया था। गहन अंधकार रूप सोता हुआ वृत्र आदि सृष्टिकाल की अवरुद्ध स्थिति का द्योतक है। एक सरसरी गणना के अनुसार ऋग्वेद में २३४२ मन्त्र है जिनका देवता इन्द्र है। इनमें से अनेक मन्त्र इन्द्र–वृत्र संबंधी हैं। यह विचार का विषय है कि मन्त्रों की इतनी अधिक संख्या होते हुए भी वृत्र के स्वरूप का स्पष्ट विवरण उपलब्ध नहीं है अर्थात् वृत्र का स्वरूप पहेलियों के रूप में ही सांकेतिक, रहस्यमयी रूपक भाषा में व्यक्त पाया जाता है। इसके पीछे गहन उद्देश्य प्रतीत होता है और यह निश्चित होता है कि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस योजना में तत्त्व दर्शन है, सृष्टि विज्ञान है इन्द्र–वृत्र की ऐतिहासिक कथा अथवा सूर्य–बादल की साधारण घटना के लिये हजारों रहस्यमयी ऋचाओं की कतई आवश्यकता नहीं है। हजारों ऋचाओं के होते हुए भी वृत्र, शम्बर आदि का ऐतिहासिक स्वरूप रंच मात्र भी स्पष्ट नहीं है किन्तु वृत्रादि का सृष्टि विज्ञान संबंधी स्वरूप व भूमिका पर्याप्त स्पष्ट है।

यहाँ पाठकों का ध्यान ऋ. १/१०२ के ८ वें मन्त्र की ओर आकृष्ट किया जाता है जहाँ यह पद आया है यथा– "अशत्रुः जनुषा सनात् असि" हे इन्द्र तुम अनादि काल से ही जन्मजात = स्वभावतः शत्रु रहित हो। इस मन्त्र में व्यक्त तथ्य की उपरोक्त तथ्य से (आशयत इन्द्र शत्रुः) कैसे संगति होगी। प्रत्यक्ष में दिखने वाले विरोधाभास में गहन तत्त्व वर्तमान है। वृत्र कोई व्यक्ति नहीं है, जीवधारी नहीं है अस्तु इन्द्र स्वभावतः अशत्रु है। साथ ही सृष्टि विकास को अवरुद्ध करने वाली स्थिति को शत्रु कहना उसी प्रकार है जैसे बाढ़, तूफान अमानव होते हुए भी मानव समाज के शत्रु हैं।

यहाँ वेद की सृष्टि विज्ञान एवं आधुनिक सृष्टि विज्ञान (कास्मालॉजी) में भेद समझ लेना परमावश्यक है। आधुनिक कास्मालॉजी के अनुसार आदि सृष्टि में एक भयंकर विस्फोट, अग्निकाण्ड हुआ था जिसे बिग-बैंग कहते हैं। इस विस्फोट से समग्र तत्त्व चारों ओर प्रसारित हुआ जिससे कालान्तर में (गैलेक्सियों) आकाश गंगाओं का निर्माण हुआ जिनमें करोड़ों तारे बन गये। इस प्रकार वैज्ञानिक सृष्टि विज्ञान में ईश्वर की आवश्यकता नहीं है। वेद की सृष्टि विज्ञान में यह परिकल्पना है कि भौतिक जड़ मूल तत्त्व अपने आप व्यवस्थित जगत के रूप में उद्भूत नहीं हो सकता, वैदिक विज्ञान में भी बिग-बैंग की परिकल्पना है जिसे हिरण्यगर्भ, मार्ताण्डम् आदि अनेक नामों से कहा गया है। वज्रपात के अनन्तर क्रियात्मक मूल तत्त्व में बृहत अग्निकाण्ड होता है जिसका पूर्ण विवरण क्रमशः दिया जा रहा है।

वृत्र की घटना हिरण्यगर्भ (बिग-बैंग) की घटना की पूर्ववर्ती है। विज्ञान में इसकी कल्पना नहीं है। वेद के अनुसार मूल तत्त्व (आपः) में चक्रीय क्रम (cyclic order) स्थापित हो जाता है जो अनन्तकाल पर्यन्त भी नहीं टूट सकता अर्थात् ऋषियों के अनुसार यदि भौतिक तत्त्व अपने हाल पर छोड़ दिया जाय (left to itself) तो सृष्टि उत्पत्ति असम्भव है। वृत्र की परिकल्पना के अनुसार मूल ऊर्जाओं के चक्रीय विवर्तन को काटकर उस स्थिति में पड़े भौतिक तत्त्व को विकास की ओर प्रवाहित करने की दिशा में गति प्रदान करने हेतु ईश्वर की सत्ता का होना तथा ईश्वर के द्वारा वज्र का संचालन आवश्यक है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वज्रपात ऊर्जाओं की परस्पर नियोजित टक्कर का द्योतक है जिससे आदि संवेग (initial momentum) प्राप्त होता है तथा आद्या शतों का निर्धारण होता है। इस विशिष्ट कार्य के लिये ऋषियों ने ईश्वर का नाम इन्द्र रखा है तथा वज्र संचालन ईश्वर द्वारा नियोजित (राकेट फायर के समतुल्य) ऊर्जाओं की टक्कर है जिससे चक्रीय क्रम में फँसा हुआ भौतिक पदार्थ क्रमिक गन्तव्य विकास को उन्मुख होता है। ध्यान रहे, जब सर आईन्सटीन के इक्वेशन में शून्य काल की स्थिति [अर्थात् समय = शून्य (t = 0) रखा जाता है] का ज्ञान करने का प्रयास किया जाता है तो चर राशियाँ अनन्त हो जाती है। अस्तु आदि स्थिति समझ से परे हो जाती है विज्ञान में उन आद्य परिस्थितियों का ज्ञान नहीं है जिनके कारण महाविस्फोट होता है, केवल यह ज्ञात है कि महाविस्फोट होता है किन्तु उसके होने का कारण क्या है यह विज्ञान में अज्ञात है। वेद ने महाविस्फोट होने का कारण बताया है और वह है ऊर्जाओं की योजनाबद्ध टक्कर। यह वैदिक ज्ञान की पूर्णता का द्योतक है।

३. शम्बर के १०० किलों का रहस्य–

यह इंगित किया जा चुका है कि वृत्र अनेक थे जिसका तात्पर्य यह है कि सम्पूर्ण तरल (fluid) अनेकों भागों में विभक्त हो अनेक केन्द्रों पर चक्रीय विवर्तन में संलग्न था। इन्हीं अनेक सुदृढ़ केन्द्रों में उलझे हुए तरल को शम्बर के १०० किले कहा गया है। शब्द निर्वचन के अनुसार–

शं वृणोति, संबन्धने राति इति शम्बर, अमर कोश।

शम्बर वह है जो सम्यक् आवरण करता है, सम्यक् बन्धनकारी है। निरुक्त के अनुसार (अ. ७/२२) शम्बर बादल है। शम्बर अवश्य बादल है किन्तु यह वर्षा का पार्थिव बादल नहीं है वरन् आदिकाल के क्रियात्मक मूल तत्त्व का मण्डलाकार बादल (नेबुला) है[1]। मन्त्रों में जहाँ अनेक वृत्रों के होने की बात है वहीं एक समग्र वृत्र की भी कल्पना है जो अपने में सम्पूर्ण स्थिति को, सभी (वृत्रों को) केन्द्रों को समाहित करता है, समाविष्ट करता है इसे (ऋग्वेद १/३२/५ में) वृत्रतरं वृत्रं बड़ा वृत्र या शम्बर कहा गया है। इसे ही १०० किलों के अधिष्ठाता के रूपक से व्यक्त किया गया है। ऋचा (१/३२/३) में 'प्रथमजाम् अहीनाम्' पद आया है जिससे ज्ञात होता है कि वृत्र अनेक थे। इन सभी वृत्रों के समग्र रूप को शम्बर कहा गया है।

---

1 विज्ञान में भी कास्मिक धूल के समूह को (cloud of cosmic dust) कहा जाता है पर यह ध्यान रखना है कि यह बादल पार्थिव वर्षा का बादल नहीं है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्र के द्वारा वज्रपात का नियोजन तरल रूप में अवस्थित ऊर्जाओं की परस्पर टक्कर का आयोजन है जिससे एक साथ ही शम्बर के समस्त किले ध्वस्त हो जाते हैं, मूल क्रियात्मक तत्त्व में उद्भूत हुए चक्रीय विवर्तनों (भँवर) के समस्त बन्द एक साथ ही निर्मूल हो अस्तित्वहीन हो जाते हैं। इस स्थिति को ऋग्वैदिक मन्त्रों में (आपः) क्रियात्मक मूल तत्त्व के प्रवाह का मुक्त होना कहा गया है। इस प्रकार क्रियात्मक मूल तत्त्व को आदि संवेग (initial impulse) प्राप्त होता है तथा उसमें वृहत अग्नि ताण्डव (big bang) होता है। ध्यान रहे, पूर्व अनुच्छेदों में बिग-बैंग की घटना के पूर्व की स्थिति ऋग्वैदिक परिकल्पनानुसार दर्शाई गयी है। वैज्ञानिक सृष्टि उत्पत्ति में बिग-बैंग की घटना की पूर्ववर्ती घटनाओं के ज्ञान का अभाव है तथा (बिग-बैंग) वृहत अग्नि ताण्डव का कारण क्या था इसके ज्ञान का भी अभाव है।

वृत्र की घटना उच्चाकाश में हुई थी अतः शम्बर के किले उच्चाकाश में स्थित थे। शम्बर की स्थिति को परिपक्व होने में १४ हजार ४ सौ वर्ष लगते हैं अर्थात् मूल तत्त्व को चक्राकार विवर्तन में फँसे हुए जब उक्त समय व्यतीत हो जाता है तब ईश्वर द्वारा वज्रपात का समय परिपक्व (mature) हो जाता है यह तथ्य ऋचा २/१२/११ में सुरक्षित है– (क्र. ८९)

यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत्।
ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः॥

भाष्य — पर्वतेषु क्षियन्तं पर्वत पर रहने वाले शम्बरं शम्बर को यः जिसने चत्वारिंश्यां शरदि चालीसवें वर्ष में अनु अविन्दत् पुनः या क्रमानुसार प्राप्त कर लिया था, ढूंढ लिया था, यः जिसने ओजायमानं ओजस्वी (दानुं, दानु= बूंद, वै. व्या. पृ. ३४१) मूल तत्त्व को शयानं रोककर लेटे हुए अथवा लेटे हुए दानव रूप अहिम् अहि को जघान मारा था सः जनासः इन्द्रः हे मनुष्यों वह इन्द्र है।

ऋचा में शम्बर को अहि कहा गया है अस्तु शम्बर और अहि एक ही हैं। शयन करते हुए मारा जाना वृत्र के लिये भी कहा गया है (ऋ. ३/३२/६, ऋ. १/३२/१०)। मन्त्र में यह गौरव के साथ कहा गया है कि जिन्होंने सोते हुए शम्बर को मारा इसका स्पष्ट अभिप्राय यह है कि आदि कवियों को युद्ध का वर्णन अभीष्ट नहीं है वह कुछ और ही कहना चाहते हैं। ध्यान रहे आकाश गंगाओं (galaxies) की आकृति (spiral type) सर्प की कुण्डली के आकार की होती है। अतः इस तथ्य में भी यह विज्ञान है कि वृत्र कुण्डलाकार (spiral shaped) थे अर्थात् चक्रीय क्रियाओं (cyclic reaction) में संलग्न द्रव्य का फैलाव कुण्डलाकार था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवों का एक वर्ष मानव के ३६० वर्ष के बराबर होता है।

एकं वा एतत् देवानाम् अहः यत् संवत्सर । तै. ब्रा. ३/९/२२

अतः शम्बर की स्थिति परिपक्व होने में १४४०० वर्ष लगते हैं। इस प्रकार ऋग्वेद की विचारधारा के अनुसार सृष्टि उत्पत्ति का विकास क्रम मूल प्रकृति के स्वाभाविक गुणानुसार अत्यन्त धीमी गति से आगे बढ़ता है। इसमें उत्पन्न हुए स्वाभाविक अवरोध (वृत्र) का उन्मूलन ईश्वर द्वारा वज्रपात (नाभिक ऊर्जाओं का नियोजित टक्कर) के संचालन से होता है। इस विवरण में महाविस्फोट के १४ हजार ४ सौ वर्ष पूर्व तक सृष्टि उत्पत्ति का काल जाता है।



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय ७

वृत्रहन्ता इन्द्रः है या अग्निः

(वृत्रहन्ता के व्यापक स्वरूप पर विचार)

ऋग्वेद ज्ञान का आगार है, इसके इन्द्र–वृत्र रूपक में सृष्टि उत्पत्ति सम्बन्धी जटिल दार्शनिक एवं वैज्ञानिक समस्याओं की गुत्थियों को सुलझाया गया है। वेद को वर्णन शैली में रूपक अलंकार का सहारा लिया गया है, साथ ही प्रतीकों का प्रयोग अनवरत रूप से किया गया है। गत अध्यायों में उषा, वृत्र आदि प्रतीकों में निहित संकेतों का अनावरण किया गया है। वेद के मन्त्र परस्पर अविच्छिन्न रूप से सम्बद्ध हैं, अतः किसी मन्त्र को मन्त्र समूह से पृथक् कर स्वतंत्र रूप से उसका अर्थ करना सम्भव नहीं है।

१. क्या वज्र अग्निदेव ने चलाया था–

ऋग्वेद का यह सर्वविदित तथ्य है कि वृत्र पर वज्र चलाने वाला इन्द्र है किन्तु ऋग्वेद में ही उन्हीं ऋषियों द्वारा यत्र-तत्र अग्नि को वृत्र विनाशक कहा जाना क्या आश्चर्यजनक नहीं है। इस विरोधाभास में निहित सत्य का विवेचन उपादेय है। सर्वप्रथम कुछ ऐसे स्थलों का दिग्दर्शन कराना होगा जहाँ अग्नि को वृत्र विनाशक कहा गया है। मण्डल २, सूक्त १ का देवता अग्नि है वा ऋषि गृत्समद है, सूक्त की ११ वीं ऋचा है– (क्र. ९०)

त्वमग्ने अदितिर्देव .... ।
त्वमिला शतहिमासि दक्षसे, त्वम् वृत्रहा वसुपते सरस्वती।

भाषार्थ— हे अग्नि तू ही अदिति है .... हे समर्थ तू ही १०० वर्षों तक सेवनीय वाणी है, हे ज्ञानवान्, धनों के स्वामी तू ही वृत्र विनाशक है।

यह शब्द जोड़-तोड़ के लिये नहीं रखा गया है वरन् वैदिक द्रष्टाओं द्वारा योजनाबद्ध तरीके से रखा गया है। इसी प्रकार मण्डल १, सूक्त ७४ की ३ री ऋचा का पूर्वार्द्ध इस प्रकार है– (क्र. ९१)

उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि ।

भाषार्थ— उत और जन्तवः जीवधारी ब्रुवन्तु कहें कि वृत्रहा अग्निः वृत्र विनाशक अग्नि (उत् अजनि, √जन्=उत्पन्न करना का कर्मवाच्य लुङ्. अजनि है

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृ. ५०६) उद्भूत हुआ है । इस मन्त्र में अग्निः शब्द का प्रयोग भौतिक शक्ति के लिये हुआ है ।

मण्डल ३, सूक्त २० का ऋषि गाथी है । सूक्त की ४ थी ऋचा इस प्रकार है- (क्र. ६२)

अग्निर्नेता भगइव क्षितीनां दैवीनां देव ऋतुपा ऋतावा ।
स वृत्रहा सनयो विश्ववेदाः पर्षद्विश्वातिदुरिता गृणन्तम् ॥

भाषार्थ— अग्निः अग्नि भगइव सूर्य की तरह क्षितीनां लोकों का नेता नेता है, में अग्रणी है । वह ऋतुपाः ऋतुओं का पालन कर्ता अर्थात् भौतिक सत्तात्मक तत्त्व की अवस्थाओं का नियंत्रक (ऋतावा, ऋतावन् = नियमित का एक वचन प्रथमा विभ. पृ. ६३, ६४) गुण स्वभावानुरूप नियमित दैवीनाम् दिव्य शक्तियों का देवः प्रकाशक है । सः वह विश्ववेदाः सभी ऋतुओं का ज्ञाता (सनयः, सन =पुरातन से, पृ. ६८७) सनातन काल से वृत्रहा वृत्र विनाशक (है) । गृणन्तम् प्रार्थना करने वाले को (विश्वा दुरिता अति पषत्, √पृ लेट्) समस्त बुराइयों से पार करे ।

इस मन्त्र में अग्नि के लिये प्रयुक्त विशेषणों से ज्ञात होता है कि अग्नि शब्द का प्रयोग ईश्वर के लिये किया गया है । इस मन्त्र में एक विशेष तथ्य यह आया है कि अग्नि सनयो वृत्रहा सनातन वृत्र विनाशक है इसका अर्थ यह हुआ कि वृत्र भविष्य में भी अस्तित्व में आवेंगे तथा उनका हनन शाश्वत वृत्रहा अग्नि के द्वारा होगा । इससे दो तथ्य प्रस्थापित होते हैं प्रथम यह कि प्रसिद्ध वृत्रहा इन्द्र, अग्नि अभेद प्रस्थापित हुआ है जैसा कि इस वचन 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' में अभिप्रेत है । द्वितीय यह कि वृत्र की घटना ऐतिहासिक नहीं है वरन् भौतिक ही है जो भविष्य में भी होगी ।

ऋग्वेद मण्डल ६, सूक्त १६ का ऋषि भरद्वाज बार्हस्पत्य है । सूक्त के १९ वें, ३४ वें, ४८ वें मन्त्र में अग्नि को वृत्र विनाशक की पदवी से विभूषित किया गया है । १९ वाँ मन्त्र है– (क्र. ६३)

अग्निरागामि भारतो वृत्रहा पुरुचेतनः । दिवोदासस्य सत्पतिः ॥

भाषार्थ — भारतः सबके पोषक पुरुचेतनः महान्, अनन्य ज्ञानवान् वृत्रहा अग्निः वृत्र विनाशक अग्नि को हम (आ–अगामि, √गम् क. वा.) प्राप्त होवें (दिवोदासस्य, दिवः+दासस्य) जो प्रकाश के अनुगामी का सत्पति सच्चा स्वामी है, अधीक्षक है ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस ऋचा में अग्नि शब्द स्पष्ट रूप से ईश्वर के लिये प्रयुक्त हुआ है क्योंकि पुरुचेतनः लक्षण ईश्वर के अतिरिक्त किसी अन्य पर प्रयुक्त नहीं होता। सूक्त की ३४ वीं ऋचा है– (क्र. ९४)

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया ।

द्रविणस्युः धनों की इच्छा वाला, भौतिक विविधता की इच्छा वाला अग्निः ईश्वर या आदिकाल की मूल शक्ति (वृत्राणि जङ्घनत्, √हन् यङ्. लुगन्त लेट् पृ. ५७७) वृत्रों को मारेगा ही।

इस ऋचा में वृत्रों के अनेक होने के तथ्य को दुहराया गया है तथा यह कहा गया है कि वृत्रों को मारने वाला अग्नि प्रत्येक सर्गारंभ में विविधता की इच्छा से प्रेरित होकर ही ऐसा करता है जिसका स्पष्ट अभिप्राय यह है कि वृत्र उन्मूलन सृष्टि रचना सम्बन्धी महत्वपूर्ण गति अवरोध निवारक कर्म है।

इसी प्रकार ४८ वीं ऋचा है– (क्र. ९५)

अग्निं देवासो अग्रियमिन्धते वृत्रहन्तमम् ।

देवासः विद्वान् अग्रियं सर्वप्रथम, अग्रणी, मूल स्वरूप को वृत्रहन्तमं वृत्र विनाशक अग्निं शक्ति को इन्धते प्रकाशित करते हैं।

पूर्वोक्त मन्त्रों में अग्निः शब्द या तो ईश्वर के लिये प्रयुक्त हुआ है या भौतिक मूल शक्ति के लिये। ऋग्वेद का प्रसिद्ध वृत्र विनाशक इन्द्र है। जिन ऋषियों ने इन्द्र को वृत्र विनाशक कहा है उन्हीं ने अग्निः को भी वृत्र विनाशक कहा है। इस विरोधाभास के मध्य सामञ्जस्य होना आवश्यक है।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि अग्निः शब्द किसी चेतन अग्नि-देव के लिये नहीं वरन् इन्द्र के लिये ही प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार इन्द्र को या अग्नि को वृत्र विनाशक कहने से इन्द्र-अग्नि अद्वैत सिद्धि होती है अर्थात् इन्द्र तथा अग्नि एक ही प्रभुसत्ता ईश्वर के दो नाम हैं जो ईश्वर के भिन्न गुण-कर्म के हेतु से रखे गये हैं यह भावना ऋग्वेद के वाक्यों–

'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति'
एक ही सत्ता को विद्वान् कई प्रकार से कहते हैं

'एकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति'
एक ही सत्ता की कल्पना अनेक प्रकार से करते हैं
में निहित है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब दूसरा प्रश्न यह उठता है कि जब अग्नि शब्द का प्रयोग भौतिक सूक्ष्म शक्ति के लिये किया गया है तो यह (वृत्रहा) वृत्र विनाशक पद किस प्रकार उपयुक्त है। ध्यान रहे, यह आलेख (अव आ अदहः दस्यूम् उच्चा दिवः, ऋ.१/३३/७) कि वृत्र को उच्चाकाश में अच्छी तरह जला डाला अध्याय ४ में आ चुका है। इससे यह बात प्रकाश में आती है कि वृत्र को मारने में भौतिक (अग्नि) शक्ति तत्त्व का भी हाथ है। यही तथ्य उपरोक्त मन्त्रों में कहा गया है। इससे वृत्र का भौतिक घटना होना ही सिद्ध होता है। यदि वृत्र को जीवधारी मानें तो इन्द्र के द्वारा मारे गये मृत वृत्र को मात्र दहन करने के कारण अग्नि को वृत्रहन्ता का पद प्राप्त नहीं हो सकता। अस्तु वृत्र भौतिक घटना ही है।



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय ८

त्वष्टा एवं वज्र के स्वरूप की विवेचना

इस शीर्षक के अन्तर्गत त्वष्टा और वज्र के स्वरूप पर ऋग्वेद व ब्राह्मण ग्रन्थ की आन्तरिक साक्षी से प्रकाश डाला जायगा।

१. त्वष्टा मीमांसा –

मन्त्रों में यह तथ्य निर्विवाद रूप से आया है कि वज्र की रचना त्वष्टा ने की थी। ऋग्वेद १०/४८/३ में कहा गया है– (क्र. ९६)

मह्यम् त्वष्टा वज्रं अतक्षत्। मेरे लिये त्वष्टा ने वज्र रचा।

ऋग्वेद १/३२/२ में कहा गया है– (क्र. ९७)

त्वष्टा अस्मै वज्रम् स्वर्यम् ततक्ष।

त्वष्टा ने उसके लिये **स्वर्यम्** घोष करता हुआ वज्र गढ़ा।

अतः त्वष्टा की व्याख्या से वज्र के स्वरूप का घनिष्ट संबंध है। शब्द निर्वचन की दृष्टि से त्वष्टा शब्द के लिये कहा गया है–

त्वष्टा तूर्णमश्नुत इति नैरुक्ताः। त्विषेर्वा स्यात्।
दीप्ति कर्मणः। त्वक्षतेर्वा स्यात्। करोति कर्मणः। निरु. ८/१३

नैरुक्त कहते हैं कि त्वष्टा (यह इसलिये कहलाता है क्योंकि) यह क्षिप्रता से व्याप्त होता है। या यह चमकना अर्थवाली 'त्विष्' धातु से बना है अथवा करना अर्थ वाली त्वक्ष् धातु से व्युत्पन्न है। **त्वेषति दीप्यतीति,** त्विष् दीप्तौ धातु से व्युत्पन्न है (हला. कोश)। महाभारत (१/६५/१४-१५) के अनुसार त्वष्टा बारह आदित्यों में से ११ वाँ आदित्य है–

आदित्यां द्वादशादित्याः सम्भूता भुवनेश्वराः। ....धाता मित्रोऽर्यमा....।
एकादशस्तथा त्वष्टा द्वादशो विष्णुरुच्यते।

विष्णु पुराण के अनुसार त्वष्टा विश्वकर्मा के चार पुत्रों में से एक है–

तस्य पुत्रास्तु चत्वारस्तेषां नामानि मे शृणु। (१/१५/१२२)

त्वष्टा आदित्य है अर्थात् सृष्ट्युत्पत्ति क्रम में मूल शक्ति अदिति से उत्पन्न परिणाम है। आदि सृष्टिकाल में जब प्रकृति अपने स्वनिर्मित चक्रव्यूह में फँस जाती है और उससे उसका निस्तार अपने आप नहीं हो सकता तब ईश्वर द्वारा मूल शक्ति के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस प्रज्वलित रूप से वज्र की रचना होती है प्रकृति के उस दीप्तवान् रूप की संज्ञा त्वष्टा है यह अधिभौतिक रूप है। इस शक्ति का अधिष्ठाता होने से आध्यात्मिक पक्ष में ईश्वर ही त्वष्टा रूप से वरण किया जाता है।

ऋग्वेद (१/११७/२२) के भाष्य में सायण ने इन्द्र को ही त्वष्टा इन्द्रः इति तत्रैव कहा है। त्वष्टा को महाभारत (५/९/३) में प्रजापति अर्थात् ब्रह्मा या ईश्वर कहा गया है–

त्वष्टा प्रजापतिर्ह्यासीत् देवश्रेष्ठो महातपाः।

पौराणिक कथा के अनुसार त्वष्ट अग्निदेव माना गया है। त्वष्टा ने सूर्यतेज कम करने के लिये उसे खराद पर रखकर उसके प्रभामण्डल को छाँटकर परिष्कृत किया (कोश पृ. ४४३)। इस प्रभामण्डल की काट-छाँट से तात्पर्य यह है कि आदिकाल में प्रज्वलित महापिण्ड को त्वष्टा अर्थात् प्रारम्भिक शक्तियों ने चक्राकार गति प्रदान की थी जिससे कट-छँट कर सूर्यों (तारों) की उत्पत्ति हुई। यह भी सर्वविदित है कि सूर्य का प्रभामण्डल नाभिक द्रव्यों के अवखण्डन से बना है। इस प्रकार पौराणिक कथा से भी त्वष्टा के द्वारा महा अग्नि पिण्ड को चक्राकार गति प्रदान करने की बात है यद्यपि कथानक रूपक भाषा में रहस्य को छिपाए है। त्वष्टा को देवताओं का शिल्पी भी कहा जाता है (कोश पृ. ४४३)। देवता मूल तत्त्व की अवस्थाएँ हैं। इनकी उत्पत्ति प्रज्वलित अग्नि काण्ड (हिरण्यगर्भ = बिग-बैंग) के अनन्तर अष्टवर्गी बृहतीः आपः से होती है तथा अग्निकाण्ड त्वष्टा द्वारा रचे गये अष्ट धातु के वज्र के संचालन से होता है। इस प्रकार देवताओं की उत्पत्ति का उपादान कारण अष्टवर्गी बृहतीः आपः या त्वष्टा है तथा प्रकारान्त से उसे देवताओं का शिल्पी कहना उचित है।

२. वज्र मीमांसा–

वज्रः शब्द की व्युत्पत्ति वज् धातु में रन् प्रत्यय से हुई है। वज् धातु का अर्थ है सुदृढ़ होना (वै. व्या.), अतः वज्र का अर्थ है अत्यन्त सुदृढ़। विदित है कि सुदृढ़ता मात्रा की सघनता (density) पर निर्भर है अतः वज्र मात्रा की सघनता का द्योतक है। इस कारण भाषा में वज्र का प्रयोग कठोरता का परिचायक है वज्रादपि कठोराणि रघु.।

वज्र विद्युन्मय कहा गया है इस कारण वज्र विद्युत का पर्याय है (कोश पृ.८९७)।
वज्र में आठ धारें होती हैं (अष्टाश्रिर्वै वज्रः। ऐ. ब्रा. २/१/१)
अर्थात् वज्र प्रकृति के आठ परिणामों से बना था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान से विदित होता है कि प्रमाणित समय (standard time) पर द्रव्य (matter) अष्टवर्गी था। इस अष्टवर्गी द्रव्य को प्लाज्मा (plasma) कहते हैं।

३. वज्र का आधारभूत द्रव्य बृहतीः आपः (प्लाज्मा) था–

विज्ञान से यह ज्ञात होता है कि जैसे-जैसे द्रव्य सूक्ष्म अवस्थाएँ ग्रहण करता है वैसे-वैसे उसका घनत्व बढ़ता जाता है अर्थात् द्रव्य की सघनता एवं कठोरता बढ़ती जाती है। इसका तात्पर्य यह है कि द्रव्य की सूक्ष्माति-सूक्ष्म अवस्था सबसे अधिक सघन एवं कठोर होती है।

ऋचाओं में वज्र को अपस्तमं अर्थात् आपः के सर्वोन्नत भाग से निर्मित कहा गया है। ध्यान रहे, आपः मूल तत्त्व की क्रियात्मक अवस्था है तथा 'तम' अतिशयार्थक प्रत्यय है। 'अपस्तम' सर्वोत्कृष्ट, सर्वोन्नत सूक्ष्म अवस्था वाची है। अतः वज्र का निर्माण सूक्ष्माति-सूक्ष्म अवस्था वाले द्रव्य से हुआ था फलतः वज्र कठोरता में सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। वज्र का विवरण ऋचाओं से दिया जाता है– (क्र. ९८)

अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद् वज्रं स्वपस्तमं स्वर्यं१रणाय। १/६१/६

इसके लिये ही त्वष्टा स्वर्यम् घोष करता हुआ सु–अपस्तमं आपः के सर्वोन्नत भाग को रणाय संघर्ष हेतु वज्र को रचे।

यहाँ 'अपस्तम' आपः की सर्वोन्नत अवस्था के लिये प्रयुक्त हुआ है। वज्र को त्वष्टा ने रचा। त्वष्टा अष्टवर्गी द्रव्य संघात का प्रतीक है। अतः वज्र अष्टवर्गी बृहती आपः व सोम से निर्मित हुआ था। निर्माण होते ही वज्र घोष कर रहा था। इसका तात्पर्य यह है कि वज्र अस्त्र नहीं था वरन् सूक्ष्म तत्त्वों का मण्डलाकार बादल था।

अष्टवर्गी सूक्ष्म शक्तियों का अधिष्ठाता होने के कारण प्रकारान्त से ईश्वर को ही कभी-कभी त्वष्टा कहा गया है। इस विषय की ऋचा (१०/५३/९) पर प्रकाश डाला जाता है– (क्र. ९९)

त्वष्टा माया वेदपसामपस्तमो बिभ्रत् पात्रा देवपानानि शन्तमा।
शिशीते नूनं परशुं स्वायसं येन वृश्चादेतशो ब्रह्मणस्पतिः॥

भाष्य— त्वष्टा सूक्ष्म तत्त्वों के अधीक्षक ईश्वर ने मायाः आपः की [अपसाम्, अपस् (=चुस्त) की ष. विभ. वै. व्या.] दक्षता, स्फूर्ति को (वेद, √विद् लड्.ल.) जाना है। वह (देव पानानि, √पा=रक्षणे के शानज. कृ. पान से) देवों की

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्षा के अनेक शंतमा महान् कल्याणकारी **अपस्तमः** आपः के प्रकर्ष उन्नत भाग के (**पात्रा**, पात्रं = आधार) आधारभूत रूप **बिभ्रत्** धारण कर रहा है। **ब्रह्मणस्पतिः** प्रकृति का स्वामी ईश्वर **सु-आयसम्** उत्कृष्ट सघन, कठोर (**परशुम्**, परशुः = वज्र, निघण्टु २/२०) वज्र को (**शिशीते**, √शा = तेज करना) तेज करता है **येन** जिससे (**नूनं**, पृ. ११५ वै. व्या.) शीघ्र, तत्काल **एतशः** मायावी को (**व्रश्चात्**, √व्रश्च् = काटना की लेट्) काट सके।

ऋचा में आपः के उन्नत भाग के आधारभूत दो रूप कहे गये हैं जो विज्ञान प्रोक्त द्रव्यांश एवं विकिरण हैं इसका तात्पर्य यह है कि अपस्तम में दोनों भाग सम्मिलित हैं। ऋचाओं में वज्र की रचना आपः के शीर्ष भाग से होना कहा गया है तथा वज्र का रचयिता त्वष्टा कहा गया है। बृहतीः आपः के अष्ट संघटक का सामूहिक नाम त्वष्टा है। ऋचा में त्वष्टा को ब्रह्माण्ड का स्वामी कहा गया है अस्तु त्वष्टा कोई देव विशेष नहीं है, अष्टवर्गी बृहतीः आपः का अधीक्षक होने के नाते ईश्वर को त्वष्टा कहा गया है। ऋचा में '**बिभ्रत् अपस्तमं**' पद से उपादान कारण अष्ट संघटक का गौणत्व दर्शाते हुए निमित्त-कारण (निर्माता) ईश्वर में वज्र निर्माण कर्म की प्रधानता बताई गयी है जैसे राकेट निर्माण में वैज्ञानिक की प्रधानता है। ईश्वर के द्वारा वज्र का रचा जाना यह प्रस्थापित करता है कि वज्र रचना सृष्टि संबंधी कार्य है। देवराज इन्द्र वृत्रासुर की कथा काल्पनिक है, वेद की आन्तरिक साक्षी के प्रतिकूल है।

४. वज्र सूर्य की तरह प्रज्वलित था-

वज्र केवल शब्द ही नहीं कर रहा था वरन् वह सूर्य की तरह प्रज्वलित था। इस तथ्य पर ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त १०० के १३ वें मन्त्र से प्रकाश डाला जाता है, मन्त्र है- (ऋ. १००)

तस्य वज्रः क्रन्दति स्मत् स्वर्षा दिवो न त्वेषो रवथः शिमीवान्।

तस्य वज्रः उसका वज्र (**शिमीवान्**, √शिम् = परिश्रम से संज्ञा) शक्तिशाली **दिवः नः** सूर्य के समान (**स्वर्षा** = स्वः सा) प्रकाशवान् (**त्वेषः**, त्विष् = दीप्तौ) दीप्तिवान्, तेजस्वी **रवथः** शब्द करने वाला **क्रन्दति स्मत्** बहुत गर्जन किया करता है।

सूर्य की तरह प्रदीप्त, शब्द करता हुआ, आपः के शीर्ष भाग से ईश्वर द्वारा बनाया गया यह वज्र आद्य द्रव्यों का प्रज्वलित बादल ही था। वज्र किरणों का बना था तथा वज्र के संचालन के अनन्तर सूर्य की उत्पत्ति हुई अर्थात् वज्र संचालन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की घटना आदिकाल में हुई थी। उस घटना के बाद ही लोकों की उत्पत्ति हुई थी। इस तथ्य को प्रतिपादित करने वाली ऋचा १/५२/८ को उद्धृत किया जाता है। मन्त्र है– (क्र. १०१)

जघन्वाँ उ हरिभिः संभृतक्रतविन्द्र वृत्रं मनुषे गातुयन्नपः।
अयच्छथा बाह्वोर्वज्रमायसमधारयो दिव्या सूर्यम् दृशे ॥

भाष्य — हे **संभृतक्रतो** समस्त क्रियाशील शक्तियों को धारण करने वाले इन्द्र आप (**हरिभिः**, हरिः = प्रकाश किरण, अग्नि, कोश पृ. ११६६। हरयः सुपर्णा आदित्य रश्मयः, निरु. ७/२४। हरितो रस हरण शीला रश्मयः, सायण) किरणों से **वृत्रं** वृत्र को **जघन्वान्** मारने वाले **उ** ही हैं। **अपः** आपः को, मूल क्रियात्मक तत्त्व को **गातुयन्** गतिशील करने की इच्छा वाले आपने **आयसम् वज्रम्** प्रबल वज्र **बाह्वोः** रूप बाहुओं को (**अयच्छथाः**, √यच्छ्, द्वितीय कोटि लुङ्) चलाया। **उ** तथा **मानुषे दृशे** मानव को दृष्टि प्रदान करने के लिये **सूर्यम् दिवि अधारयः** सूर्य को आकाश में स्थापित किया।

ऋचा में यह कहा गया है कि क्रियात्मक मूल तत्त्व का विकास वृत्र को उत्पत्ति के कारण अवरुद्ध हो गया था। इस अवरोध को हटाने की इच्छा से समस्त शक्तियों के स्वामी ईश्वर ने किरण रूप वज्र शक्ति से वृत्र का निवारण किया। अनियमित को नियमित किया। इस घटना के अनन्तर ही सृष्टि विकास क्रम चल पड़ा तथा सूर्य की उत्पत्ति हुई। अस्तु वृत्र वज्र की घटना आदि सृष्टिकाल की है तथा सृष्टि उत्पत्ति संबंधी है।

वज्र पर्वताकार था, ज्योतिर्मय था। यह बात १/५७/२ में कही गयी है, ऋचा है– (क्र. १०२)

यत् पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः।

यत् जो **इन्द्रस्य** इन्द्र का **श्नथिता** बींधने वाला **हर्यतः**, हर्यति = किरण, निघ. २/६) कान्तियुक्त, किरणमय **हिरण्ययः** ज्योतिर्मय **वज्रः** वज्र **पर्वते** पर्वत के **सम्** समान (**अशीत**, √श्या = जमाना का क्तान्त शीत) अदृढ़ हुआ, हिला **न** नहीं।

अस्तु वज्र पर्वताकार अर्थात् मण्डलाकार किरणमय विद्युन्मय बादल (नेबुला) था। यह आपः अर्थात् अष्टवर्गी क्रियात्मक तत्त्व (प्लाज्मा) से बना था। ऋचाओं में अतिशयार्थक शब्द 'अपस्तम' क्रियात्मक तत्त्व आपः की शीर्षस्थ अवस्था का द्योतक है जो वज्र की प्रज्वलित विद्युन्मय तरंग वाली विकिरण की (quantum state) अवस्था है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वज्र का आधारभूत द्रव्य अप् था–

वज्र की रचना आपः से हुई थी, इस तथ्य को शतपथ ब्राह्मण (वै. व्या. पृ. ३८० से उद्धृत) ने अपने तरीके से एक रूपक में व्यक्त किया है, यथा- (क्र. १०३)

तावश्विनौ च सरस्वती च अपां फेनं वज्रमसिञ्चन् ।

अश्वियों और सरस्वती ने आपः के झाग को वज्र रूप में परिवर्तित कर दिया (वै. व्या.) । सरस्वती ईश्वरीय निर्मात्री शक्ति है ।

अश्विनौ मूल तत्त्व के द्रव्य भाग (matter) कण–प्रतिकण (particle–antiparticle) के द्योतक हैं तथा आपः मौलिक सोम विकिरण (cosmic radiation) है । ईश्वरीय सकाश से इन शक्तियों के क्रियात्मक होने पर व उनमें मन्थन होने से झाग उत्पन्न होता है । इसी झाग को पूर्वोक्त मन्त्रों में अपस्तम (आपः का उन्नत शीर्ष भाग जो मन्थन से होता है) कहा गया है । यह अपस्तम बृहती आपः, आपः के विस्तृत स्वरूप का पर्याय है । अस्तु समस्त मीमांसा प्रकारान्त से अनुरूप है ।

शतपथ ब्राह्मण ने अन्यत्र स्पष्ट शब्दों में वज्र व आपः की एकता को प्रतिपादित किया है– (क्र. १०४)

वज्रो हि वा आपः (वै. व्या. पृ. ३३३)

आपः वस्तुतः वज्र है ।

वज्र और कुछ नहीं है आपः ही है । आपः में ही वृत्र ने गतिरोध उत्पन्न किया था । आपः के प्रवाह को ही वज्र से नियमित किया गया । समस्त क्रियाओं, कार्य-कलापों का आधारभूत तत्त्व आपः अर्थात् प्रकृति की क्रियाशील अवस्था थी । अस्तु ये सभी विवरण आदिकाल की आद्या क्रियात्मक शक्ति की अवस्थाओं का दिग्दर्शन करते हैं ।

यह ध्यान में रखा जाना चाहिये कि जल तरल है, कोमल है जल वज्र नहीं हो सकता न ही वज्र जल हो सकता है वज्र कठोरता की पराकाष्टा है । कठोरता मात्रा की सघनता का पर्याय है । मात्रा की सघनता पर कठोरता निर्भर है । द्रव्य जैसे-जैसे परमाणु रूप और मौलिक कणों (इलेक्ट्रान-प्रोटान आदि) के रूप में परिवर्तित होता है उसका घनत्व दबाव के साथ बढ़ता जाता है । विज्ञान से हमें ज्ञात है कि बिग-बैंग के समय मौलिक तत्त्वों और ऊर्जाओं का घनत्व ४०० टन प्रति घन सेन्टीमीटर से ४००० टन प्रति घन सेन्टीमीटर तक था । यही द्रव्य वेद में अपस्तम कहा गया है जो वेद के वज्र की रचना का आधारभूत द्रव्य था ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस धारणा के आधार पर कि प्राचीन ग्रन्थ वेद में विज्ञान नहीं हो सकता इन्द्र, वृत्र और वज्र के स्वरूप के विषय में कपोल कल्पित किस्से कहानी गढ़े गये हैं। इन ऐतिहासिक कहानियों का कोई आधार नहीं है। वृत्र की उत्पत्ति आदि सृष्टिकाल में मौलिक तत्त्वों में हुई थी। आकाशवर्ती उस वृत्र के उन्मूलन के लिये इन्द्र द्वारा वज्र का संचालन किया गया। वज्र कठोरतम द्रव्य का द्योतक है और विज्ञान से हमें यह विदित है कि आदि सृष्टिकाल में द्रव्य भाग एवं ऊर्जा का घनत्व इतना अधिक था कि हमारी डाट पेन्सिल हजारों टन वजन की होगी। वेद के वज्र के कठोरतम होने की कल्पना का आधुनिक विज्ञान के आदिकाल के मौलिक तत्त्वों के अत्यधिक सघन होने के ज्ञान का आश्चर्यजनक साम्य हमें यह सोचने पर विवश करता है कि वेद में सचमुच, यथार्थ सृष्टि विज्ञान है क्योंकि उस सुदूर भूतकाल में इस विज्ञान का स्रोत वास्तविक परीक्षण एवं अन्वेषण का होना संभव प्रतीत नहीं होता अतः यह ज्ञान दैवी प्रेरणा के फलस्वरूप ही प्राप्त हुआ यह एक स्वाभाविक निष्कर्ष ही है।



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय ६

वेद में आधुनिक विज्ञान के महाविस्फोट (बिग-बैंग) की परिकल्पना

वेद दर्शन एवं विज्ञान सम्बन्धी रहस्यों के आगार हैं किन्तु वेद की भाषा परोक्ष, प्रतीकात्मक एवं संकेतात्मक है तथा अलङ्कारों विशेषकर रूपकों से परिपूर्ण है। वेद के अपने प्रतीक (सिम्बल) हैं वेद की परिकल्पनाओं के प्रतिपादन में उन प्रतीकों का महत्वपूर्ण योगदान है।

ऋग्वेद के अनुसार आदि सृष्टिकाल में हिरण्यगर्भः की उत्पत्ति हुई थी जिसका द्रष्टा मात्र ईश्वर था। यह हिरण्यगर्भ क्या है इसके स्वरूप का निर्धारण इस अध्याय में किया गया है।

१. विज्ञान की परिकल्पना –

सृष्टि उत्पत्ति विज्ञान (cosmology) आधुनिक गवेषणा का एक महत्वपूर्ण विषय है। सर आईन्सटीन के सूत्रों के आधार पर आधुनिक विज्ञान ने (बिग-बैंग) महाविस्फोट माडेल तैयार किया है। इस प्रतिमान के अनुसार सृष्टि आरंभ एक महाविस्फोट से होता है जिसमें समस्त भौतिक द्रव्य एकत्र होकर एक महान् प्रज्वलित अग्नि पिण्ड में परिवर्तित हो गया था वह पिण्ड क्वान्टम अवस्था (Quantum state) में था तथा उसका ताप अरबों डिग्री सेन्टीग्रेट था। विज्ञान के अनुसार उस समय प्रकृति त्रिवर्गी थी प्रकृति के ये वर्ग कण, प्रतिकण एवं विकिरण (particle, antiparticle and radiation) कहे गये हैं। कण, प्रतिकण को संयुक्त रूप से द्रव्य भाग (मेटर) कहा जाता है। उस द्रव्य भाग (मेटर) एवं विकिरण (radiation) के मध्य निरन्तर मंथन हो रहा था अर्थात् द्रव्य भाग का परिवर्तन विकिरण में और विकिरण का परिवर्तन कण-प्रतिकण में हो रहा था। उस समय द्रव्य भाग अर्थात् कण-प्रतिकण के संयुक्त रूप पर विकिरण का वर्चस्व था, अर्थात् विकिरण का घनत्व द्रव्य भाग से अधिक था। आगामी अनुच्छेदों में वैज्ञानिक घटना क्रम का ऋग्वैदिक घटना क्रम से तुलनात्मक अध्ययन किया जाना अपेक्षित है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२. ऋग्वैदिक अवधारणा–

ऋग्वेद के अनुसार मूल भौतिक उपादान कारण के क्रियात्मक होते ही सृष्टि रचना की आद्यावस्था प्रारंभ हुई। इस क्रियात्मक त्रिवर्गी तत्त्व को ऋग्वेद में आपः व माया प्रतीकों से प्रतिष्ठित किया गया है। इस अवस्था का पर्याप्त विज्ञान में उपलब्ध नहीं है। इस त्रिवर्गी शक्ति में मित्र, वरुण प्रकृति का द्रव्य भाग बनाते हैं एतदर्थ विज्ञान के कण प्रतिकण का प्रतिनिधित्व करते हैं। अर्यमा प्रकृति की विकिरण तरंगें हैं सृष्टि में नियोजित होने पर विकिरण का प्रतीक सोम है (भाग १)। ऋग्वेद के अनुसार उस समय प्रकृति के द्रव्य भाग (मित्र वरुण) पर सोम का वर्चस्व था। आरंभ में किरणों का एक महामण्डल उद्भूत हुआ (अनु. ६)। क्रियात्मक होते ही त्रिवर्गी शक्ति की परस्पर क्रिया एवं संयोग के परिणामस्वरूप यौगिकों की उत्पत्ति हुई। प्रकृति के इस विस्तृत रूप को बृहती आपः कहा गया है जो विज्ञान की प्रारम्भिक अवस्थाओं को सन्निहित करती है। इसी अन्तराल में बृहत् अग्नि पिण्ड उद्भूत हुआ। ऋग्वेद में इस घटना का प्रतीक हिरण्यगर्भ है। ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त ७२ में इस आदिकाल के अग्नि ताण्डव (बिग-बैंग) का नाम मार्ताण्डम् आया है। मार्ताण्डम् का अर्थ सूर्य कहा गया है (कोश) जो आदिकाल के संदर्भ में महासूर्य अर्थात् आदिकाल के मौलिक पदार्थ का प्रज्वलित महामण्डल है। शब्द निर्वचनानुसार मार्ताण्डम् = मृत + अण् + अण्डम् है जिसका अर्थ मृ = मरना से मारक पिण्ड अर्थात् विस्फोटक पिण्ड होता है।

यहाँ यह बता देना समयानुकूल है कि महाविस्फोट (बिग-बैंग) के पूर्व आदि अनुबन्ध (initial conditions) क्या थे इसका ज्ञान विज्ञान में उपलब्ध नहीं है अर्थात् महाविस्फोट क्यों हुआ, किन परिस्थितियों के कारण हुआ इससे विज्ञान अनभिज्ञ है किन्तु ऋग्वेद में इस अग्नि ताण्डव का कारण बताया गया है जिसका विवरण पूर्व अध्यायों में दिया जा चुका है।

३. हिरण्यगर्भः की असाधारण महत्ता क्यों है–

श्वेताश्वतर उपनिषद् (३/४) में श्लोक आया है– (क्र. १०५)

यो देवानाम् प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रूद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भम् जनयामास पूर्वम् स नो बुद्धया शुभया संयुनक्तु॥

यः जो रुद्रः रुद्र, ईश्वर देवानाम् देवों को प्रभवः च उद्भवः उत्पन्न करने वाला और बढ़ाने वाला है च तथा विश्वाधिपः जिस विश्व के अधिपति महर्षि महाज्ञानी ने पूर्वम् आदि सृष्टिकाल में हिरण्यगर्भम् हिरण्यगर्भ को जनयामास

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पन्न किया था सः नः वह हमें शुभया बुद्धया शुभ बुद्धि से सं युनक्तु संयुक्त करे ।

श्लोक में यह कहा गया है कि जिस ईश्वर ने आदिकाल में हिरण्यगर्भः को उत्पन्न किया था वह हमें शुभ बुद्धि से संयुक्त करे । स्पष्ट है कि हिरण्यगर्भ कोई महत्वपूर्ण घटना है जिसका उल्लेख ईश्वर के महत्व की अभिवृद्धि करने के लिये किया गया है ।

उपनिषद् ने इसी तथ्य को (४/१२ में) फिर से दुहराया है– (क्र. १०६)

हिरण्यगर्भम् पश्यत जायमानं स नो बुद्धया शुभया सं युनक्तु ।

जिसने हिरण्यगर्भः को उत्पन्न होते हुए देखा था वह हमें शुभ बुद्धि से संयुक्त करे ।

श्लोक में कहा गया है कि हिरण्यगर्भ को ईश्वर ने उत्पन्न होते हुए देखा था अतः हिरण्यगर्भ ईश्वर से भिन्न किसी भौतिक स्थिति का द्योतक है । यह जिज्ञासा का विषय है कि वह हिरण्यगर्भ ऐसी कौन-सी स्थिति है जिसका देखा जाना ईश्वर की महानता का द्योतक है । स्पष्ट है कि यह कोई असाधारण स्थिति है जो ईश्वर का सर्वोच्च कृत्य है । इस असाधारण स्थिति की गवेषणा महत्व का कार्य है ।

४. हिरण्यगर्भः शब्द का निर्वचन–

शतपथ ब्राह्मण (का. ६/अ. ७) में सूत्र आया है जिसमें हिरण्य का अर्थ ज्योति कहा गया है यथा–

ज्योतिर्वै हिरण्यम् ज्योतिरेपोऽमृतं हिरण्यं ।

निश्चय ही हिरण्य ज्योति ही है यह अविनाशी ज्योति है अर्थात् हिरण्यम् अखण्ड मूल तत्त्व रूप ज्योति है ।

अमरकोश ने हिरण्यगर्भः शब्द का निर्वचन इस प्रकार किया है–

"हिरण्यं हिरण्यमयं अण्डं तस्य गर्भ इव"

ज्योतिर्मय पिण्ड जिस गर्भ में है वह ।

यह कौन-सा पिण्ड है, यह कब उत्पन्न हुआ था इस विषय पर मनुस्मृति में अत्यन्त स्पष्ट विवरण उपलब्ध है । स्मृति के (अ. १/श्लो. ८) में आदि सृष्टिकाल में विविध रचना की इच्छा से ईश्वर ने क्या किया इसका स्पष्ट वर्णन है– (क्र.१०७)

सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाष्य — सः उस ईश्वर ने अभिध्याय विचारपूर्वक स्वात् शरीरात् अपने शरीर भूत उपादान कारण से विविधाः प्रजाः विविध सृष्टि सिसृक्षुः रचना चाही एव अतएव अप अप् तत्त्व को आदौ सर्वप्रथम (ससर्ज, √सृज् = बाहर निकालना का लिट् ल.) प्रकट किया। तासु बीजम् उसी बीज को अवासृजत् नीचे के अर्थात् आगामी रूपों में प्रकट किया, रचा।

यह प्रस्थापित किया जा चुका है कि "अप्" जल के लिये प्रयुक्त नहीं हुआ है अप् मूल आद्या शक्ति, मूल तत्त्व की क्रियात्मक अवस्था है (ग्रन्थ भाग १)। जल पांच महाभूतों में से एक है जिसकी उत्पत्ति स्मृति ने स्वयं महत्तत्त्व, अहंकार, तन्मात्रा के अनन्तर बताई है। स्मृति के आगामी श्लोकों (१/७६-७८) में आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से अप् (जल) की उत्पत्ति कही गयी है अतः संदर्भित श्लोक में अप् मूल तत्त्व की क्रियात्मक अवस्था का द्योतक है। 'सर्वे सर्वार्थ वाचकाः' के न्याय से एक शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त हो सकता है।

पुनः "अप्" शब्द का अर्थ सर्वव्यापी मूल तत्त्व के लिये स्वादि परस्मैपदी धातु आप्लृ = व्याप्तौ (अमर कोशः) के आधार पर उपयुक्त है। यह तथ्य तुरन्त निश्चित हो जाता है जब हम स्मृति का आगामी श्लोक देखते हैं जिसमें अग्नि पिण्ड की उत्पत्ति कही गयी है– (क्र. १०८)

तदण्डमभवद्धेमं सहस्रांशुसमप्रभम्।*

उस 'अप्' तत्त्व का पिण्ड स्वर्ण वर्ण वाला सहस्रों सूर्यों की तरह प्रभा वाला हुआ।

स्पष्ट है कि अप् तत्त्व जल नहीं, जल से अग्नि पिण्ड की उत्पत्ति बुद्धि व प्रत्यक्ष ज्ञान के विपरीत ही नहीं वरन् असम्भव है एतदर्थ शास्त्र के तात्पर्य को, तत्त्व को ग्रहण न करना मूल सत्य को, शास्त्र प्रोक्त विज्ञान को तिरोहित करना है। अतः आदिकाल में उद्भूत हुआ यह महाग्नि पिण्ड ही हिरण्यगर्भः के नाम से कहा गया है। स्मृति की हिरण्यगर्भः सम्बन्धी कल्पना का स्रोत ऋग्वेद में विद्यमान है।

५. ऋग्वेद में हिरण्यगर्भः का विवरण–

अन्वेषण से ज्ञात होता है कि उपनिषद्, स्मृति आदि में आये हिरण्यगर्भः के विवरण का स्रोत ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त १२१ है जिसका ऋषि हिरण्यगर्भ प्राजापत्यः है। सूक्त की प्रथम ऋचा में हिरण्यगर्भः शब्द आया है इस हिरण्यगर्भः

---

* अंशुः = सूर्य, हला. कोश।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का तात्पर्य जिज्ञासा का विषय है। ऋचा है– (ऋ. १०९)

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

भाष्य— अग्रे आदिकाल में हिरण्यगर्भः हिरण्यगर्भ सम्–अवर्तत सम्पूर्ण रूप में अस्तित्ववान् था तदा तब भूतस्य जातः पदार्थों की अवस्थाओं को उत्पन्न करने वाला एकः पतिः एक अद्वितीय अधिष्ठाता आसीत् विद्यमान था सः वही इमां पृथिवीं उत द्याम् इन पृथ्वी व द्युलोक को दाधार धारण करता है। तब अन्य कस्मै देवाय हविषा विधेम किस देव की अर्चना का विधान करें (क्योंकि) एक अद्वितीय स्वामी के अतिरिक्त अन्य चेतन सत्ता का आदिकाल में अभाव था अतः वही शाश्वत सत्ता आराधना का विषय है।

आदि सृष्टिकाल में हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति के समय एकमात्र जगत नियंता ईश्वर सह-अस्तित्ववान् था। वही उस हिरण्यगर्भ स्थिति का एकमात्र साक्षी है वही ईश्वर सभी प्राणी मात्रों का जीवन प्रदाता व पृथ्वी द्युलोक आदि समस्त लोकों का धारणकर्ता है। जहाँ पृथ्वी द्युलोक की उत्पत्ति चर्चा का विषय है वहाँ 'हिरण्यं' का अर्थ सोना करना अत्यन्त संदर्भरहित है तथा महान् हेत्वाभास (असंगति) का बोधक है। आदि सृष्टिकाल में ईश्वर के अतिरिक्त केवल हिरण्यगर्भ था तब पृथ्वी, प्रकाशित लोक भी अस्तित्व में नहीं आये थे।

भाष्यकारों ने हिरण्यगर्भः का अर्थ ईश्वर लिया है पर यह विचारणीय है कि उपनिषद् ने हिरण्यगर्भः को ईश्वर से पृथक् अस्तित्व वाला माना है और स्पष्ट कहा है–

हिरण्यगर्भम् जनयामास पूर्वम् स ....
जिसने आदिकाल में हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया था वह ईश्वर

हिरण्यगर्भम् पश्यत जायमानम् स ....
जिसने हिरण्यगर्भ को उत्पन्न होते हुए देखा वह ईश्वर।

अतः हिरण्यगर्भ न केवल ईश्वर से पृथक् सत्ता वाला है वरन् वह उत्पत्ति-धर्मी है और उत्पत्तिधर्मी सत्ता प्रकृति से उत्पन्न भौतिक स्थिति ही हो सकती है।

उपनिषद् वेद से जुड़ा हुआ साहित्य है और किसी भी भाष्यकार के भाष्य से उपनिषद् का मत वेद की भावना के अधिक निकट है। दर्शन शास्त्रों ने तो उपनिषद् को श्रुति कहकर वेद ही माना है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनः हिरण्यगर्भ कौन-सी भौतिक स्थिति है इस रहस्य का अनावरण उसी सूक्त की ७ वीं ऋचा स्पष्ट रूप से कर रही है। ऋचा है– (ऋ. ११०)

आपो ह यद् बृहतीर्विश्वमायन्गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम्।
ततो देवानाम् समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

भाष्य— यत् ह जब निश्चय ही या प्रसिद्ध है कि जब बृहतीः आपः आपः की विस्तृत विकृतियाँ गर्भं अपने अन्तस् में (दधाना, धा का शानच् दधान) धारण किये विश्वं अग्निं समग्र अग्नि पिण्ड को जनयन्तीः उत्पन्न करती हुई आयन् आयी थीं ततः तब देवानाम् असुः समस्त देवों (भौतिक शक्तियों) का जीवन रूप एकः एक अद्वितीय अधिपति सम् अवर्तत सम्यक् वर्तमान था।

ऋचा में कहा गया है कि आपः की विस्तृत विकृतियों द्वारा समग्र अग्नि पिण्ड धारण किया गया। अतः आपः से जल का तात्पर्य कदापि नहीं है क्योंकि जल से अग्नि की उत्पत्ति असम्भव है। इस प्रकार आपः मूल तत्त्व की क्रियात्मक अवस्था है मनुस्मृति का भी स्रोत यही ऋचा है।

दूसरा तथ्य यह है कि इस अग्नि पिण्ड की उत्पत्ति की घटना आदिकाल की है। उस समय देवों अर्थात् भौतिक शक्तियों की उत्पत्ति नहीं हुई थी क्योंकि उस समय देवों को जीवन देने वाला, उनका उत्पत्तिकर्ता एकमात्र अधिपति ईश्वर वर्तमान था। इस प्रकार देव उत्पत्तिवान् भौतिक सत्ताएँ हैं। जिनका निमित्त कारण ईश्वर तथा उपादान कारण अग्नि पिण्ड था क्योंकि इन दो के अतिरिक्त कोई अन्य सत्ता न थी।

इस ऋचा में हिरण्यगर्भः की लगभग परिभाषा ही है अतः अन्य स्रोत पर निर्भरता अनावश्यक है। ऋचा द्वारा हिरण्यगर्भः का निर्वचन इस प्रकार हुआ है– अग्रे आदि सृष्टिकाले सर्गारंभे गर्भम् दधाना अभ्यन्तरे वर्तमाने बृहतीरापो प्रकृतेरवस्थाविशेषो बृहदाकारं विश्वम् अग्निम् अग्निमयं पिण्डं जनयन्ती प्रकटी करोति ततो ह पिण्डमुच्यते हिरण्यगर्भः।

६. बृहत् अग्निकाण्ड का आधारभूत द्रव्य बृहतीः आपः था–

पूर्व अनुच्छेद में यह बताया गया है कि आदिकाल में बृहतीः आपः में बृहत् अग्नि पिण्ड उद्भूत हुआ था। ऋग्वेद के उसी सूक्त (मण्डल १०/सूक्त १२१) में उसी तथ्य की लगातार दो ऋचाओं में प्रकारान्तर से पुनरावृत्ति की गयी है जो उस असाधारण घटना को प्रस्थापित करने के उद्देश्य से ही हुई है। सूक्त की ८ वीं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋचा है– (क्र. १११)

यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम् ।
यो देवेष्वधि देव एक आसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

भाष्य— यः चित् जिस ईश्वर ने महिना अपनी महिमा से आपः क्रियात्मक मूल तत्त्वों को दक्षं आद्या सामर्थ्य दधाना धारण किए हुए यज्ञं सृष्टि रचना रूप यज्ञ को जनयन्तीः उत्पन्न करते हुए परि अपश्यत् पूर्ण रूप में देखा था यः जो देवेषु अधि देवः देवों में अध्यक्ष देव एकः केवल अकेला ही उस समय आसीत् वर्तमान था न च अन्यः अन्य कोई नहीं तब किस देव के लिये अर्चना का विधान करें वस्तुतः उसी देव के लिये जो एकमात्र त्रिकाल सत् है ।

अप् तत्त्व से कौन-सा सृष्टि यज्ञ आरम्भ हुआ था ? क्या जल से यज्ञ सम्भव है ? यह बात कि ईश्वर ने उस यज्ञ को देखा था ईश्वर की महिमा को बढ़ाने के लिये कही गयी है । उस समय एकमात्र देवाधि-देव वर्तमान था । देव (भौतिक सत्ताएँ) अस्तित्व में नहीं आये थे । आदिकाल में हुआ यह यज्ञ सृष्टि रचना हेतु हुए (यज्=संगतिकरणे) तत्त्व संगतिकरण के अतिरिक्त और कुछ नहीं था । क्र. ५ व ६ की ऋचाओं में वर्णित महा अग्नि काण्ड, हिरण्यगर्भः को ही यहाँ प्रकारान्तर से यज्ञः कहा गया है जिसका आधारभूत द्रव्य प्रकृति का क्रियात्मक रूप आपः था । ईश्वर और मूल प्रकृति के अतिरिक्त उस समय अन्य कुछ नहीं था । यह तथ्य ऋचोक्त है ।

ध्यान रहे, दक्षः शब्द सर्गारंभ की प्रारम्भिक सामर्थ्य (initial capacity) के लिये प्रयुक्त होता है । यथा–
अदितेः दक्षो अजायत (ऋ. १०/७२/४) मूल आद्या शक्ति से दक्ष अर्थात् आद्या सामर्थ्य उत्पन्न हुई । दक्षस्य वादिते जन्मनि (ऋ. १०/६४/५) । मूल आद्या शक्ति अदिति से (सृष्टि उत्पादक) प्रारम्भिक आद्या सामर्थ्य उत्पन्न होने पर । इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि ऋग्वेद में अनेक प्रतीकों का प्रयोग निश्चित तात्पर्यों के लिये हुआ है । दक्षः शब्द भी एक ऐसा ही प्रतीक है जैसे आपः, हिरण्यगर्भः आदि हैं ।

इसी सूक्त की ९ वीं ऋचा में बृहती आपः को पृथ्वी द्युलोक आदि से विशिष्ट पद पर प्रतिष्ठित किया गया है जो बृहतीः आपः के विशिष्ट प्रतीकात्मक प्रयोग पर स्पष्ट प्रकाश डाल रहा है, ऋचा है– (क्र. ११२)

मा नो हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवं सत्य धर्मा जजान
यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै ....

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यः पृथिव्याः जनिता जो पृथ्वी का उत्पन्नकर्ता है वा तथा यः जिस सत्य धर्मा सत्य नियमों के धारणकर्ता ने दिवं जजान द्युलोक को उत्पन्न किया है चन्द्रा अत्यन्त प्रकाशवान् बृहतीः आपः वृहतीः आपः को च भी यः जिसने (जजान, √जन् की लिट् ल.) उत्पन्न किया नः वह हमें (मा हिंसीत्, √हिंस् का इष् लुङ्. लोट् वे. व्या.) पीड़ित न करें।

ऋचा में बृहतीः आपः को पृथ्वी द्युलोक से विशिष्ट पद पर प्रतिष्ठित किया गया है 'च' पद के प्रयोग से। जल एक महाभूत है जो अन्य महाभूतों से विशिष्ट ही नहीं वरन् निम्न श्रेणी का है क्योंकि आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल की उत्पत्ति कही गयी है। यथा–

आकाशः सम्भूतः। आकाशाद् वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः।
(तैति. ब्रह्मानंद वल्ली)

जल महाभूत है जो सृष्टि क्रम में पीछे का परिणाम है। अतः ऋचा प्रोक्त बृहती आपः जल तत्त्व के लिये नहीं आया है वरन् मूल क्रियात्मक तत्त्व के प्रशस्त रूप के लिये आया है, जो आदि सृष्टि में महा अग्नि पिण्ड (big bang) के अवसर पर प्रकट होता है। इस प्रकार यह निश्चय हुआ कि ऋग्वेद में "अप्" का प्रयोग मूल तत्त्व की क्रियात्मक अवस्था के लिये हुआ है तथा इसी क्रियात्मक अवस्था में बृहत अग्नि पिण्ड उत्पन्न हुआ था जो विज्ञान के महाविस्फोट (बिग-बैंग) का पर्याय है।

७. आदि सृष्टिकाल में महान् ज्योतिर्मय पिण्ड की उत्पत्ति–

महाग्नि ताण्डव की घटना के समय एक बृहदाकार ज्योतिर्मय पिण्ड उद्भूत होने की बात ऋचाओं में है। वैज्ञानिक भाषा में इसे सुपरनोभा कहते हैं। इस तथ्य पर मण्डल १०, सूक्त १४९ की ३ री ऋचा से प्रकाश डाला जाता है- (क्र.११३)

पश्चेदमन्यदभवद्यजत्रममर्त्यस्य भुवनस्य भूना।
सुपर्णो अङ्ग सवितुर्गरुत्मान्पूर्वो जातः स उ अस्यानु धर्मः॥

भाष्य— पूर्वः आदि सृष्टिकाल में (सवितुः, √सू = उत्पन्न करना, प्रेरित करना) सविता देव की अमर्त्यस्य अविनाशी भुवनस्य जगत (भूना, भ्वा. पर. भू= होना, उत्पन्न होना) उत्पादक सामर्थ्य से (यजत्रम् = अभिमन्त्रित अग्नि को स्थापित करना, कोश) पूर्व से ही विद्यमान शक्ति के नियोजन, स्थापन के पश्चात् अनन्तर इदं यहाँ अन्यत् उससे (नियोजन कर्ता ईश्वर से) सर्वथा पृथक् अभवत् प्रकट हुआ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वः जातः आदि सृष्टि में आविर्भाव हुआ **सः** वह [**गरुत्मान्**, तुदा. पर. गॄ = निगलना से (गृ + उति) गरुत्] समस्त मूल तत्त्व को निगले हुए महान् पिण्ड **सु-पर्णः** उत्तम प्रकार गतिशील **उ** निश्चय ही **अस्य** उस (सविता देव) की **धर्मः** धारणा शक्ति **अनु** के अनुरूप **आसीत्** था।

अभिमन्त्रित का अर्थ है पूर्व से ही विद्यमान यज्ञाग्नि को मन्त्रपाठ के साथ स्थापित करना (कोश)। ईश्वर के संदर्भ में इसका अर्थ यह हुआ कि ईश्वर ने पूर्व से ही विद्यमान मूल क्रियात्मक शक्ति (energy through which dynamic continuum is maintained after disolution of each cosmos) को विशेष सृष्टि सृजन की कामना से स्थापित किया। यह शक्ति ईश्वर के चेतन स्वरूप से सर्वथा भिन्न अर्थात् अचेतन थी। आदिकाल में प्रस्थापित किया गया वह पिण्ड ईश्वर की महानता, धारणा शक्ति के अनुरूप अपनी अक्ष पर चक्राकार गति कर रहा था। वह पिण्ड विद्युन्मय था तथा वह अत्यन्त तीव्र गति से प्रसार में संलग्न था। यह तथ्य मण्डल १०, सूक्त ९० की ऋचा में कहा गया है- (क्र. ११४)

तस्माद् विराळजायत विराजो अधि पूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः॥

भाष्य— तस्मात् सर्वनाम है जो पूर्व मन्त्र के पद- "अस्य पादः पुनः इह अभवत्" को निर्देश करता है। पुरुष के तीन अमृत चरणों में से एक चरण यहाँ सृष्टि रूप में प्रभूत होता है। तीन अमृत चरण है ईश्वर, नित्य (अपरा) प्रकृति एवं (परा) जीव प्रजा। इनमें से नित्य प्रकृति से (**विराट्** = वि-राज्, राज् = दीप्तौ) अत्यन्त दीप्तिमान् **सहस्रांशुसमप्रभम्** अण्डं अभवत् सहस्रों सूर्यों की तरह प्रभावान् महान् पिण्ड उत्पन्न हुआ।

सः जातः वह (पिण्ड) उत्पन्न होकर (**अति अरिच्यत**, √रिच् = पृथक् होना की क. वा. लङ्. ल.) अतिशय पृथक् हुआ अर्थात् चारों ओर प्रसारित हुआ **पश्चात्** अनन्तर इसी से **भूमिम् अथः पुरः** ब्रह्माण्ड एवं पृथ्वी उत्पन्न हुई।

आदिकाल में प्रकट हुआ वह पिण्ड सूर्य की भांति प्रज्वलित महामण्डलाकार बादल था जिसे वैज्ञानिक भाषा में सुपरनोभा या सुपरनेबुला कहते हैं। विज्ञान के अनुसार आदिकाल में प्रभूत हुआ महाग्नि पिण्ड सैकड़ों सूर्यों की तरह प्रभा वाला था।

उस बादल को ब्रह्माण्ड के अधिपति ने धौंककर प्रज्वलित किया था (ऋ. १०/७२/२)। ऋचा है- (क्र. ११५)

ब्रह्मणस्पतिरेता सं कर्मार इवाधमत्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाष्य — ब्रह्माण्ड के स्वामी ने **एता** इन दो प्रकार के तत्त्वों को **कर्मार इव** लुहार की तरह (**सं अधमत्**, √धम्=धौंकना) सम्यक् रूप से (भट्ठी में जैसे) धौंककर प्रज्वलित किया।

उस प्रकृति के एकाधिपति ने अपनी शक्ति से दो प्रकार के मूल तत्त्व को प्रज्वलित किया– (क्र. ११६)

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावा भूमी जनयन् देव एकः॥

भाष्य— सब ओर चक्षु वाला, सब ओर मुख वाला, सब ओर बाहु व पैर वाला अर्थात् वह विराट् स्वरूप सब ओर सर्वशक्ति सम्पन्न **द्यावा भूमी जनयन्** प्रकाशित लोकों तथा अप्रकाशित लोकों को उत्पन्न करने वाला **बाहुभ्यां** अपनी दो प्रकार की शक्ति रूप दो बाहुओं से **सं पतत्रैः** पक्षी की तरह **सम् धमति** सम्यक् प्रकार से धौंकता है।

समस्त ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का एकमात्र निमित्त कारण (efficient cause, creator) सर्वव्यापी सर्वशक्तिमान् एक ईश्वर ही है वही दो प्रकार के समग्र मूल तत्त्व को शक्ति रूपी दो बाहु से मथकर अग्नयाधान करता है। प्रकृति के दो रूप द्रव्य भाग (कण प्रतिकण=वरुण, मित्र) और विकिरण (सोम) हैं। ऋचा में एकेश्वरवाद की अप्रतिम अभिव्यक्ति है।

प्रकृति की उद्वेलित अवस्था आपः का दूसरा नाम माया है, मूल तत्त्व के तीन वर्गों की समग्र सत्ता की संज्ञा अदिति है। आदिकाल में तीनों वर्ग उद्वेलित हो उठते हैं इस अवस्था का प्रतीक आपः है। इस स्थिति का सजीव वर्णन ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त ८८ के ६ वें मन्त्र में है। मन्त्र है– (क्र. ११७)

मूर्धा भुवो भवति नक्तमग्निस्ततः सूर्यो जायते प्रातरुद्यन्।
मायामू तु यज्ञियानामेतामपो यत् तूर्णिश्चरति प्रजानन्॥

भाष्य— **अग्निः** क्रियात्मक प्रकृति=आपः **नक्तं** प्रलयरात्रि को **भुवः** उत्पत्तिवान् (सृष्टि) का **मूर्धः** शीर्ष स्थान **भवति** होती है, **प्रातः उद्यन्** सर्गारंभ रूपी प्रभात के उदय होने पर **ततः** उसी शक्ति से **सूर्यः जायते** प्रज्वलित हिरण्यगर्भ उत्पन्न होता है।
यत् जो **तूर्णिः** अति वेगवान् हुई **चरति** विचरण करती है (**यज्ञियानां**, √यज् संगतिकरणे) तत्त्व मीमांसकों की **तु** निश्चय ही **एतां मायाम्** इस माया का **प्रजानन्** अच्छी प्रकार जाना हुआ नाम **अपः** आपः का **उ** ही है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार माया शब्द क्रियात्मक प्रकृति आपः का पर्याय है। आदि सृष्टि काल में क्रियात्मक प्रकृति उत्पत्तिवान् सृष्टि का शीर्ष स्थान होती है अनन्तर उसी शक्ति से प्रज्वलित पिण्ड उद्भूत होता है। यह ऋचा में कहा गया है।

८. ऋग्वैदिक रूपक भाषा में आद्य विस्फोट का विवरण –

ईश्वर पिता तथा अदिति नाम के कही जाने वाली ईश्वर की मूल भौतिक शक्ति ईश्वर की पत्नी कही जाती है। यह मूल शक्ति ब्राह्मी स्थिति है। सृष्टि में नियोजित होते ही मूल शक्ति का नाम बदल जाता है उसका नाम अदिति से आपः हो जाता है। आपः सृष्टि में नियोजित सर्वप्रथम क्रियात्मक अवस्था है उसे अदिति का प्रथम परिणाम या पुत्र कहा जाता है। अदिति त्रिवर्गी मूल शक्ति है। आपः भी त्रिवर्गी क्रियात्मक शक्ति है, क्रियाशील होने के अनन्तर त्रिवर्गी द्रव्य के अनेकानेक परिणाम बनते हैं जिन्हें बृहतीः आपः अर्थात् आपः के प्रशस्त रूप में समाहित किया गया है। बृहतीः आपः अवस्था महाविस्फोट के समय आती है और उस समय उसमें विज्ञान प्रोक्त अनेक अवस्थाएँ आती है किन्तु ये अवस्थाएँ अत्यन्त अल्प जीवी हैं। बृहतीः आपः विज्ञान की प्लाज्मा अवस्था की द्योतक है। बृहती आपः के अनन्तर अपां नपात् अवस्था कही गयी है जो विज्ञान की नाभिक (nuclear) अवस्था है नपात् का अर्थ नाती (वै. व्या.) है। इस प्रकार ऋग्वैदिक रूपक भाषा में ईश्वर पिता, अदिति (प्रकृति) की मूल ब्राह्मी (नित्य) अवस्था माता, सृष्टि में नियोजित होने वाली क्रियात्मक अवस्था पुत्र या पुत्री तथा नाभिक अवस्था अपां नपात् नाती कही गयी है यह ऋग्वेद की रूपक शैली है इसका यथावत् तात्पर्य समझना ऋचाओं के भाव को समझने के लिये परमावश्यक है। वास्तव में न कोई माता है, न पिता, न पुत्र, न नाती यह मात्र रूपक प्रयोग है।

अब ऋचा १०/१७/१ से अग्नि काण्ड के विषय पर प्रकाश डाला जाता है ऋचा है क्र. ११८

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोतीतीदं विश्वं भुवनं समेति ।
यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश ॥

भाष्य— त्वष्टा अष्ट मूल धातु संघात का अधिपति दुहित्रे पुत्रीवत क्रियात्मक प्रकृति (आपः) को वहतुं कृणोति वहन करने योग्य बनाता है। वह इदं यहाँ विश्वं भुवनं सं एति सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को संयक् रूप से ले जाती है। जाया ईश्वर की पत्नी अदिति (यमस्य माता, यमः = नियम) नियमों की जननी महः विवस्वतः महान् सूर्यवत प्रज्वलित पिण्ड को (परि-उह्यमाना, भ्वा. पर. √उह्,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

= चोट मारना) सब ओर आघात करती हुई (ननाश, दिवा. पर. √नश् की लिट् ल.) विस्फोट करती है।

अष्टवर्गी द्रव्य के अधिपति होने से इस ऋचा में ईश्वर को त्वष्टा कहा गया है। मूल प्रकृति को ईश्वर की पत्नी तथा क्रियात्मक अवस्था आपः पुत्री कहीं गयी है यह पुत्री आपः जगत को धारण करने में समर्थ है प्रकृति यमः अर्थात् समस्त नियमों की जननी है नियमों का मूल स्रोत है। बृहत् अग्नि पिण्ड के विस्फोट का तथ्य स्पष्ट शब्दों में कहा गया है।

आगामी ऋचा है– (ऋ. ११९)

अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वा सवर्णामददुर्विवस्वते ।
उतांश्विनावभरद्यत्तदासीदजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः ॥

भा.— अष्ट वर्गी सूक्ष्म तत्त्वों ने अमृतां अविनाशी प्रकृति को अप अगूहन् छिपा कर रखा है। उन तत्त्वों ने मर्त्येभ्यः विनाश धर्मी द्रव्यों यौगिकों की उत्पत्ति के लिये सवर्णाम् कृत्वा समान वर्ग वाले सूक्ष्म तत्त्वों को रचकर विवस्वते महा सूर्यमंडल आदिकाल के सुपर नेबुला के लिये अददुः दे दिया। सरण्युः गतिशील प्रकृति ने द्वा मिथुना अजहात् दो जोड़ों को उत्पन्न किया उत तत्-आसीत् जो अव्यक्त अमृत रूपा थी उसी ने अश्विनौ अभरत् जोड़े को धारण किया।

त्वष्टा अर्थात् अष्टवर्गी सूक्ष्म तत्त्वों का प्रकरण पूर्व ऋचा से चला आ रहा है। सूक्ष्म तत्त्वों की संरचना में नित्य प्रकृति छिपी हुई है अर्थात् वे सूक्ष्म तत्त्व भी नित्य प्रकृति से उत्पन्न नित्य प्रकृति की कला हैं। सूक्ष्म तत्त्वों ने विनाश धर्मी यौगिकों की उत्पत्ति के हेतुभूत समान वर्ग वाले सूक्ष्म तत्त्वों के द्वारा महा सूर्यमंडल (हिरण्यगर्भः) की उत्पत्ति की। स्थूलभूतों परमाणु आदि की रचना के लिये विशिष्ट ताप दबाव आदि स्थितियां आवश्यक हैं। प्रज्वलित नेबुला सूर्यमंडल की उत्पत्ति के अनन्तर जब ताप दबाव क्रमशः गिरते हैं तो नाभिक (nucleus), परमाणु (atom), अणु (molecule) आदि की बनावट के लिये जो ताप दबाव आदि चाहिये वह क्रमशः आते हैं। इस प्रकार विनाशधर्मी यौगिकों की उत्पत्ति के लिये महासूर्यमंडल की उत्पत्ति अभीष्ट है यह सृष्टि उत्पत्ति का महत्वपूर्ण चरण है।

नित्य प्रकृति जगत रूप में छिपी है जगत उसीकी कला है प्रकृति सर्वप्रथम दो जोड़े उत्पन्न करती है फिर इससे आगामी सूक्ष्म तत्त्व बनते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपक शैली में वर्णित बृहत् अग्निकाण्ड विषय पर मण्डल ३, सूक्त ३१ की ऋचाओं में आये विवरण को प्रस्तुत किया जाता है। प्रथम ऋचा है– (क्र. १२०)

शासद् वह्निर्दुहितुर्नप्तयं गाद् विद्वाँ ऋतस्य दीधितिं सपर्यन्।
पिता यत्र दुहितुः सेकमृज्जन्त्सं शग्म्येन मनसा दधन्वे ॥

भाष्य— दुहितुः पुत्री = क्रियात्मक प्रकृति आपः का **शासत्** शासन करता हुआ **विद्वान्** ज्ञानवान् ईश्वर (**दीधितिम्**, अदा. √दीधी = चमकना से दीधितिः = प्रकाश किरण, कोश) विद्युन्मय किरण के **ऋतस्य** सत्य प्राकृतिक बहाव अर्थात् प्रकृति के गुण स्वभाव का (**सपर्यन्**, √सपर्य = मान करना, वै. व्या.) मान करता हुआ (**वह्निः** = अग्नि, कोश पृ. ६११) अग्निमय **नप्तयं** नाती अपां नपात् (= नाभिक द्रव्य) को (**गात्**, √गा, लुङ्. लेट्) प्राप्त होवेगी।

यत्र जहाँ **पिता** ईश्वर **दुहितुः** पुत्री आपः (माया) के (**सेकं**, भ्वा. आ. √सेक् से सेकः = प्रसार, कोश) प्रसार का (**ऋज्मन्**, √ऋज् = मार्ग निर्देश करना) मार्ग निर्दिष्ट करता हुआ (**शग्म्येन**, धातु शक् = समर्थ होना से शग्मः = सामर्थ्य, पृ. ३४१ वै. व्या.) सामर्थ्य के साथ **मनसा** ज्ञान के द्वारा **सं** सम्यक् रूप से (**दधन्वे**, धातु धन्व् = दौड़ना की लिट् ल.) तीव्रता से गया था।

ईश्वर पिता है और उसकी पुत्री क्रियात्मक प्रकृति आपः है। प्रकृति ईश्वर के अनुशासन में है किन्तु स्वयंभू होने से प्रकृति के गुण धर्म की स्वतंत्र निरपेक्ष सत्ता है। ईश्वर प्रकृति के गुण धर्म का मान करता हुआ अर्थात् प्रकृति के गुण-धर्म के अनुरूप ही वह प्रकृति को अपनी योजना के अन्तर्गत रखता है।

आदिकाल में क्रियात्मक प्रकृति (ईश्वर की पुत्री) जब सृष्टि रचना हेतु नियोजित होती है तब उसमें अवस्थाओं का परिवर्तन अत्यन्त तीव्र गति से होता है। ईश्वर इन तीव्र परिवर्तनों के साथ ज्ञान और सामर्थ्य के द्वारा साथ-साथ अग्रसर हुआ था अर्थात् आदिकाल में प्रकृति में अत्यन्त तीव्र गति से होने वाले परिवर्तन ईश्वर की इच्छा व योजनानुसार हुए थे। प्रकृति के तीव्र गति से अवस्थान्तरित होने का लक्ष्य अपां नपात् अवस्था (nuclear state), जिसे रूपक में नाती कहा गया है, तक पहुँचना है यह विज्ञान मन्त्रोक्त है।

अब वैदिक विज्ञान में आये विचारों को आधुनिक विज्ञान के परिपेक्ष्य में देखना है। वैज्ञानिक कास्मालॉजी के अनुसार बिग-बैंग के अनन्तर क्षण के १०० वें भाग से लेकर दस हजारवें भाग तक पदार्थ की दशा में परिवर्तन हो रहा था अर्थात् पदार्थ जिस अवस्था में आता था वह क्षण के १०० वें भाग तो कभी दस

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हजारवें भाग से अधिक नहीं टिक पाती थी। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जितनी देर में पलक गिरती है उतनी देर में पदार्थ पूर्व अवस्था को त्याग कर नवीन अवस्था में प्रवेश कर जाता था किन्तु यह आयी हुई अवस्था भी उसी प्रकार पलक मारते ही बदल जाती थी और अन्य अवस्था का पदार्पण हो जाता था। परिवर्तन की यह रफ्तार विद्युत गति से चल रही थी[1] किन्तु प्रकृति की इस तीव्र गति से परिवर्तनशील अवस्था के बावजूद प्रकृति ईश्वरीय ज्ञान एवं सामर्थ्य के नियंत्रण के बाहर न थी। परिवर्तन के इस दौर के २-३ घण्टे बाद नाभिक अवस्था (nuclear state) का आरम्भ हो जाता है यह एक स्थायी अवस्था है। वेद में बीच की (transitory) संक्रमण काल की अवस्थाओं को इंगित करते हुए सीधे नाभिक अवस्था अपां नपात् लक्ष्य की बात ऋचा में की गयी है।

सूक्त की आगामी ऋचा है– (क्र. १२१)

न जामये तान्वो रिक्थमारैक् चकार गर्भम् सनितुर्निधानम्।
यदी मातरा जनयन्त वह्निमन्यः कर्त्ता सुकृतोरन्य ऋन्धन्॥

भाष्य— **तान्वः** प्रकृति के देह से उत्पन्न पुत्र या पुत्री **आपः** **जामये** अपने संबंधी पुत्र के लिये (**निधानम्** = कोष, जहाँ प्रलयकाल में सम्पूर्ण भूत लय होते हैं, गीता ९/१८) आद्या प्रकृति के परम आश्रय रूपी भण्डार को (**रिक्थम्**, रिक्थ = दायभाग, वै. व्या. पृ. ३४०) दायभाग को (देकर) (**न आरैक्**, √रिच् = छोड़ना, खाली करना का लुङ्. स्.) खाली न करे। वह **आपः** **सनितुः** भोक्ता के **गर्भम् चकार** गर्भ को धारण करती है।

यदि जब **मातरः** माताएँ – त्रिवर्गी मूल शक्तिएँ[2] **वह्निम्** अग्नि को **जनयन्त** उत्पन्न करें तो **कर्त्ता अन्यः** कार्य करने वाला (अग्नि का, शक्ति का भाग) तो अन्य होता है जो **सुकृतः** उत्तम प्रकार से निर्मित **अन्यः** दूसरे भाग को (**ऋन्धन्**, √ऋध् = समृद्ध होना) समृद्ध करता है।

इस ऋचा में पारिवारिक दायभाग की कल्पना का कोई औचित्य नहीं है[3]।

---

1 क्षण का दस हजारवाँ भाग काल का इतना लघु खण्ड है कि इसकी कल्पना करना भी कल्पना के परे है इसकी गणना तो समीकरण में केवल गणितीय मान से की जाती है (सेकेन्ड का १० हजारवाँ भाग = ·०००१ सेकेन्ड)। क्षण के अन्दर ही गट्स ईरा, क्वार्क सूप ईरा, हेड्रन ईरा, लेप्टन ईरा सन्निहित हैं।

2 अस्मै तिस्रो नारीः देवाय देवीः दिधिषन्त्यन्नं।

3 निरुक्त पृष्ठ ७६ में सम्पत्ति के उत्तराधिकार संबंधी भाष्य है जो ऋचा के विषय के निश्चय के न होने का परिणाम है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त में आदिकाल की घटनाओं का विवरण है जैसा कि आगामी दो ऋचाओं में आदि सृष्टि में हुए वृहदग्नि काण्ड का सुस्पष्ट विवरण है। आदिकाल में मूल प्रकृति में दो विभाग होते हैं। एक भाग पूर्ण रूप से जगत रूप में विकसित होता है दूसरा भाग मूल क्रियात्मक प्रकृति (cosmic energy) के रूप में रहता है। इस ऋचा में इन दो भागों के मध्य जो सन्तुलन रहता है उसका विवेचन है। मूल प्रकृति माता (Mother cause, God's energy) है क्रियात्मक प्रकृति आपः पूर्वोक्त का पुत्र (या पुत्री) है। आदिकाल में सम्पूर्ण मूल प्रकृति क्रियात्मक अवस्था में हो जाती है। ऋचा में यह परिकल्पना है कि क्रियात्मक अवस्था (आपः) समग्र रूप से पूरी की पूरी आगामी परिणाम रूप अपने पुत्र अपां नपात् (नाभिक अवस्था) अर्थात् मूल शक्ति के नाती में परिवर्तित नहीं होती। इस प्रकार पूरा का पूरा तत्त्व सृष्टि रचना में नियोजित नहीं होता। यही दायभाग में न देने का तात्पर्य है अर्थात् इस प्रकार मूल क्रियात्मक शक्ति का कोष रिक्त नहीं होता। अग्नि ताण्डव में जो क्रियात्मक तत्त्व भाग लेता है उसका एक अंश ही पूर्ण रूप से सृष्टि के रूप में विकसित होता है। यही अंश भोक्ता (सनितुः) कहा गया है यह भोक्ता अंश दृश्य जगत है। शेष अंश (कास्मिक विकिरण) आपः के रूप में सुरक्षित रहने वाला कर्त्ता है तथा विकसित एवं निर्मित भाग को शक्ति प्रदान करता है। यह विचार आधुनिक विज्ञान सम्मत है। समस्त लोक-लोकान्तरों के सन्तुलन में यही शेष (surplus) कास्मिक विकिरण हेतुभूत है कदाचित् इसे ही पुराणों में शेष नाग कहा गया हो तो आश्चर्य नहीं क्योंकि गैलेक्सियों का आकार कुण्डलाकार (spiral shaped) होता है।

६. वृहदग्नि ताण्डव का वर्णन–

पूर्व चर्चित सूक्त की ३ री ऋचा में महा अग्निकाण्ड की घटना का सजीव चित्रण है जिससे इस सूक्त के विषय का निर्धारण होता है क्योंकि यह समस्त प्रकरण एक ही तारतम्य में है। ऋचा है– (क्र. १२२)

अग्निर्जज्ञे जुह्वा रेजमानो महस्पुत्राँ अरुषस्य प्रयक्षे ।
महान् गर्भो मह्या जातमेषां मही प्रवृद्धर्यश्वस्य यज्ञैः ॥

भाष्य— (जुह्वा, जिह्वा = आग की जीभ, कोश) ज्वालाओं से (रेजमानः, धातु रेज् = काँपना का शानज. कृ. रेजमान) लपलपाती हुई अग्निः अग्नि (जज्ञे, धातु जन् की लिट् ल.) उत्पन्न हुई। (अरुषस्य, अरुष = चमकीला, कोश) प्रदीप्त महः पुत्रान् महान् किरणें, शोले (प्र-यक्षे, धातु यज् = संगतिकरणे) संयुक्त हुए।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एषां इन (हर-इ-अश्वस्य यज्ञैः, हर = ज्वाला निघण्टु १/१७, धातु इ = जाना, हरिः = अग्नि, कोश, अश्वः = ऊर्जा, वैदिक सृष्टि उत्पत्ति प्रथम भाग) ऊर्जाओं को वहन करने वाले ज्वाला यज्ञ के महान् गर्भः महान् गर्भ से महि शीर्षस्थ (प्र-वृत, धातु वृ = चुनना का भू. का. कृ. वै. व्या.) संग्रहीत महि आ जातं महान् शक्ति उद्भूत हुई ।

मन्त्र में महः शब्द तीन बार आया है तथा महान् शब्द एक बार प्रयुक्त हुआ है जो असाधारण स्थिति का द्योतक है । उस महान् ऊर्जा यज्ञ में महान् अग्नि ताण्डव हुआ था । इसी अग्नि ताण्डव रूपी यज्ञ का द्रष्टा मात्र ईश्वर था ।

इसी सूक्त की ४ थी ऋचा है- (क्र. १२३)

अभि जैत्रीरसचन्त स्पृधानं महि ज्योतिस्तमसो निरजानन् ।
तं जानतीः प्रत्युदायन्नुषासः पतिर्गवामभवदेक इन्द्रः ॥

भाष्य — (गवाम्, सर्वेऽपि रश्मयः गाव उच्यन्ते, निरु. २/६, निघ. १/५) किरणों का पतिः एकः इन्द्रः अभवत् स्वामी एक इन्द्र था । तं जानतीः उसे जानती हुई उषासः उषाएँ, सृष्टि रचना काल-अनेक सृष्टियों के हेतु से बहुवचन प्रति उत् आयन् उसके प्रति आयीं । (जैत्री, जैत्रः = विजेता, विजयी, कोश) विजयी (स्पृधानं, धातु स्पृध् = सन्तुष्ट होना) सन्तुष्ट हुई वे किरणें अभि असचन्त पूर्ण रूप से संयुक्त हुईं तदा तब तमसः अधकार से महि ज्योति महान् प्रकाश पुञ्ज (निर्-अजानन्, धातु ज्ञा की लङ्. ल.) निश्चय ही जाना गया अर्थात् जो प्रकाश पुञ्ज उत्पन्न हुआ उसका ज्ञान हुआ ।

उषा सृष्टिकाल का वैदिक प्रतीक है । ऋचा में उषा का वैयक्तीकरण किया गया है तथा यह रूपक में कहा गया है कि उषाएँ अपने स्वामी इन्द्र के पास आयीं व उन्होंने स्वामी से सृष्टि उत्पत्ति करने की इच्छा व्यक्त की । उषाओं के पति ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार किया तथा किरणों को संयुक्त किया जिससे महान् ज्योति पुञ्ज रूप महा अग्नि मण्डल उद्भूत हुआ । ऋग्वैदिक सिद्धान्तानुसार सृष्टि प्रलय अनादि अनन्त काल-चक्र में अवस्थित हैं । अनेक सृष्टिकालों के हेतु से उषा बहुवचन में आया है । किरण रूप मूल प्रकृति का पति ईश्वर है[1] उषा का पति भी ईश्वर कहा गया है[2] ।

---

1 ब्रह्म जायाम् । ऋ. १०/१०९ 2 जनयो न पत्नीर्दुवस्यन्ति उषा एवं प्रलय रात्रि इन्द्र को दो पत्नी कही गयी हैं ऋ. १/६२/१० ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋग्वेद मण्डल ७, सूक्त ८ का ४ था मन्त्र है– (क्र. १२४)

प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत्सूर्यो न रोचते बृहद्भाः ।
अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ द्युतानो दैव्यो अतिथिः शुशोच ।

भाष्य — भरतस्य सर्वधारक (सृष्टि यज्ञ) का **अयं अग्निः** यह अग्नि **प्र–प्र–शृण्वे** अत्यधिक विशिष्टता से सुना जाता है । **सूर्यः न** सूर्य के समान **बृहद् भाः** महान् ज्योति से **विरोचते** प्रकर्षता से प्रकाशित होता है । **यत्** जब **यः** यह **पुरुं पृतनासु अभि तस्थौ** महान् युद्धों, घर्षणकारी कार्यों में स्थित हुआ था **द्युतानः** तेजस्वी **दैव्यः अतिथिः** दिव्य अतिथि के समान (**शुशोच**, √शुच् की लिट् ल.) प्रकाशित हुआ ।

आदि सृष्टिकाल में (सेना सहित) तत्त्वों के महान् विस्तार के साथ सर्वधारक सृष्टि यज्ञ में सूर्य के समान महान् ज्योति से प्रकाशित अग्नि हिरण्यगर्भः स्थिति (बिग-बैंग) का द्योतक है । यह कहा जाना कि यह अग्नि विशिष्टता से सुना जाता है इस तथ्य का बोधक है कि अग्निकाण्ड की यह घटना सृष्ट्युत्पत्ति क्रम में विशिष्ट स्थान रखती है ।

मण्डल १, सूक्त ९५ की २ री ऋचा है– (क्र. १२५)

दशेमं त्वष्टुर्जनयन्त गर्भमतन्द्रासो युवतयो विभृत्रम् ।
तिग्मानीकं स्वयशसं जनेषु विरोचमानं परि षीम् नयन्ति ॥

भाष्य — अतन्द्रासः आलस्य रहित अर्थात् क्रियाशील **युवतयः** नित्य एक-सी रहने वाली, प्रकृति की तीन शक्तियाँ **विभृत्रम्** विशिष्टता से धारण किये गये **गर्भम्** आन्तरिक गर्भ रूप **त्वष्टुः** मौलिक द्रव्यों के प्रज्वलित महामण्डल को **जनयन्त** उत्पन्न किया करें । वे शक्तियाँ **स्व–यशसं** स्वशक्ति को **विरोचमानं** विशिष्टता से प्रकाश करती हुई **तिग्म** तीक्ष्ण, अत्यधिक शक्ति (इनर्जी) से युक्त **अनीकं** सेना, मौलिक कणों की सेना को **दशेमं** इन दसों दिशाओं को **जनेषु** जीवों में, उत्पन्नों में (**परि सीम नयन्ति**, वै. व्या. पृ. ३२८) चारों ओर ले जाती हैं ।

मन्त्र में यह कहा गया है कि त्रिवर्गी नित्य मूल शक्ति से बृहती: आपः (प्लाज्मा) के कणों की विशाल तीक्ष्ण प्रज्वलित सेना ने महा-सूर्यमण्डल (सुपरनोभा) के विस्फोट के साथ दसों दिशाओं में प्रयाण किया ।

वैज्ञानिक सृष्टि उत्पत्ति (cosmology) के अनुसार महाविस्फोट के अनन्तर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रज्वलित द्रव्य चतुर्दिग् प्रसार में संलग्न हुआ था। इस विषय में दोनों विचारों की तुलना कीजिये।

१०. महाग्नि ताण्डव (big bang) का कारण वज्रपात था–

विज्ञान के अनुसार सृष्टि के आरम्भ में गैलेक्सियों के केन्द्र में एक महाग्नि काण्ड होता है किन्तु विज्ञान में इस बात का ज्ञान नहीं है कि अग्निकाण्ड क्यों होता है। ऋग्वेद में अग्निकाण्ड की घटना का कारण ईश्वर द्वारा वज्रपात कहा गया है यह वज्रपात ऊर्जाओं की नियोजित टक्कर का प्रतीक है इससे महाग्नि काण्ड का आरम्भ होता है। इस विषय पर ऋचा (१/३३/७) कहती है–

अवादहो दिव आ दस्युमुच्चा।

तुमने दस्यु को ऊँचे आकाश में अच्छी तरह जलाया था अग्निकाण्ड उच्चाकाश में द्युलोक के परे गैलेक्सियों के केन्द्र में हुआ था। यह अग्निकाण्ड ईश्वर के द्वारा वज्रपात से हुआ था (देखें क्र. ५४)।

ऋग्वेद के अनुसार ईश्वर के द्वारा सोमपान किया गया। यह रूपक ईश्वर के द्वारा विकिरण के एकत्रीकरण का द्योतक है। यह तथ्य ऋचा १/३२/३ में कहा गया है– (क्र. १२६)

वृषायमाणोऽवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिवत्सुतस्य।

भाष्य— सुतस्य उस उत्पन्न सोम ऊर्जा को त्रिकद्रुकेषु त्रिवर्गी मूल तत्त्वों पर अपिवत् पान किया अर्थात् त्रिवर्गी मूल आद्या उपादान कारण रूप शक्ति को अपने देहभूत आकाशस्थ सूक्ष्म द्रव्य पर प्रवाहित किया।

इस प्रकार जो क्रियात्मक शक्ति (dynamic part) प्रलयकाल में सुरक्षित रखी गयी थी उसका प्रयोग वज्र संधान के लिये शक्ति (energy) एकत्रित करने के लिये किया गया। इसी सोम विकिरण ऊर्जा ने वज्र को फेंकने के लिये आवश्यक बल का कार्य किया।

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
181386

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय १०

भृगुः, मातरिश्वन् व वैश्वानर अग्निः के स्वरूप की विवेचना

आदि सृष्टिकाल में ब्रह्माण्ड का समस्त द्रव्य एक बृहत् पिण्ड के रूप में एकत्र हो गया था फिर यह पिण्ड अग्नि रूप में परिणित हो गया था। इस प्रज्वलित पिण्ड को वैदिक भाषा में हिरण्यगर्भ कहा गया है जो आधुनिक विज्ञान के महा-विस्फोट (big bang) का प्रतीक है।

१. भृगु के स्वरूप की परिकल्पना–

आधुनिक विज्ञान में इस ज्ञान का अभाव है कि आखिरकार यह महाविस्फोट होता क्यों है। विज्ञान केवल यह बताती है कि महाविस्फोट होता है। महाविस्फोट की घटना क्यों होती है इस विषय में वेद में एक सुन्दर परिकल्पना है। वेद के अनुसार महाविस्फोट का कारण ऊर्जाओं की नियोजित टक्कर (planned impact of masses) है इसे वैदिक रूपक भाषा में इन्द्र द्वारा वज्र संचालन कहा गया है। प्रकृति का एक भाग ही जगत (महाभूत रूप में = molecule, elements & compounds) रूप में विकसित होता है। यह भाग जब शनैः शनैः लय की अवस्था को प्राप्त होता है तो इस भाग में निहित तत्त्व अपने स्वाभाविक प्राकृतिक रूप में चला जाता है। इस भाग को ईश्वरीय योजना के बाहर चला गया अथवा अनियंत्रित भाग हो जाना अथवा वृत्र हो जाना कहा गया है।

प्रकृति का दूसरा भाग जो प्रलयकाल में ईश्वरीय योजना के अन्तर्गत रहता है उसे आहवनीय अग्निः या भृगुः कहा गया है। आगामी सृष्टि आरम्भ होने के समय इस अग्निः को जिसमें त्रिकाल नियंत्रित शक्ति होने की वैदिक परिकल्पना है ईश्वर द्वारा पुनः कार्यारम्भ हेतु प्रयोग में लाया जाता है। इसी भाग का विकास वज्र रूप में किया जाता है। अनन्तर उसका प्रक्षेपण प्रकृति के दूसरे अनियंत्रित भाग पर किया जाता है इससे महाविस्फोट होता है और सम्पूर्ण प्रकृति पुनः योजना का अंग बन जाती है तथा सृष्टि विकास का कार्य चल पड़ता है। यह वैदिक परिकल्पना है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक परिकल्पना को प्रतिदिन के अनुभव में आने वाले एक उदाहरण से प्रस्तुत किया जाता है। भौंरा किस प्रकार चलता है इसका ज्ञान हम सबको है। भौंरे को नैती से कसा जाता है फिर हाथ का झटका देकर उसमें बल का प्रतिरोपण (imposition) किया जाता है वह (transmitted) हस्तांतरित बल भौंरे की गति के रूप में (motion of a top) देखा जाता है। वह भौंरा तब तक घूमता है जब तक प्रतिरोपित संवेग समाप्त नहीं (as long as the transmitted energy lasts) हो जाता। फिर वह स्थिर हो जाता है। इस प्रक्रिया में दो प्रकार के द्रव्य (matter) भाग लेते हैं। एक द्रव्य भौंरे का है जो प्रतिरोपित संवेग (impulse) से चलता है वह प्रतिरोपित संवेग के समाप्त हो जाने पर स्थिर हो जाता है। इसे जब फिर से (संवेग देकर) चलाया जाता है यह फिर चलने लगता है फिर संवेग समाप्त होते ही फिर स्थिर हो जाता है अर्थात् जब चलता है तब जानो कि नियंत्रण में आता है और जब स्थिर हो जाता है तब जानो कि नियंत्रण के बाहर अपनी स्वाभाविक स्थिति में जाकर स्थिर हो जाता है।

दूसरे प्रकार का द्रव्य वह है जिसका हमारा हाथ बना हुआ है यह द्रव्य सदैव हमारे नियंत्रण में रहता है। इस नियंत्रित द्रव्य भाग से हम अनियंत्रित द्रव्य (भौंरे) को इच्छित गति प्रदान कर इच्छानुसार चलाते हैं पर वह प्रतिरोपित गति धीरे-धीरे समाप्त हो जाती है और वह (भौंरा) रुक जाता है।

सर्वथा उसी प्रकार प्रकृति में दो भाग होते हैं। एक नियंत्रित भाग जिसे भृगुः कहते हैं; दूसरा अनियंत्रित भाग जिसे वृत्रः या शम्बरः कहते हैं। आदि सृष्टिकाल में ईश्वर नियंत्रित भाग से वज्र बनाकर दूसरे अनियंत्रित भाग पर प्रक्षेपण करता है। यह अनियंत्रित भाग (भौंरे की तरह) नियंत्रित हो इच्छित योजना में संलग्न हो जाता है पर जब वह आरोपित गति समाप्त होने लगती है तो वह शनैः शनैः लय की ओर प्रयाण करता है और अनन्तोगत्वा आरोपित गति के समाप्त होने पर लय को अर्थात् अपनी स्वाभाविक स्थिति को प्राप्त हो जाता है। उस भाग की लय की अवस्था में ईश्वर के पास प्रकृति का एक दूसरा भाग होता है जिस पर (भौंरे को चलाने में हाथ की तरह) उसका पूर्ण नियंत्रण होता है और इस नियंत्रित भाग का वह आगामी सृष्टि रचना के लिये अपनी इच्छानुसार प्रयोग करता है। इस प्रकार यह कार्य चलता रहता है। इस नियंत्रित भाग को भृगुः कहते हैं।

वेद की इस योजना में एक महान् वैज्ञानिक तथ्य निहित है वह यह है कि प्रकृति को महाविस्फोट के समय जो आदि संवेग मिलता है उसके अनुसार ही इस जगत का विकास होता है। वज्र के द्वारा महाविस्फोट होता है तथा उस

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिरोपित संवेग से द्रव्य मण्डल चतुर्दिग् महाप्रसार में संलग्न हो जाता है। इस प्रसार के चलते रहने से द्रव्य का तापमान गिरता है तब द्रव्य की अवस्थाओं की उत्पत्ति होती है तथा लोकों की उत्पत्ति होती है इस प्रकार जगत की उत्पत्ति हो जाती है पर महाप्रसार उसके बाद भी जारी रहता है। धीरे-धीरे गैलेक्सियें परस्पर दूर हो जाती हैं और आकर्षण, गुरुत्वाकर्षण के कम होते जाने से जगत क्रमशः लय को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार प्रकृति का वह भाग जो जगत रूप में विकसित हुआ था इनर्जी में परिवर्तित हो अपने स्वाभाविक रूप में चला जाता है अर्थात् यह ईश्वरीय योजना के बाहर चला जाता है इस भाग को वृत्र कहा गया है।

प्रसार में संलग्न प्रकृति का दूसरा प्रज्वलित भाग ईश्वरीय संरक्षण में रहता है इस नियंत्रित भाग को भृगुः या त्रिकाल धारण की गई गुप्त शक्ति कहते हैं। प्रकृति के पूर्वोक्त वृत्र भाग को नियंत्रित करके आगामी सृष्टि में नियोजित करने के उद्देश्य से वृत्र पर नियंत्रित भृगु भाग से वज्र का प्रक्षेपण किया जाता है। इस प्रकार भौतिक ऊर्जा के एक भाग से भौतिक ऊर्जा के दूसरे भाग को उद्वेलित किया जाता है इस योजना से विज्ञान के शक्ति संरक्षण के सिद्धान्त का अतिक्रमण नहीं होता।

२. भृगुः शब्द की व्युत्पत्ति–

निरुक्त (३/१७) में भृगुः शब्द का निर्वचन इस प्रकार किया गया है–

अर्चिषि भृगुः सम्बभूव। भृगुर्भृज्यमानो न देहे।

भृगु ज्वालाओं में उत्पन्न हुआ था। वह जो भूना जाता हुआ भी जला नहीं अर्थात् जो त्रिकाल अग्नि रूप है वह। जो त्रिकाल शक्ति रूप रहता है वह भृगु है।

यद्वा भृज्जतीति, क्विप्, भृक् ज्वाला तया सहोत्पन्न इति। (हला. कोशः)

सह ज्वालाभिरुत्पन्नो भृगुस्तस्माद् भृगुः स्मृतः। (महाभा. १३/८५/१०६)

जो ज्वाला सहित उत्पन्न हुआ वह भृगु है।

महाभारत आदिपर्व (२६०५) तथा वायु पुराण (१/६/१००) में भृगु को स्रष्टा के हृदय से उत्पन्न कहा गया है (निरु. ३/१७ से उद्धृत)।

इस प्रकार भृगु सृष्टि रचना में अग्नि से उत्पन्न, न जलने वाला अर्थात् सदैव ज्योतिर्मय रहने वाला शक्ति तत्त्व का द्योतक है। भृगु ज्वाला सहित उत्पन्न एक ऐसा तत्त्व है जो उत्पत्ति के समय भी अग्नि रूप है तो फिर अन्य समय तो अग्नि रूप होगा ही अर्थात् भृगु त्रिकाल अग्नि वर्ण है। स्रष्टा के हृदय से उत्पन्न होने का

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तात्पर्य यह है कि यह स्रष्टा की तरह ही त्रिकाल एक-सा रहने वाला शक्ति तत्त्व है तथा यह ईश्वर द्वारा त्रिकाल नियंत्रित भौतिक तत्त्व है।

३. ऋचाओं से भृगुः के स्वरूप की विवेचना–

ऋग्वेद में ऊर्जा के त्रिकाल संरक्षित गतिशील सातत्य प्रवाह (eternally controlled dynamic continuum) की परिकल्पना है। प्रलयकाल में भी ऊर्जा का एक भाग ईश्वरीय नियंत्रण में सुरक्षित रहता है जिसका प्रयोग आगामी सृष्टिकाल के आरम्भ में ईश्वर द्वारा आदि संवेग (initial impulse) प्रदान करने हेतु किया जाता है।

ऋचा से विदित होता है कि भृगुः शब्द दो धातुओं भृ = धारण करना और गु (= गुह) छिपाना से बना है। सृष्टि के लय होने पर प्रलयकाल में सुरक्षित रखा गया अग्नि (शक्ति) तत्त्व भृगु कहा गया है यह शक्ति प्रलयकाल में अव्यक्त रूप से रहती है और सृष्टि आरम्भ काल में यह आहवनीय अग्नि के रूप में ईश्वर द्वारा पुनर्स्थापित होती है।

मण्डल ३, सूक्त ५ की १० वीं ऋचा में प्रलय-सृष्टि के संधिकाल का सजीव चित्रण है। ऋचा है– (क्र. १२७)

उदस्तम्भीत् समिधा नाकमृष्वोऽग्निर्भवन्नुत्तमो रोचनानाम्।
यदी भृगुभ्यः परि मातरिश्वा गुहा सन्तं हव्यवाहं समीधे॥

भाष्य — यदी जब मातरिश्वा मातरिश्वा ने गुहा परि सन्तं छिपी हुई, अव्यक्त रूप से वर्तमान भृगुभ्यः भृगुओं से (प्राप्त) हव्यवाहं ज्वलनशीलता को वहन करते हुए तत्त्व को (सम् ईधे, √इध् = प्रज्वलित करना की लिट् ल.) एक साथ प्रज्वलित किया (तब) रोचनानाम् प्रकाशमानों में उत्तमः सबसे उत्कृष्टतम भवन् तेजस्वी होते हुए ऋष्वः अग्निः महान् अग्नि ने समिधा सम्यक् प्रज्वलित द्रव्य से नाकम् आकाश को उद् अस्तम्भीत् स्तब्ध कर दिया[1]।

इस ऋचा में महाग्नि ताण्डव (big bang) का सजीव चित्रण है। छिपी हुई अग्नि भृगुओं के पास थी। उन भृगुओं से वह अग्नि मातरिश्वा ने ली अर्थात् महाग्नि के प्रकट होते ही प्रज्वलित द्रव्य का मण्डलाकार प्रसार आरम्भ हो गया। उस समय जो अग्नि प्रज्वलित हुई थी वह सभी प्रकाशमान पिण्डों के सम्मिलित

1 अग्नि ने समिधा से द्युलोक को स्तब्ध कर दिया। वै. व्या. पृ. ३२३
महान् अग्नि ने अपने महान् तेज से सूर्य को स्तब्ध कर दिया। सातवलेंकर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाश से कहीं उत्कृष्ट थी। उस महान् अग्नि ने आकाश को स्तब्ध कर दिया था। हिरण्यगर्भः एवं मातरिश्वन् में संधि है अर्थात् महाविस्फोट के तुरन्त बाद प्रसार आरम्भ हो जाता है ऋचा से भृगुओं के स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है। भृगुओं के पास छिपी हुई अग्नि थी अर्थात् प्रलयकाल में शक्ति का जो भाग संरक्षित रखा गया था उसे आदि सृष्टिकाल में प्रारम्भिक संवेग देने हेतु प्रकट किया गया। अतः भृगु प्रलयकाल में संरक्षित रखी गयी शक्ति (energy) का प्रतीक है।

अब इसी विषय पर मण्डल १, सूक्त ६० को प्रथम ऋचा से प्रकाश डाला जाता है, ऋचा है– (क्र. १२८)

वह्निम् यशसं विदथस्य केतुं सुप्राव्यं दूतं सद्यो अर्थम्।
द्विजन्मानं रयिमिव प्रशस्तं रातिं भरद्भृगवे मातरिश्वा॥

भाष्य — (विदथस्य, विदथन्=ज्ञान) ईश्वरीय ज्ञान के केतुं प्रतीक यशसं यशस्वी सुप्राव्यं उत्तम रक्षक सद्यः अर्थम् शीघ्र ही लक्ष्य को दूतम् संदेशवाहक की तरह ले जाने वाले को द्वि जन्मानम् द्वि जन्मा–सृष्टि प्रलय रूप दो जन्म वाले को रयिमिव प्रशस्तं ऐश्वर्य की तरह प्रशंसित को वह्निम् अग्नि तत्त्व को मातरिश्वा मातरिश्वन् भृगवे रातिं भृगु के लिये देने को भरत् धारण करे।

मूल भौतिक शक्ति के दो भाग होते हैं। एक भाग त्रिकाल ईश्वरीय नियंत्रण में रहता है इस भाग की वैदिक संज्ञा भृगुः है। प्रकृति का दूसरा भाग प्रलयकाल में अपने स्वाभाविक स्वतंत्र रूप में होता है इस भाग में सृष्टि उत्पादन सामर्थ्य का बीजारोपण करने के लिये इस भाग पर सृष्टि आरम्भ काल में नियंत्रित भाग (भृगु) से संवेग (momentum) आरोपित किया जाता है तब यह जगत रूप में उद्भव पाता है। वह आरोपित संवेग शनैः शनैः क्षीण होता रहता है और कालान्तर में पूर्ण रूप से क्षीण हो जाता है तब यह आरोपित सवेग में संलग्न द्रव्य भाग अपनी स्वाभाविक स्थिति को प्राप्त हो जाता है जिसमें वह आदि सृष्टिकाल में संवेग आरोपित करने के पूर्व था। इसे प्रलयकाल कहते हैं।

ऋचा में प्रकृति के संरक्षित भाग के लिये 'अग्नि' शब्द का प्रयोग हुआ है। इसी अग्नि को द्विजन्मा कहा गया है अर्थात् यह सृष्टि और प्रलय में दो प्रकार के रूप धारण करता है जिसे दो जन्म होना कहा गया है। यह ईश्वरीय दूत की तरह संदेशवाहक है। यह ईश्वरीय संदेश का कि– सृजन करना है प्रकृति के दूसरे भाग के कणों-कणों में संचार करता है। इस प्रकार सृजन करना है इस (सद्यः अर्थम्) शीघ्र अर्थ तक ले जाने वाली यह अग्नि ईश्वरीय कार्य शक्ति है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि सृष्टिकाल में सुरक्षित ऊर्जा (भृगु) से प्रकृति के दूसरे भाग पर प्रक्षेपण किया जाता है इसे वैदिक भाषा में वज्र संचालन करना कहते हैं। इस क्रिया से महाग्नि काण्ड होता है जिससे महाशक्ति का उद्भव होता है अग्निकाण्ड से उत्पन्न इस महा सामर्थ्य (the generated tremendous capacity) से उत्पन्न संवेग की परिणति महाप्रसार (great expansion) के रूप में होती है। विज्ञान में इसे (expanding universe) विश्व का प्रसार होना कहते हैं। विज्ञान के अनुसार गैलेक्सियों का प्रसार आज भी जारी है और आगे भी जारी रहेगा।

वेद में इस प्रसार करने वाली शक्ति का नाम मातरिश्वन् है जिसे (मातरि श्वसिति) मूल शक्ति का श्वास प्रश्वास लेना कहा गया है। जब मूल शक्ति श्वास लेती है तो प्रसार होता है और इस मातरिश्वन् शक्ति से सम्पूर्ण द्रव्य मण्डल का प्रसार होता है। इस प्रसार के परिणामस्वरूप विश्व प्रसार में संलग्न हो जाता है तब मातरिश्वन् शक्ति प्रसार में संलग्न प्रकृति के एक क्रियात्मक भाग को आकाश के एक स्थल तक ले जाती है जहाँ वह क्रियात्मक भाग ईश्वरीय सकाश से संरक्षित रहता है इस सुरक्षित अग्नि तत्त्व को भृगुः कहा गया है तथा ऋचा में यह कहा गया है कि मातरिश्वा अग्नि को भृगुओं तक पहुँचाती है। प्रलयकाल में यह अग्नि सुरक्षित रहती है। प्रकृति का दूसरा भाग महाप्रसार के फलस्वरूप जगत रूप में विकसित होता है किन्तु जगत रूप में हो जाने पर भी प्रसार में संलग्न रहता है। इस प्रसार से गैलेक्सियों की परस्पर दूरी बढ़ती जाती है तथा परस्पर आकर्षण क्षीण हो जाता है अनन्तोगत्वा सभी लोक नष्ट हो जाते हैं और इन लोकों की रचना में संलग्न प्रकृति का द्रव्य भाग मूल स्वरूप में चला जाता है। इस प्रकार प्रलय की स्थिति आ जाती है।

प्रकृति का दूसरा भाग जो भृगु नाम से कहा गया है प्रलयकाल में नियंत्रित रहकर ईश्वरीय कार्यशक्ति बनाता है। इस प्रकार ऋचाओं में त्रिकाल अग्नि (eternally controlled dynamic continuum) की परिकल्पना है जो सृष्टि-काल के आरम्भ से प्रलयकाल के आरम्भ तक व प्रलयकाल के आरम्भ से सृष्टिकाल के आरम्भ तक क्रियात्मक गति शक्ति का तारतम्य बनाये रखती है। यही वेद का अग्निः या भृगुः तत्त्व है। इस तत्त्व पर ईश्वरीय ज्ञान, निश्चय, योजना, सामर्थ्य आदि के आरोपित होने से यह तत्त्व चेतन देव की तरह ईश्वरीय कला का द्योतक बन जाता है।

४. आदिकाल में तीन महाशक्तियों की उत्पत्ति—

ऋग्वेद के अनुसार आदि सृष्टिकाल में तीन महान् शक्तियों का उदय हुआ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था इस विवरण के लिये ऋचा (१०/१०९/१) उद्धृत की जाती है– (क्र. १२९)

तेऽवदन्प्रथमा ब्रह्मकिल्विषेऽकूपारः सलिलो मातरिश्वा ।
वीलहरास्तप उग्रो मयोभूरापो देवीः प्रथम जा ऋतेन ॥

भाष्य— **ते** वे **प्रथमा** आदिकाल में हुए (**अकूपारः**=सूर्य, कोश, आदित्योऽप्यकूपार उच्यते, निरु. ४/१८) महासूर्य, हिरण्यगर्भः **सलिलः** आपः **मातरिश्वा** मातरिश्वन् ने **ब्रह्म** प्रकृति की **किल्विषे** विकृतियों के विषय में **अवदन्** बताया। **ऋतेन** सत्य मूल कारण से **प्रथम जाः** सबसे पूर्व उत्पन्न होने वाले वे तीनों (**वीडुहराः**, √वीड्=दृढ़ बनाना, √हर्=ले जाना) आगे ले जाने वाली दृढ़ रचना **उग्रः तपः** उग्र रूप से प्रज्वलित हिरण्यगर्भ, **देवीः आपः** दिव्य क्रियात्मक मूल तत्त्व तथा (**मयः भूः**, भूः = अन्तरिक्ष, निघ. १/३) कल्याण करने वाले मातरिश्वन् हुए।

सर्वप्रथम अप् तत्त्व का महामण्डल उद्भूत हुआ। अनन्तर वृहत् अग्निकाण्ड (big bang) हुआ। इस अग्निकाण्ड से प्रज्वलित तरल चारों ओर प्रसारित हुआ। वेद में इस घटना का नाम मातरिश्वन् है विज्ञान में इसे (expanding universe) विश्व का प्रसार कहते हैं। आदिकाल में उद्भूत हुई इन तीन महान् घटनाओं ने सृष्टि की प्रारंभिक नींव डाली।

५. मातरिश्वन् के स्वरूप की विवेचना–

विज्ञान के अनुसार आदिकाल में महाविस्फोट (big bang) से जो आदि संवेग उद्भूत (generation of initial momentum) होता है उससे समस्त प्रज्वलित द्रव्यमण्डल तीव्र गति से चारों ओर प्रसारित होता है। उस आदिकाल में प्रदत्त संवेग से आज भी गैलेक्सियें परस्पर दूर जा रही हैं इसे विश्व के प्रसारित होने का सिद्धान्त (principle of expanding universe) कहते हैं।

ऋग्वेद में आदिकाल में हुए वृहत् अग्नि ताण्डव के उपरान्त मातरिश्वन् की स्थिति कही गयी है जो अग्निकाण्ड से उत्पन्न महाशक्ति से प्रज्वलित द्रव्य के तीव्र गति से चारों ओर प्रसार की द्योतक है। मातरिश्वन् शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में अमरकोश में कहा गया है–

मातरि इति सप्तम्य प्रतिरूपकं। मातरि अन्तरिक्षे श्वसिति संचरति। यद्वा मातरि जनन्यां श्वयति वर्धते।

माता मूल शक्ति आकाश में श्वास लेती है, सम्यक् प्रवाह करती है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल शक्ति प्रकट हो श्वास लेती है, बढ़ती है।

निरुक्त (७/७) में मातरिश्वन् का निर्वचन इस प्रकार किया गया है–

मातरिश्वा = वायुः, मातरि अन्तरिक्षे श्वसिति, मातरि आशु अनिति इति वा।

मातरिश्वा वायु क्योंकि अन्तरिक्ष में श्वास लेता है या अन्तरिक्ष में शीघ्र चलता है।

इस प्रकार मातरिश्वा को मूल आद्या शक्ति का श्वास लेना, प्रसार करना कहा गया है।

मातरिश्वा पद की व्याख्या वेद ने स्वयं मण्डल ३, सूक्त २९ की ११ वीं ऋचा में की है। ऋचा है– (क्र. १३०)

तनू नपादुच्यते गर्भ आसुरो नराशंसो भवति यद् विजायते।
मातरिश्वा यदमिमीत मातरि वातस्य सर्गो अभवत् सरीमणि॥

भाष्य — **गर्भः** गर्भस्थ अर्थात् अव्यक्त अग्नि (**तनू नपात्**, शरीरं न पातयति। तनूं स्व न पाति, न रक्षति, अमरकोश) जो मूल में अविनाशी है अथवा स्वरूप की रक्षा नहीं करती अर्थात् परिवर्तनशील है वह तनू नपात् है **उच्यते** ऐसा कहा गया है। वह **आसुरः** प्राण-प्रदाता **यत्** जो **वि जायते** विविध रूपों में प्रकट होता है **नराशंसः** मनुष्यों से प्रशंसित हुआ है। **मातरि** मूल आद्या शक्ति में **यत्** जिस (**सरीमणि**, सरीमन् = गति, कोश) गति में **वातस्य** वायु का **सर्गः** त्याग **अभवत्** हुआ था अर्थात् जिस गति से प्रसार होना आरम्भ हुआ था उसे **मातरिश्वा** मातरिश्वन् ने (**अमिमीत**, √मा = माने, मापना की लङ्. ल.) नापा था।

यह चर्चा हो चुकी है कि आदि सृष्टिकाल में अवरुद्ध विकास क्रम को निर्धारित गति प्रदान करने हेतु इन्द्र द्वारा वज्र का संचालन होता है। उस वज्र संधान से समस्त मूल तत्त्व प्रज्वलित हो उठता है जिसके परिणामस्वरूप द्रव्य का तीव्र गति से वर्तुलाकार प्रसार होता है जिसे फुग्गे के प्रसार को सादृश्य से समझा जा सकता है। मातरिश्वन् ने मूल शक्ति के प्रसार के संवेग को नापा था अर्थात् उस आद्य संवेग का नाम मातरिश्वा रखा गया जो महाविस्फोट के परिणामस्वरूप उद्भूत होता है और जिससे चारों दिशाओं में वर्तुलाकार प्रसार होता है।

६. मातरिश्वन् की उत्पत्ति का काल–

मातरिश्वा प्रवाह की उत्पत्ति आदिकाल में हुई थी इस तथ्य का सजीव विवरण ऋचा १/१४३/२ में है– (क्र. १३१)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स जायमानः परमे व्योमन्याविरग्निरभवन् मातरिश्वने ।
अस्य क्रत्वा समिधानस्य मज्मना प्र द्यावा शोचिः पृथिवी अरोचयत् ॥

भाष्य— सः वह अग्निः अग्नि परमे व्योमनि महा आकाश में जायमानः प्रकट होते हुए मातरिश्वने मातरिश्वा के लिये (आविस् अभवत्, आविस् अवयव है जो चतुर्थ्यन्त पद के योग में अस्, भू, कृ धातु से पूर्व लगता है तथा जिसका अर्थ है प्रत्यक्षतः, वै. व्या. पृ. ४११) प्रत्यक्ष हुई ।

समिधानस्य प्रज्वलित द्रव्य के क्रत्वा कर्म से वा मज्मना सामर्थ्य से अस्य शोचिः उसके तेज ने द्यावा पृथिवी प्रकाशित अप्रकाशित लोक को प्र अरोचयत् प्रचुरता से सुशोभित किया ।

आदिकाल में महामण्डलाकार प्रज्वलित अग्निकाण्ड की परिणति मातरिश्वा स्थिति में हुई जिसमें प्रज्वलित द्रव्य चारों ओर गतिमान हुआ । इसी बिखरे हुए, तीव्र गति से प्रसारित होते हुए द्रव्य से कालान्तर में गैलेक्सियों, नक्षत्र मण्डलों व प्रकाशित अप्रकाशित लोकों की उत्पत्ति हुई ।

मण्डल १, सूक्त ३१ की ३ री ऋचा में आदिकाल की स्थिति का वर्णन है- (क्र. १३२)

त्वमग्ने प्रथमो मातरिश्वन आविर्भव सुक्रतूया विवस्वते ।
अरेजेतां रोदसी होतृवूर्ये ऽसघ्नोर्भारमयजो महो वसो ॥

भाष्य — अग्ने हे अग्नि त्वम् तू प्रथमः प्रथम विद्यमान होकर मातरिश्वने द्रव्य मण्डल को फैलाने वाली स्थिति मातरिश्वन् के लिये सुक्रतूया अपने शुभ कर्म व संकल्प से विवस्वते सूर्यवत प्रज्वलित पिण्ड के लिये आविस्-भव प्रत्यक्ष प्रकट हो ।

रोदसी समस्त अधो एवं ऊर्ध्व आकाश मण्डल (अरेजेतां, √रेज् = कांपना की लिट् ल.) कांप उठा था । होतृवूर्ये प्रमुख होता के रूप में वरण किये जाने पर तूने भारम् भार को असघ्नोः वहन किया । हे वसो नित्य सत्ता तूने महः महत्तम तत्त्व की अयजः संगतिकरण की थी अर्थात् मूल तत्त्व में संगतिकरण की ।

ऋचा में यह कहा गया है कि आदि सृष्टिकाल में ईश्वर सृष्टि उत्पत्ति करने के अपने शुभ संकल्प के साथ प्रकट हुआ । उसने सर्वप्रथम दो भौतिक स्थितियों की नींव डाली । एक स्थिति थी महा सूर्यमण्डल की उत्पत्ति और दूसरी थी मातरिश्वन् की उत्पत्ति । महा सूर्यमण्डल (big bang) की उत्पत्ति से मसस्त आकाश कांप उठा था । इस क्रिया की संगतिकरण करने वाला प्रमुख याज्ञिक ईश्वर ही था ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्निकाण्ड के होते ही मातरिश्वन् की स्थिति उत्पन्न हो गयी अर्थात् अग्निकाण्ड में भाग लेने वाला मूल तत्त्व चतुर्दिग् प्रसार में लग गया।

७. मातरिश्वन् प्रसार का प्रतीक है–

अग्निकाण्ड के होते ही द्रव्य प्रसार में संलग्न हो जाता है इस स्थिति का ऋग्वैदिक प्रतीक मातरिश्वन् है। इसी विषय पर मण्डल ३, सूक्त ५ की ९ वीं ऋचा से प्रकाश डाला जाता है, ऋचा है– (क्र. १३३)

उदु ष्टुत समिधा यह्वो अद्यौद् वर्षमन् दिवो अधि नाभा पृथिव्याः।
मित्रो अग्निरीडयो मातरिश्वा दूतो वक्षद्यजथाय देवान्॥

भाष्य— स्तुतः हमारे द्वारा स्तुत्य समिधा ज्वलनशील द्रव्य द्वारा यह्वः महान् हुआ पृथिव्याः अधि वर्षमन् पृथ्वी पर वर्षने वाला अग्निः अग्नि दिवः नाभा अधि द्युलोक के केन्द्र पर उद् अत्यधिक (अद्यौत्, √द्युत् = प्रकाशित करना का लुङ्. स् निर्देशक रूप) प्रकाशित हुआ होगा। मित्रः सहायक दूतः दूत कर्म (मूल शक्ति को प्रज्वलित हिरण्यगर्भः स्थिति से पृथ्वी पर्यन्त लाने का दूत कर्म) करने वाले ईडयः हमारे द्वारा स्तुत्य मातरिश्वा मातरिश्वन् ने देवान् भौतिक शक्तियों को यजथाय संगतिकरण करने के लिये (वक्षत्, √वह् लेट्) वहन किया होगा।

लोकों के केन्द्र (centre of gallaxies) में महाग्नि पिण्ड उद्भूत हुआ। उस प्रज्वलित पिण्ड का प्रसार उच्चाकाश के केन्द्र से लोकों की सीमा तक और पृथ्वी तक हुआ। भौतिक प्रज्वलित द्रव्य के प्रसार की इस स्थिति को मातरिश्वन् कहा गया है। महाविस्फोट (हिरण्यगर्भ) के अनन्तर निरन्तर प्रसार का क्रम पृथ्वी पर्यन्त जारी रहा।

लोकों की उत्पत्ति के हेतु मूल अग्नि को वहन करने वाले मातरिश्वन् ने अग्निकाण्ड में उत्पन्न मूल अग्नि को सर्वत्र आकाश में फैलाया। इस ऋचा की आगामी ऋचा का भाष्य (क्र. १२७) देखें। इस कारण उसे दूत कर्म करने वाला कहा गया है। मातरिश्वा ही वैश्वानर अग्नि को इस लोक में (सूर्य रूप में) लाया। इस तथ्य को ऋचा ६/८/४ में कहा गया है। ऋचा है– (क्र. १३४)

अपामुपस्थे महिषा अगृभणत विशो राजानमुप तस्थुरृग्मियम्।
आ दूतो अग्निमभरद् विवस्वतो वैश्वानरं मातरिश्वा परावतः॥

भाष्य — अपां आपः, प्रकृति की क्रियात्मक अवस्था की उपस्थे गोद में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महिषाः बलवानों ने[1] अगृभ्णत पकड़ लिया। अर्थात् त्रिवर्गी मूल प्रकृति के प्रथम परिणामों, प्रथम यौगिकों ने त्रिवर्गी आपः के तत्त्वों को पकड़ा अर्थात् मूल तत्त्व परस्पर आकर्षण में बंधकर संयुक्त हो गये जिससे यौगिकों की उत्पत्ति हुई। उन यौगिकों की संरचना में मूल सत्ता अप् के तत्त्व परस्पर आकर्षण में बंध गये, कैद हो गये। यदि ये तत्त्व आकर्षण में न बंधें तो यौगिक (disintegrate) विच्छिन्न हो जावे, विभक्त हो जावे और उसके घटक पृथक्-पृथक् हो जावें तब यौगिक अस्तित्व में न आ सकेगा।

विशः प्रजा, जातियां अर्थात् मूल सत्ता से उत्पन्न यौगिकों के अनेक वर्ग **ऋग्मियम् राजानम्** सम्मानित राजा अर्थात् महान् मूल तत्त्व, मूल सत्ता के सामने (उनके संयोग से उत्पन्न होने से) प्रजा की तरह **उप तस्थुः** समीप बैठे। **मातरिश्वा** मातरिश्वा **दूतः** दूत **वैश्वानरं अग्निं** वैश्वानर नाम की अग्नि को **परावतः** बहुत दूर से **विवस्वतः** महासूर्य, हिरण्यगर्भः से **आ अभरत्** लाया था।

त्रिवर्गी मूल तत्त्व ही राजा है अर्थात् सर्वोच्च सत्ता है मूल से उत्पन्न परि- उस राजा की प्रजा हैं, उस सर्वोच्च सत्ता से उत्पन्न हैं वे उसी के आधार पर त हैं उसी मूल सत्ता को केन्द्र बनाकर परिणाम अर्थात् मूल के यौगिक बनते हैं यौगिकों में मूल सत्ता वर्तमान रहती है मानो राजा के चारों ओर प्रजा बैठी हो।

उच्चाकाश के केन्द्र में जो वृहदग्नि प्रकट हुई थी उसे मातरिश्वा नामक शक्ति ने चारों ओर प्रसारित किया। उस प्रसार में संलग्न अग्नि के अंशों से प्रज्वलित पिण्डों की उत्पत्ति हुई। उसी अग्नि के एक अंश से सूर्य की उत्पत्ति हुई। ये तथ्य ऋचा में कहे गये हैं।

८. वैश्वानर मीमांसा–

मातरिश्वा प्रवाह हिरण्यगर्भ (बिग-बैंग) के बाद चलता है तथा इससे समस्त द्रव्य मण्डलाकार (स्फैरिकल) रूप से चारों दिशाओं में प्रसारित होता है। इसी द्रव्य से कालान्तर में प्रज्वलित लोकों की उत्पत्ति होती है जिनमें से सूर्य भी एक है। अग्निकाण्ड के उपरान्त समस्त मौलिक द्रव्य मातरिश्वा शक्ति (प्रवाह) के द्वारा

---

1 निरुक्त भाष्यानुसार 'महिषाः' मध्यस्थानी देवताओं का द्योतक है। मूल त्रिवर्गी प्रकृति प्रथमस्थानी है, मूल से जो सर्वप्रथम परिणाम बनते हैं उन्हें मध्यमस्थानी कहा गया है अर्थात् मूल त्रिवर्गी प्रकृति के जो प्रथम यौगिक हैं वे मध्यस्थानी देवता हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसारित होकर दूर-दूर तक ले जाया जाता है तब इस बिखरी हुई नाभिक शक्ति के एक अंश से सूर्य उत्पन्न होता है। यह सूर्य ही वैश्वानर अग्नि है। जो अग्नि इस प्रकार हिरण्यगर्भ की स्थिति से मातरिश्वा प्रसार द्वारा लायी गयी है वही अग्नि सूर्य रूप में स्थापित है। वही सूर्य रूप अग्नि प्राणीमात्र के जीवन का हेतु होने से वैश्वानर कही जाती है।

इसी अग्नि के विषय में प्रश्नोपनिषद् के प्रथम प्रश्न के उत्तर में ७ वें श्लोक में कहा गया है–

स एष वैश्वानरो विश्वरूपः प्राणोऽग्निरुदयते।
तदेतदृचाभ्युक्तम् ॥

यही वह वैश्वानर अग्नि अनेक रूप वाली प्राण-शक्ति का उदय करती है। यही बात ऋचा द्वारा कही गयी है।

शब्द निर्वचन के अनुसार वैश्वानर शब्द की व्याख्या इस प्रकार की गयी है– (निरुक्त अ. ७ / पाद ६)

'विश्वान् नरान् नयति' सभी मनुष्यों को ले जाता है, अथवा
'विश्वान्+अर, प्रत्यृतः सर्वाणि भूतानि' सभी जीवों को व्याप्त करता है।

इस प्रकार वैश्वानर जीवन तत्त्व का पोषक है।

ऋचा ३/३/११ में कहा गया है– (क्र. १३५)

वैश्वानरस्य दंसनाभ्यो बृहदरिणादेकः स्वपस्यया कविः।
उभा पितरा महयन्नजायताग्निर्द्यावा पृथिवी भूरिरेतसा ॥

भाष्य— कविः सर्वज्ञ एकः एक अद्वितीय ईश्वर ने (स्वपस्यया = सु–अपस्यया) अपने उत्तम कर्म से (दंसनाभ्यः, दंसयः कर्माणि, निरु. ४-२५) कर्म करने वाले (जीवों) के लिये अर्थात् मानव के लिये वैश्वानरस्य वैश्वानर अग्नि के बृहत् महान् (अरिणात्, √रि = बहना का लङ्. ल.) प्रवाह बहाये। अग्निः वैश्वानर अग्नि ने पृथिवी द्यावा पृथ्वी और सूर्य उभा दोनों पितरा माता-पिता रूप से पालन करने वाले की महयन् महानता को धारण करते हुए भूरि रेतसः अनेक प्रकार के वीर्याणु (विभिन्न जीवों की उत्पत्ति हेतु) अजायत उत्पन्न किये।

ऋचा में कहा गया है कि पृथ्वी तथा सूर्य जीवन के लिये अनुकूल परिस्थितियों को उत्पन्न करने वाले माता-पिता की तरह हैं। वैश्वानर अग्नि प्राण संचालित करने वाली शक्ति है जिससे विभिन्न प्रकार के वीर्याणु उद्भूत होते हैं,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो जीवों की देह की उत्पत्ति में हेतुभूत हैं। इस ऋचा में वैश्वानर शक्ति के कार्य का स्पष्ट कथन है कि वैश्वानर अग्नि से जीव कोशों (living cells) की उत्पत्ति होती है।

मानव से इतर सभी प्राणी भोग योनि हैं कर्म योनि केवल मानव की है। मानव की उत्पत्ति के लिये ईश्वर ने उन द्रव्यों को विशेषता से प्रवाहित किया जो मानव जीवन के लिये आवश्यक हैं। ये द्रव्य प्राणपद वायु, जल, फल, वनस्पत्ति, अन्नादि हैं। इन द्रव्यों का पोषण सूर्य और पृथ्वी करते हैं। इस वैश्वानर शक्ति ने ही सूर्य और पृथ्वी का आश्रय लेकर अन्य जीवों के जीवन के बीजरूप मूल जीवाणुओं को बनाया। वैश्वानर अग्नि तत्त्व जीवनी शक्ति धारण करने वाला तत्त्व है जिससे जीव कोश बनते हैं।

वैश्वानर के विषय में मण्डल ७, सूक्त ७६ की प्रथम ऋचा में कहा गया है– (क्र. १३६)

उदु ज्योतिरमृतं विश्वजन्यं विश्वानरः सविता देवो अश्रेत।

विश्वानरः सबको अनुप्राणित करने वाले देवः सविता प्रेरक देव ने विश्वजन्यं अमृतं ज्योतिः सबको उत्पन्न करने वाली अमर ज्योति का (उत् अश्रेत, √श्रि लुङ्. धातु) पूर्ण रूप से आश्रय लिया।

वैश्वानर, वह देवता जो अनुप्राणित करता है, ने सबकी प्रेरक अमर ज्योति को ऊपर उठाया[1]। अर्थात् वैश्वानर जीवनी शक्ति है जो जीवों को अनुप्राणित करती है।

मण्डल १, सूक्त ५९ की प्रथम ऋचा है– (क्र. १३७)

वया इदग्ने अग्नयस्ते अन्ये त्वे विश्वे अमृता मादयन्ते।
वैश्वानर नाभिरसि क्षितीनां स्थूणेव जनान् उपमिद्ययन्थ॥

भाष्य— अग्ने हे अग्नि ते अन्ये तेरे से भिन्न अग्नयः शक्तियाँ ते वयाः तेरी शाखाएँ इत् ही हैं। त्वे तेरे से विश्वे अमृताः समस्त (जीव प्रजा, जिन्हें) अमर आत्माएँ (धारण करती हैं) मादयन्ते आनन्दित होते हैं।

वैश्वानर हे वैश्वानर, तू क्षितीनाम् प्राणियों के वास हेतु उपयुक्त स्थानों को स्थूणा इव खम्भे की तरह थामने वाली नाभिः असि केन्द्रीय शक्ति है। तूने जनान् मानवों और उत्पन्न प्राणियों को (उपमित्, √मि = स्थिर करना,

1 निरु. भाष्य ११/६

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्तान्त मित) अपनी समीपता से स्थिर करते हुए (ययन्थ, √यम् की लिट् ल. म. पु.) नियमित किया है ।

इस ऋचा में यह कहा गया है कि वैश्वानर-अग्नि प्राणिमात्र में प्राण शक्ति की संचालक है । प्राणिमात्र के जितने भेद हैं अर्थात् जितने प्रकार के जीवाणु हैं वे सब वैश्वानर अग्नि से अनुप्राणित हैं । वैश्वानर मूल जीव कोश को उत्पन्न करती है जिससे अनेक शाखायें फूटी हैं उन सबको नियमित करने वाली केन्द्रीय मौलिक शक्ति वैश्वानर है ।

आगामी ऋचा है– (क्र. १३८)

मूर्धा दिवो नाभिरग्निः पृथिव्या अथाभवदरती रोदस्योः ।
तं त्वा देवासोऽजनयन्त देवं वैश्वानर ज्योतिरिदार्याय ॥

भाष्य— रोदस्योः इस द्युलोक व पृथ्वी का मूर्धा सिर दिवः सूर्य है अथ तथा अरतिः सुस्त अर्थात् प्रसुप्त अग्निः ऊर्जा पृथिव्याः पृथ्वी को नाभिः नाभि की तरह बाँधने वाली केन्द्रीय शक्ति अभवत् हुई है । वैश्वानर हे वैश्वानर, तं त्वा देवं उस तुझ देव को, दैवी शक्ति को देवासः सब देवों ने, दिव्य शक्तियों ने आर्याय श्रेष्ठ देव ईश्वर के लिये ज्योतिः इत् सूर्य रूप में ज्योति की तरह ही अजनयन्त उत्पन्न किया है ।

(प्रसुप्त) छिपी हुई आकर्षण शक्ति इस पृथ्वी को उसके वक्र मार्ग पर बाँधने वाली है वही शक्ति इसे इसकी धुरी पर घुमाती है । इस प्राणि-जीवन को धारण करने के लिये सूर्य से प्राप्त ऊर्जा ही आधार है । प्राणि-जीवन की हेतुभूत वैश्वानर रूप जीवनी शक्ति का संचालक सूर्य है ।



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय ११

ब्राह्मण ग्रन्थ में भृगुः, अथर्वा, मातरिश्वन्, समुद्रः और अङ्गिरसः की विवेचना

गोपथ ब्राह्मण में आदि सृष्टिकाल की घटनाओं का सुन्दर चित्रण है। उसमें यह बताया गया है कि आरम्भ में ब्रह्म अकेला था अर्थात् ईश्वर अपने देहभूत उपादान कारण प्रकृति सहित विद्यमान था। उसने बहुनाम रूपात्मक सृष्टि को उत्पन्न करने की इच्छा की। इस अभिप्राय से उसने श्रम किया अर्थात् अपनी देह रूप उपादान कारण प्रकृति का मंथन किया। इस मंथन के परिणामस्वरूप ईश्वर का पसीना अर्थात् एक तरल की उत्पत्ति हुई। आदिकाल में सर्वप्रथम प्रकट हुआ यह तरल अप् तत्त्व के नाम से विख्यात हुआ। इसी तत्त्व में क्रमशः भृगु, अथर्वा और अङ्गिरसों की उत्पत्ति हुई। ये सभी प्रकृति की अवस्था विशेष के द्योतक हैं किन्तु वैदिक विज्ञान की अनभिज्ञता के कारण ऐतिहासिक व्यक्ति मान लिये गये हैं। गोपथ ब्राह्मण के विवरण में इनका प्राकृतिक स्वरूप सुरक्षित है। उस विवरण के आधार पर इस अध्याय में भृगु आदि के प्राकृतिक स्वरूप को प्रकाश में लाया गया है।

१. आदिकाल का विवरण–

गोपथ ब्राह्मण (पूर्व भाग प्र. १ / कं. १ से ४) में आदिकाल में मूल उपादान कारण में हुए प्रारम्भिक परिवर्तन को सूत्र रूप से रूपकों में निहित किया गया है। उस परिवर्तन का विवरण व उसमें निहित विज्ञान पर यहाँ प्रकाश डाला जाता है। वहाँ कहा गया है– (क्र. १३९)

ओ३म् ब्रह्म ह वै इदमग्रे आसीत ओ३म् तीन शाश्वत सत्ताओं का समष्टि रूप ब्रह्म निश्चय करके इस (जगत को उत्पत्ति) के पूर्व था।

स्वयं तु एकमेव तत् एक्षत् और अपने को उसने अकेले ही देखा।

महत् वै यक्षम्, तत् एकम् एव अस्मि मैं बड़ा ही पूजनीय हूँ सो मैं अकेला ही हूँ।

हन्त अहम् मत् एव मन्मात्रं द्वितीयं देवं निर्ममे इति अरे! मैं अपने से ही अपने समान दूसरी दिव्य सत्ता बनाऊँ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ यह विचार निहित है कि सत्ता की उत्पत्ति शून्य से नहीं होती वरन् विद्यमान सत्ता की मात्र अभिव्यक्ति होती है।

तत् अभि अश्राम्यत् अभि अतपत् सम् अतपत् उसने सब ओर से श्रम किया, सब ओर से तप किया, भलीभांति तप किया।

तस्य श्रान्तस्य सन्तप्तस्य ललाटे स्नेहः यत् आर्द्रम आ अजायत उस श्रम किये हुए भलीभांति तपे हुए के ललाट पर चिकना द्रव्य जो तरल रूप है सब ओर से प्रकट हुआ।

तेन अनन्दत् तम् अब्रवीत् उस (कृत्य) से प्रसन्न हुआ उस (चिकने द्रव्य) से बोला। **महत् वै यक्षम् सुवेदम् अविदामहे इति** मैं बड़ा ही पूजनीय हूँ अच्छे प्रकार जानने योग्य पदार्थ (मूल उपादान कारण) को हमने जाना है।

तत् यत् अब्रवीत् सुवेदम् अविदामहे इति तस्मात् सुवेदः अभवत् वह जो उसने कहा कि अच्छे प्रकार जानने योग्य को हमने जाना इसलिये वह सुवेद हुआ।

तम् वै एतम् सुवेदम् सन्तम् उस ही इस सुवेद होते हुए को **स्वेदः इति आचक्षते** स्वेद (पसीना) कहते हैं। (कंडिका १)

भावार्थ— ईश्वर, जीव, प्रकृति इस संघात, समग्र सत्ता का नाम ब्रह्म है। ईश्वर ने आदि सृष्टिकाल में अपने देहभूत उपादान कारण को श्रम द्वारा प्रकट किया (न कि भ्रम द्वारा) तथा उस उपादान कारण के स्वरूप को मौलिक गुणों सहित अच्छी तरह से जाना इस कारण उस प्रथम प्रकट हुए मूल कारण का नाम ब्रह्म का स्वेद हुआ।

२. मूल उपादान कारण के क्रियात्मक रूप का प्राकट्य—

ब्रह्म के आगामी कार्य पर विचार— (क्र. १४०)

सः भूयः अश्राम्यत्, भूयः अतप्यत्, भूयः आत्मानम् समतपत् उस ब्रह्म ने फिर श्रम किया, फिर तप किया, फिर से अपने को भलीभांति तपाया।

तस्य श्रान्तस्य, तप्तस्य, सन्तप्तस्य, सर्वेभ्य रोम गर्तेभ्यः पृथक् स्वेदधाराः प्र अस्यदन्त उस श्रम किये हुए, तपे हुए, भलीभांति तपे हुए ब्रह्म के सब रोम छिद्रों से पृथक्-पृथक् पसीने की धारायें बहने लगी।

ताभिः अनन्दत्, तत् अब्रवीत् आभिः वै अहम् इदं सर्वम् धारयिष्यामि यत् इदं किञ्च उनसे प्रसन्न हुआ वह बोला इन (पसीने के धाराओं) से ही मैं इन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबको धारण करुँगा यह जो कुछ भी (उत्पन्न होगा)।

तस्मात् धाराः अभवन् उसी से वे धारायें (धारण शक्तियाँ) हुईं

तत् च धाराणां धारात्वं यत् आसु ध्रियते और वह धाराओं का धारापन (धारण सामर्थ्य) है जो इनमें धरा गया है।

तत् यत् अब्रवीत्, आभिः वै अहम् इदं सर्वम् जनयिष्यामि यत् इदं किञ्च इति वह जो उसने कहा – इनसे ही मैं इस सबको उत्पन्न करुँगा यह जो कुछ भी (उत्पन्न) होगा।

तस्मात् जायाः अभवन् उसी से वे (धाराएँ) जायायें (माताओं के समान) हुईं।

तत् यत् अब्रवीत् आभिः वै अहम् इदं सर्वम् आप्स्यामि यत् इदं किञ्च इति वह जो उसने कहा कि इन (पसीने की धाराओं) से ही मैं इन सबमें व्याप्त होऊँगा यह जो कुछ भी होगा।

तस्मात् आपः अभवन् उसी से वे धारायें व्यापक अप् (√आप्लृ व्याप्तौ) तत्त्व[1] कहलाये। (कंडिका २)

तात्पर्य — पूर्व अनुच्छेद (कंडिका १) में प्रकट हुआ तत्त्व उस रूप में कहा गया है जो रूप आदि मूल उपादान कारण का होता है जो सर्वप्रथम प्रकट हुआ अतः यह तत्त्व मूल सत्ता अदिति का बोधक है। पसीने का धाराओं का रूप ग्रहण करना वह अवस्था है जब वह तरल जगत को धारण करने हेतु उपयुक्त हो जाता है। यह अवस्था अप् कही गयी है। ब्रह्म के रोम-कूपों से तप द्वारा प्रकट हुआ तत्त्व मूल क्रियात्मक प्रकृति तत्त्व है यह जल महाभूत कदापि नहीं है। इस प्रारंभिक तत्त्व को जाया क्यों कहा गया है यह भी सूत्र में कहा गया है। इसी कारण क्र. ७३ में आपः को देवीः विशेषण से युक्त किया गया है। आपः बहुवचन है और प्रकृति भी त्रिवर्गी है इस कारण प्रकृति के लिये तीन देवियों, जाया आदि विशेषण प्रयुक्त हुए हैं[2]। इस प्रकार सृष्टि उत्पत्ति हेतु सर्वप्रथम प्रकट हुआ तत्त्व अप् (या आपः) है जो मूल भौतिक उपादान कारण की प्रथम अवस्था का द्योतक है।

३. अप् तत्त्व में भृगुः की उत्पत्ति–

ब्रह्म के द्वारा अप् को दो भागों में विभक्त करना– (क्र. १४१)

---

1 भाष्यकार ने कण्डिका ७ में अप् का अर्थ व्यापक तन्मात्राएँ, जल की भाप के समान किया है उन्होंने यह अनुभव किया कि अप् का अर्थ जल उपयुक्त नहीं है।

2 अस्मै तिस्रो अव्यथ्याय नारीर्देवाय देवीर्दिधिषन्त्यन्नम्। ऋ. २/३५/५
सोमो राजा प्रथमो ब्रह्म जायां ···· ···· । ऋ. १०/१०९/२

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताः अपः सृष्ट्वा अनु ऐक्षत, तासु स्वां छायां अपश्यत् ।
उन आपः मूल शक्ति को प्रकट कर उस (ईश्वर) ने फिर देखा, उनमें अपनी छाया को देखा। ताम् ईक्षमाणस्य उस छाया (मानसिक संकल्प रूप प्रतिबिम्ब) को देखते हुए अस्य रेतः स्वयम् अस्कन्दत् इस ब्रह्म का कामना रूप बीज[1] उस अप् तत्त्व में अपने आप (अर्थात् स्वाभाविक रूप से) टपक गया अर्थात् ईश्वरीय कामना ईश्वर का एक स्वाभाविक लक्षण है।

तत् अप्सु प्रति अतिष्ठत् वह आपः तत्त्व[2] में ठहर गया।

ताः तत्र एव अभि अश्राम्यत्, अभि अतपत्, सम् अतपत्
उनको वहाँ ही उसने सब ओर से श्रम दिया, सब ओर से तपाया, भलीभांति तपाया

ताः श्रान्ताः तप्ताः सन्तप्ताः रेतसा सार्द्धम् एव द्वैधम् अभवन्
वे दबाये हुए, तपाये हुए, भलीभांति तपाये हुए अप् तत्त्व आधे के साथ ही बीज के द्वारा दो प्रकार के हो गये।

तासाम् अन्याः अन्यतराः अतिलवणाः अपेयाः अस्वाद्व्यः
उन दोनों में से कोई एक अति खारी न पीने योग्य और अरोचक थीं।

ताः अशान्ताः रेतः समुद्रं वृत्वा अतिष्ठन्
वे अशान्त बीज होती हुई (अप्) के सागर को आवरण कर ठहर गयीं

अथ इतराः पेयाः स्वाद्व्यः शान्ताः
और दूसरी पीने योग्य, रोचक और शान्त थीं।

ताः तत्र एव अभि अश्राम्यत्, अभि अतपत् सम् अतपत्
उन रोचक और शान्त आपः को उसने वहीं दबाया, सब ओर से तपाया, भलीभांति तपाया।

(ताभ्यः श्रान्ताभ्यः तप्ताभ्यः सन्तप्ताभ्यः यत् रेतः आसीत् तत् अभृज्यत, √भ्रस्ज् पाके दीप्तौ च)
उन दबाई हुई, तपाई हुई, भलीभांति तपाई हुई अप् धाराओं से जो बीज हुआ वह पक गया।

तस्मात् भृगुः सम् अभवत्
उससे वह चमकीला तत्त्व उत्पन्न हुआ।

तत् भृगोः भृगुत्वम् वह भृगु का भृगुपन है।

---

1 कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसा रेतः प्रथमं यदासीत्। ऋ. १०/१२९
2 आपः बहुवचन है मौलिक कणों का संघात है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ— अप् तत्त्व के प्रकट होने पर ईश्वर ने उसमें अपने मानसिक संकल्प को देखा। ईश्वरीय कामना सृष्टि को उत्पन्न करने की थी। ईश्वर का कामना रूप बीज अप् तत्त्व के एक भाग में ठहर गया अर्थात् अप् तत्त्व का एक भाग ही ईश्वरीय कामना को वहन करने की दृष्टि से पर्याप्त था।

एक भाग, जिसको रूपक में खारा, अरोचक एवं पीने के अयोग्य कहा गया है, वह सृष्टि में नियोजन की दृष्टि से अयुक्त था। ईश्वरीय कामनामय योजना का अंग न बन सकने के कारण उस भाग को अशान्त कहा गया है वह भाग अपने स्वाभाविक सत्ता में रत रहता हुआ ईश्वरीय योजना के बाहर स्थित था अतः उसे आवरण करने वाला (वृत्र) कहा गया।

दूसरे पीने योग्य[1] और रोचक अर्थात् सृष्टि में नियोजित करने के लिये उपयुक्त भाग को ईश्वरीय कामना को वहन करने की दृष्टि से शान्त कहा गया है। इस भाग को ईश्वर ने अच्छी तरह तपाया, वह भाग पका हुआ बीज हो गया। इस बीज में सृष्टि को उत्पन्न करने का सामर्थ्य निहित हुआ। वह चमकीला तत्त्व भृगु कहलाया।

प्रलयकाल में प्रकृति में दो भाग होते हैं। एक भाग अपने स्वाभाविक गति में संलग्न रहता है इसे ही खारा, अपेय भाग कहा गया है इसी भाग को रूपक में वृत्र कहा गया है।

प्रकृति के दूसरे भाग को, जो सृष्टि रचना की दृष्टि से उपयुक्त रहता है, ही पका हुआ बीज या भृगु कहा गया है। इसी बीजरूप भृगु शक्ति के द्वारा आदिकाल में ईश्वर सृष्टि रचना में सन्नद्ध होता है। इस भाग को ईश्वर अपने देहभूत आकाश में एकत्र करके इससे एक अत्यन्त सघन द्रव्य बनाता है ईश्वर के इस कृत्य को त्वष्टा द्वारा वज्र रचना करना कहा जाता है या सोमपान करना कहा जाता है जो अपने देहभूत आकाश में विकिरण के एकत्रीकरण का द्योतक है। इस पके हुए या नियंत्रित ऊर्जा के भाग को वज्ररूप से दूसरे खारे, अरोचक, अशान्त या वृत्र भाग पर चलाया जाता है इससे महाग्नि ताण्डव या महाविस्फोट (big bang) होता है।

अतः प्रलयकाल में ईश्वरीय योजना में सुरक्षित अग्नि (energy) तत्त्व को भृगु कहा गया है जिसे आहवनीय[2] अग्नि भी कहा जाता है।

---

1 तदाहना अभवत् पिप्युषी पयोंऽशोः पीयूषं प्रथमं तदुक्थ्यम्। ऋ. २/१३/१
वह सर्वप्रथम पीने योग्य पीयूष हुआ अर्थात् सृष्टि में समाविष्ट करने योग्य।

2 विवरण के लिये भाग १, अध्याय २ देखें।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४. अथर्वा तथा मातरिश्वन् की उत्पत्ति–

गोपथ ब्राह्मण में आगे कहा गया है– (क्र. १४२)

स भृगुं सृष्टवा अन्तर् अधीयत वह परमात्मा भृगु का सृजन करके अन्तर्ध्यान हो गया।

स भृगु सृष्टः प्राङ् एजत वह भृगु उत्पन्न होकर पूर्व को चला।

तं वाक् अनु अवदत् वायो वायो इति उससे वाणी ने कहा – हे वायो, हे वायो। **स न्यवर्तत** वह लौटा।

स दक्षिणां दिशम् एजत वह दक्षिण दिशा को चला।

तं वाक् अनु अवदत् मातरिश्वन् मातरिश्वन् उसको वाणी कहने लगी– हे मातरिश्वन्, हे मातरिश्वन्।

स न्यवर्तत वह लौटा।

स प्रतीचीं दिशम् एजत वह पश्चिम दिशा को चला।
उससे वाणी कहने लगी– हे पवमान, हे पवमान। वह लौटा।

स उदीचीं दिशम् एजत वह उत्तर दिशा को चला।
उससे वाणी कहने लगी– हे वात, हे वात।
वह वाणी से कहने लगा– क्या हमने परमात्मा को जाना।
वाणी ने कहा– नहीं जाना। (कंडिका ४)

यह कथन कि क्या हमने परमात्मा को जाना इस बात का संकेत है कि वह फैलने वाला द्रव्य जिसे मातरिश्वन् या वायु कहा गया है चेतन ईश्वर से भिन्न उसकी कार्य शक्ति है।

तात्पर्य यह है कि दीप्तिमान् द्रव्य की उत्पत्ति के अनन्तर वह द्रव्य चारों ओर फैलने लगा। वायो, मातरिश्वन्, पवमान, वात ये सभी नाम पर्यायवाची हैं जो प्रज्वलित द्रव्य के प्रसार की अवस्था के द्योतक हैं इस अवस्था का नाम मातरिश्वन् है।

इसके अनन्तर ब्राह्मण में कहा गया है– (क्र. १४३)

अथ अर्वाङ् एनम् एतासु एव अप्सु अन्विच्छ इति
अब सामने इस (पुरुष) को इन ही मूल तत्त्वों में खोज।

तत् यत् अब्रवीत् अथ अर्वाङ् एनं एतासु एव अप्सु अन्विच्छ इति, तत् अथर्वा अभवत्

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह जो, उस वाणी ने कहा कि अब सामने इस पुरुष को इन ही मूल तत्त्वों में खोज, वह अथर्वा हुआ अर्थात् अथर्वा पद अथ और अर्वाङ्. से बना है।

तत् अथर्वणः अथर्वत्वम् वह अथर्वा का अथर्वपन है।

यथा एव ब्रह्मणः लोमानि यथा अङ्गानि यथा प्राणः एवम् एव अस्य तस्य एतस्य भगवतः अथर्वणः ऋषेः ह वै सर्वः आत्मा सम् अभवत्।

जैसे ही ब्रह्म के रोम, जैसे अंग और जैसा प्राण था वैसा ही यह बहुत प्रसिद्ध ईश्वरीय अथर्व नामक (ऋषि का) प्राकृतिक शक्ति का भी निश्चय करके सब शरीर उत्पन्न हुआ। (कंडिका ४)

भावार्थ — वाणी ने ईश्वर की खोज हेतु सूत्र बताया, वह यह कि निराकार ईश्वर को उसके कार्य, उत्पन्न द्रव्य के रूप में ही जाना जा सकता है अतः प्रकट हुए उपादान कारण आपः में ईश्वर को खोजना उपयुक्त है। इस खोज के परिणामस्वरूप द्रव्य को जो अवस्था उस समय (आगे) प्रत्यक्ष रूप से अवस्थित हुई मानो अपनी सृजनात्मक शक्ति के रूप में वह ईश्वर उस अवस्था में अवतरित हुआ प्रकट हुआ, ऐसा जानो। जैसी ईश्वर की प्रकृति रूप देह थी व सृष्टि रचने का मानसिक संकल्प था तदनुरूप ही अप् तत्त्व ने अपने आपको उस साँचे में ढाल लिया।

वह प्राकृतिक स्थिति (अथ अर्वाङ्.) जो उस समय सामने थी अथर्वा कहलायी। अथर्वा ऋषि आदि सृष्टिकाल की वह प्राकृतिक स्थिति है[1] जो ईश्वर की कामना के अनुरूप सृष्टि उत्पादन सामर्थ्य से युक्त है।

ब्राह्मण में आगे कहा गया– (क्र. १४४)

उस अथर्वा के उत्पन्न हो जाने पर **तम् अथर्वाणं ब्रह्म अब्रवीत्** उस अथर्वा को ब्रह्म ने कहा – **प्रजापतेः प्रजाः सृष्ट्वा पालस्व इति** प्रजापति की प्रजाओं (द्रव्यों और जीवों) को रचकर पाल। **तस्मात् प्रजापतिः अभवत्** उससे वह प्रजापति हुआ **तत् प्रजापतेः प्रजापतित्वम्** वह प्रजापति का प्रजापतित्व है। **अथर्वा वै प्रजापतिः** अथर्वा ही प्रजापति है।

प्रजापतिः इव वै सर्व लोकेषु भाति यः एवं वेद प्रजापति की भांति ही वह (पुरुष) सब लोकों में चमकता है जो ऐसा जानता है। (कं ४)

भावार्थ— जब मूल उपादान कारण ईश्वरीय कामना के फलस्वरूप परिवर्तित व

---

1 हिरण्यगर्भ अर्थात् प्रज्वलित हिरण्यमय पिण्ड का नाम ब्रह्मा है। हिरण्यगर्भ के बाद की स्थिति का नाम अथर्वा है जो ब्रह्मा का पुत्र है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकसित होकर ईश्वरीय योजना के अनुरूप सृष्ट्युत्पत्ति हेतु तैयार हो जाता है तब वह भौतिक द्रव्य प्रजाओं, प्रकृति के विकारों को उत्पन्न करने में समर्थ हो जाता है तदनुसार उसको प्रजापति कहा जाता है। वह प्रजापति अथर्वा है अर्थात् जब प्रकृति में ईश्वर की ईक्षण शक्ति के अनुरूप सृष्टि उत्पत्ति हेतु पृष्ठभूमि तैयार हो जाती है तब उस प्राकृतिक स्वरूप को प्रजापति अथर्वा कहते हैं।

५. समुद्र की विवेचना–

कंडिका ७ में समुद्र शब्द की व्युत्पत्ति सहित समुद्र का व्यापक अर्थ समझाया गया है। ब्राह्मण ग्रन्थानुसार समुद्र का अर्थ पार्थिव जल समुद्र ही नहीं है अपितु आदि सृष्टिकाल में जो मूल तत्त्व की व्यापक मात्राएँ समस्त आकाश को घेरकर स्थित हुई थीं उस विस्तार को समुद्र संज्ञा प्रदान की गयी।

कण्डिका में कहा गया– (क्र. १४५)

ताः या अम् वे जो कुछ रेतः बीज (होकर) **समुद्रम्** आकाश को वृत्वा घेरकर **अतिष्ठन्** ठहरीं **ताः** वे सब **प्राच्यः** सामने वाली या पूर्व से **दक्षिणाच्यः** दाहिनी ओर की **प्रतीच्यः** पीछे वाली **उदीच्यः** बाईं ओर की या उत्तर दिशा से **सम् अवद्रवन्त** बहकर आयीं।

तत् यत् सम् अव अद्रवन्त वे जो बहकर आयीं इसलिये **समुद्रः** समुद्र **उच्यते** ऐसे कहा जाता है।

अस्तु समुद्र अपने व्यापक अर्थ में मूल तत्त्वों का प्रवाह है जो आदिकाल में तरल (fluid) रूप में था। इस प्रकार यह निश्चित होता है कि समुद्र शब्द भी वेद का प्रतीकात्मक शब्द है। यह प्रत्येक स्थिति में पार्थिव सागर का वाचक नहीं है।

६. वरुण व अङ्गिरा की उत्पत्ति–

ब्राह्मण ग्रन्थ में आगे कहा गया– (क्र. १४६)

ताः भीता **अब्रुवन्** वे (बहकर आयी हुई धाराएँ) डरी हुई बोलीं–

भगवन्तम् एव वयम् राजानम् वृणीमहे इति भगवान् (आप) को ही हम राजा ग्रहण करती हैं।

यत् च वृत्वा अतिष्ठन् और जो घेरकर वे (अप् धारायें) ठहरीं

तत् वरणः अभवत् उससे ही वह द्रव्य वरण योग्य हुआ।

तं वै एतं वरणं सन्तम् उस ही ऐसे वरण होते हुए को **वरुणः इति आचक्षते** यह वरुण है वे ऐसा कहते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तं वरुणम् मृत्युम् अभि अश्राम्यत् अभि अतपत् सम् अतपत्
उस स्वीकरणीय मरने व मारने वाले (द्रव्य) को (परमात्मा ने) सब ओर से दबाया, सब ओर से तपाया, भली-भांति तपाया।

तस्य श्रान्तस्य तप्तस्य संतप्तस्य सर्वेभ्यः अङ्गेभ्यः रसः अक्षरत्
उस दबाये हुए, तपाये हुए, भली-भांति तपाये हुए के सब अङ्गों से रस बहा।

सः अङ्गरसः अभवत् वह अङ्गरस हुआ।

तम् वै एतम् अङ्गरसं सन्तम् अङ्गिरा इति आचक्षते
उस निश्चय ही इस (अङ्गरस) अङ्गों का रस होते हुए को यह अङ्गिरा है ऐसा वे कहते हैं।

तात्पर्य— आदिकाल में जो तरल सृष्टि रचना हेतु उपयुक्त होने के कारण वरण किया गया, स्वीकार किया गया उसी से उसकी संज्ञा वरुण पड़ी।

उस वरणीय तरल को ईश्वर ने सब ओर से दबाकर उस पर श्रम करके उस तरल के सब अङ्गों का, सभी वर्गों का सारभूत रस निकाला। यह सारभूत रस मारक शक्ति से युक्त था इसे अङ्गिरा या अङ्गिरस कहा गया। यह सृष्टि रचना में नियोजित प्राथमिक तरल था।



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय १२

सूक्ष्म स्थूलभूत, नक्षत्र, सूर्य व पृथ्वी की उत्पत्ति का विज्ञान

देवों के स्वरूप की मीमांसा करते हुए यह दर्शाया जा चुका है कि देव उत्पत्ति तथा विनाशधर्मी भौतिक अवस्थाएँ हैं ये विभिन्न भौतिक विभागों के अधिष्ठाता चेतन देवता (Gods) नहीं हैं। देवों की उत्पत्ति का उपादान कारण प्रकृति की मूल अवस्था (अदिति) है तथा ईश्वर प्राकृतिक अवस्थाओं का निर्माता निमित्त कारण है। ऋग्वेद में देवों के दो पक्ष (पहलू) दिखाई देते हैं। एक पक्ष विशुद्ध भौतिक है जो प्रकृति की अवस्था विशेष है, दूसरा पक्ष वह है जब उस भौतिक स्वरूप के साथ ईश्वरीय निर्माण शक्ति को संयुक्त हुआ देखा जाता है। ईश्वर अनन्त ज्ञान, अनन्त बल, अनन्त कौशल सम्पन्न है। किसी विशिष्ट रचना में उसकी निर्माण कला का अंशमात्र ही नियोजित हुआ है। उस रचना में ईश्वरीय निर्माण कला के शक्त्यंश की कल्पना कर उसका दर्शन किया गया है उस रचना विशेष में निहित वह चेतन शक्त्यंश ईश्वर का ही प्रतिनिधित्व करता हुआ देव रूप में वंदनीय हुआ है।

इस लेख में देवों की उत्पत्ति के विषय पर ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त ७२ से प्रकाश डाला गया है। सूक्त में देवों को दो वर्गों में रखा गया है। एक वर्ग ज्योति-पिण्डों सम्बन्धी है जो नक्षत्र, ग्रह आदि लोकों को समाविष्ट करता है। दूसरा वर्ग सूक्ष्म स्थूलभूतों (states of matter) को निहित करता है। इन दोनों वर्गों के देवों की उत्पत्ति का रोचक विवरण सूक्त में है। यह विवरण आधुनिक विज्ञान के परीक्षित मत से आश्चर्यजनक रूप से मेल खाता है।

१. वैज्ञानिक परिकल्पना–

आधुनिक सृष्टि विज्ञान (cosmology) का मत है कि सृष्ट्यारंभ एक महा-विस्फोट से हुआ था। इसे वैज्ञानिक तकनीकी भाषा में बिग-बैंग (big bang) कहते हैं। इस परिकल्पना के अनुसार समस्त भौतिक द्रव्य एक बृहदाकार पिण्ड के रूप में था। उस समय भौतिक द्रव्य अपनी मौलिक क्वान्टम (quantum state) अवस्था में था जो परमाणु तो क्या, परमाणु की नाभि (nucleus) रचना के भी पूर्व की अवस्था है अर्थात् उस समय परमाणु की नाभि भी अस्तित्व में नहीं आयी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। प्रमाणित समय (standard era) पर प्रकृति का द्रव्य भाग अष्टवर्गी था। ये आठ प्रकार के मौलिक कण-प्रतिकण (particle, anti particle) इलेक्ट्रान, प्रोटान, न्यूट्रान, पाजीट्रान, म्यूओन, एन्टीम्यूओन, न्यूट्रीनो तथा एन्टीन्यूट्रीनो थे। प्रकृति सदैव दो रूप में अपने आप को अभिव्यक्त करती है ये दो रूप हैं द्रव्य भाग (कण-प्रतिकण) तथा विकिरण। अतः उस समय भी प्रकृति का विकिरण भाग वर्तमान था तथा द्रव्य भाग और विकिरण के मध्य निरन्तर मंथन हो रहा था। महाविस्फोट के साथ ही प्रज्वलित द्रव्य मण्डल तीव्र गति से फुग्गे की तरह वर्तुलाकार (spherical) प्रसारित होने लगा। इस प्रसार के कारण तरल का तापमान तीव्र गति से गिरने लगा तब यथोचित तापमान पर सर्वप्रथम परमाणु का नाभिक (nucleus) अस्तित्व में आया अर्थात् न्यूट्रान प्रोटान संयोग संभव हुआ। सर्वप्रथम मुख्य रूप से हाइड्रोजन और हीलियम नाभिक अस्तित्व में आये। इस तरल का नाम कास्मिक फ्लुइड् हुआ।

इस प्रसारित होते हुए मौलिक तरल से अनेक प्रवाह मुख्य भाग से कटकर पृथक्-पृथक् केन्द्रों के चारों ओर सर्पाकार (spiral shaped) गति करने लगे। इससे आकाशगंगाओं (milky ways or galaxies) का निर्माण हुआ। प्रत्येक गैलेक्सी में मौलिक तरल की छोटी-छोटी मात्राएँ परस्पर संयुक्त हो लघु पिण्डों के रूप में हो गयीं। गैलेक्सी के अक्ष की परिक्रमा करते हुए लघु भ्रूण पिण्ड धीरे-धीरे और द्रव्य को एकत्र करते व अपने पिण्ड में समाहित करते हुए (coalescing more mass) वृहत् पिण्ड के रूप में उभरे। सभी नक्षत्र सूर्य सहित एक साथ एक ही काल में उत्पन्न हुए। नक्षत्रों की रचना के समय तापमान में पर्याप्त कमी आयी तब परमाणु रचना सम्भव हुई अर्थात् नाभिक के साथ एक और कण इलेक्ट्रान संयुक्त हो गया। नक्षत्रों से ग्रहों की उत्पत्ति हुई व अनेक प्रकार के परमाणु बने। इनका वर्गीकरण सात वर्गों में प्रसिद्ध रसायन शास्त्री मेन्डलीफ (Mendeleeff) ने किया। इस प्रकार पदार्थ ने दूसरी अवस्था में प्रवेश किया। नक्षत्र, ग्रह आदि जब अपनी-अपनी कक्षा में पूर्ण रूप से स्थायित्व को प्राप्त हो गये तब वर्तमान जगत अस्तित्व में आया।

विज्ञान के अनुसार भी इस दृश्य जगत को सात वर्गों में विभाजित किया जा सकता है ये हैं – ठोस, द्रव, गैसीय अवस्था, विकिरण (सूर्यवत् लोकों से उद्भूत प्रकाश), सर्वव्यापी कास्मिक विकिरण जो बिग-बैंग काल का अवशेष है तथा जिसकी खोज अत्याधुनिक (१९६५ में वैज्ञानिक द्वय आरनो पेन्जियाज व राबर्ट विलसन ने की है) है, काल (time) तथा स्पेस (space)।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२. ऋग्वैदिक परिकल्पना–

महाग्नि काण्ड का ऋग्वैदिक प्रतीक हिरण्यगर्भः है इस सूक्त में बृहदग्नि काण्ड को मार्ताण्डम् कहा गया है। संस्कृत कोषों के अनुसार मार्ताण्डम् का अर्थ सूर्य है जो आदिकाल के संदर्भ में महासूर्य रूप बृहदग्नि पिण्ड का द्योतक है। सूक्त के पूर्वार्द्ध भाग में सूर्य के माध्यम से प्रज्वलित लोकों की उत्पत्ति के रहस्य का अनावरण किया गया है तथा पृथ्वी के माध्यम से ग्रहों की उत्पत्ति का विषय कहा गया है। सूक्त के उत्तरार्द्ध भाग में महाग्नि काण्ड (big bang) के अनन्तर (अदिति) प्रकृति में हुई अवस्थाओं का विवरण है। ऋग्वेद में प्रकृति शब्द नहीं है। भौतिक मूल आद्या अवस्था की द्योतक अदिति है। अदिति के पुत्रों की उत्पत्ति के रूपक से तीन भिन्न-भिन्न चरणों में, भिन्न-भिन्न कालों में उद्भूत हुई प्रकृति की तीन अवस्थाओं का विवरण है। ये तीन प्रारंभिक, मध्यम या अन्तरिम एवं अंतिम परिणाम हैं।

महाविस्फोट के समय अर्थात् विज्ञान प्रोक्त प्रमाणिक समय पर आठ देवों की उत्पत्ति अदिति से कही गयी है जो विज्ञान के पूर्वोक्त आठ कण-प्रतिकण हैं। इन्हें ही अन्यत्र आठ वसु कहा गया है। द्रव्यमण्डल का पर्याप्त प्रसार हो जाने पर अदिति से सात देवों की उत्पत्ति होना कहा गया है। यह चरण विज्ञान प्रोक्त परमाणु रचना का द्योतक है जिसमें मेन्डलीफ पीरियाडिक टेबिल (Mendeleeff periodic table) के अनुसार सप्तवर्गी अवस्था वाले परमाणु बनते हैं। सूक्त की अन्तिम ऋचा में कहा गया है कि मूल शक्ति माता अदिति प्रत्येक कल्प में सात पुत्रों (परिणामों) सहित आती है यह प्रतिज्ञा दृश्य जगत के सप्तवर्गी विभाजन की द्योतक है। ये अन्तिम सात देव हैं– पृथ्वी (ठोस अवस्था), जल (द्रव अवस्था), वायु (गैसीय अवस्था), तेज (सूर्य से प्रभूत प्रकाश), आकाश (विज्ञान प्रोक्त सर्वव्यापी कास्मिक विकिरण), दिक् (space), काल (सवत्सर age of universe)। इस प्रकार सूक्त प्रोक्त २२ देवों की उत्पत्ति के रूपक में सृष्ट्युत्पत्ति के विभिन्न चरणों में उद्भूत हुई द्रव्य की अवस्थाओं की उत्पत्ति का विज्ञान है। सूक्त के पूर्वार्द्ध भाग में सूर्यवत् प्रज्वलित लोकों व पृथ्वी आदि देवों की उत्पत्ति का विज्ञान है।

३. ऋग्वेद की भविष्यवाणी–

सूक्त की प्रथम ऋचा में ऋषियों ने सूक्त में भविष्य का ज्ञान देने की घोषणा की है सूक्त के उपसंहार में इस भविष्य के ज्ञान को प्रतिफलित होते देखा गया है अतः सूक्त की अन्तिम ऋचा के भाष्य में इस विषय की चर्चा का सूत्रपात किया

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जावेगा कि सूक्त में उद्घोषित भविष्यवाणी क्या है। ऋचा है– (क्र. १४७)

देवानां नु वयं जाना प्र वोचाम विपन्यया ।
उक्थेषु शस्यमानेषु यः पश्यादुत्तरे युगे ।।

भाष्य — वयं हम ऋषि गण **नु** निश्चय ही **देवानां जाना** देवों के जन्म का **विपन्यया** विशेष रूप से सराहना करने वाली वाणी द्वारा (**प्र वोचाम**, √वच् का लेट्) अच्छी प्रकार कहेंगे **यः** जिस **शस्यमानेषु** आदेशात्मक **उक्थेषु** वेदमन्त्रों के ज्ञान में **उत्तरे युगे** भविष्य में आने वाले युग का (**पश्यात्**, √पश् = देखना लेट्, लेट् का प्रयोग भविष्यत् की तरह होता है वै. व्या. पृ. ४६४-४७०) दर्शन होगा।

ऋचा में देवों की उत्पत्ति का विवरण देने की प्रतिज्ञा है अतः यह देखना है कि देव संज्ञा से व्याख्यात हुई सत्ता का सूक्त प्रोक्त स्वरूप क्या है। सूक्त की विषय वस्तु के नीर-क्षीर-विवेक में देवों के स्वरूप संबंधी रहस्य का अनावरण है। सूक्त में यह कहा गया है कि वैदिक ऋषियों का दर्शन काल के बंधन के परे है। वैदिक दर्शन में भूत का ही नहीं, भविष्य का भी ज्ञान सुरक्षित है। इस महत्वाकांक्षी दावे की दृढ़ोक्ति की परीक्षा उपसंहार में की जावेगी।

सूक्त में देवों की उत्पत्ति का विषय है अतः देवों के जन्म, शैशवकाल, युवावस्था आदि का विवरण आना स्वाभाविक है तदनुसार ऋचा में आये विवरण से ही देव की अवस्था का अनुमान लगाया जा सकता है और जैसी अवस्था हो वैसा ही स्वरूप ग्रहण करना चाहिये।

४. मूल तत्त्व का दहन–

सूक्त की दूसरी ऋचा में मूल तत्त्व के दहन की बात है, ऋचा है– (क्र. १४८)

ब्रह्मणस्पतिरेता सं कर्मारइवाधमत् ।
देवानां पूर्व्ये युगेऽसतः सदजायत ।।

भाष्य — एता सर्वनाम द्वि व. प्रथमा विभ. है। यह पूर्व मन्त्र में चर्चित देवों के लिये प्रयुक्त हुआ है। आगामी ऋचाओं में देवों के दो वर्गों का उल्लेख है इन दोनों वर्गों को समाविष्ट करने द्वि वचन का प्रयोग है।

ब्रह्मणः पतिः ब्रह्माण्ड के स्वामी ने **कर्मार इव** लोहार की तरह **एता** देवों के दो वर्गों (को उत्पन्न करने वाले मूल तत्त्व) को (**सं अधमत्**, धातु धम् = धौंकना लङ्. ल.) सम्यक् रूप से पकाया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवानां पूर्वे युगे देवों की उत्पत्ति के प्रारंभिक काल में **असत:** अव्यक्त कारण आप: से **सत्** व्यक्त कार्य रूप वृहती आप: **अजायत** उत्पन्न हुआ।

ऋचा में देवों के उत्पत्ति काल अर्थात् आदि सृष्टिकाल का वर्णन है। ऋषि ने देवों की उत्पत्ति का वृत्तांत विशेष रूप से कहने की प्रतिज्ञा की है उसी संदर्भ में मूल तत्त्व के पकाये जाने की बात है जो प्रारंभिक अग्निकाण्ड (big bang) का द्योतक है। इसी अग्निकाण्ड में पकाये गये मूल तत्त्व से देवों की उत्पत्ति होती है अत: देव प्रकृति की अवस्था विशेष का द्योतक है, सूक्त की आगामी ऋचा है– (क्र. १४९)

देवानां युगे प्रथमेऽसत: सदजायत ।
तदाशा अन्वजायन्त तदुत्तानपदस्परि ॥

भाष्य— देवानां युगे प्रथमे देवों की उत्पत्ति के काल में **असत:** अव्यक्त कारण से **सत्** व्यक्त कार्य रूप परिणाम **अजायत** उत्पन्न हुआ था। **तत:** उसी अव्यक्त कारण से (आशा:, अभि + √अश् अश्नुते स्वा. व्याप्त होना, प्रविष्ट होना से उपदिशा, इच्छा, वासना निरु. ६/१ विशेष) इच्छा वासना को धारण व वहन करने वाले मन, प्राण इन्द्रियादिक **अनु अजायन्त** क्रम में उत्पन्न हुए। **तत:** उसी अव्यक्त कारण से **परि** चारों ओर (**उत्-तान-पद:**, उत् = ऊपर, तन्= विस्तारे, उद्गतस्तानो विस्तारो अस्मात्, अमर कोश) ऊपर को विस्तार पाने वाले सूक्ष्म भूत (**अजायत**) उत्पन्न हुए।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि मन्त्र का पूर्वार्द्ध भाग पूर्व मन्त्र के उत्तरार्द्ध भाग की पुनरुक्ति है केवल पूर्व्ये शब्द का स्थान प्रथमे शब्द ने ले लिया है अत: यहाँ पुनरुक्ति के द्वारा ऋषि ध्यानाकर्षित करना चाहते हैं कि इस पुनरुक्त मन्त्र भाग में गम्भीर दर्शन है।

प्रथमे पूर्व्ये सापेक्षिक शब्द हैं जिसका अर्थ यह है कि तुलनात्मक अन्य घटना के उल्लेख के अभाव में सापेक्षिक घटना का काल निर्धारित नहीं किया जा सकता क्योंकि यह प्रश्न कि किससे पहले, किससे पूर्व अनुत्तरित रहता है। इससे व्यवहृत शब्द तुलनात्मक घटना निरपेक्ष हो जाता है अर्थात् यह तुलनात्मक घटना न होकर सृष्टि की सर्वप्रथम घटना का द्योतक है जिसके पूर्व कोई अन्य घटना घटित नहीं हुई। इस प्रकार ये शब्द सृष्टि रचना के प्रथम चरण के द्योतक हैं। घटना आदि-काल की है यह निश्चय हो जाने पर समस्त परिस्थितियों में एक अनोखापन आ जाता है तदनुसार दृष्टिकोण में व्यापक भेद हो जाता है। 'देवानाम् युगे प्रथमे' देवों की उत्पत्ति का प्रथम चरण है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनरुक्त पद में यह गम्भीर दर्शन है कि 'असत्' पद असत्ता, शून्य का वाचक नहीं है। ऋषियों ने 'ततः' पद का दो बार प्रयोग करके असत् को सत्तात्मक अव्यक्त पद निरूपित किया है। पूर्व ऋचा में ऋषि ने यह कहा है कि ईश्वर ने असत् को पकाकर सत् की उत्पत्ति की, अतः असत् पद प्रकृति की अवस्था विशेष, क्रियात्मक अवस्था 'अप्' आपः का वाचक है[1]।

५. मूल तत्त्व का दो वर्गों में विभाजन–

यथासमय मूल तत्त्व दो वर्गों में विभाजित हुआ। सूक्त की आगामी ऋचा है- (क्र. १५०)

भूर्जज्ञे उत्तानपदो भुव आशा अजायन्त ।
अदितेर्दक्षो अजायत दक्षाद्वदितिः परि: ॥

भाष्य — भूः प्रकृति के स्थिर भाग से उत्तानपदः ऊपर को विस्तार पाने वाले सूक्ष्मभूत (जज्ञे, √जन् लिट् ल.) उत्पन्न हुए। (भुवः=होना) प्रकृति के चंचल (प्राण तत्त्व रूपी) भाग से आशाः इच्छा वासना को वहन करने वाले मन इन्द्रियादिक अजायन्त उत्पन्न हुए। अदितेः मूल प्रकृति से दक्षः प्रारंभिक सामर्थ्य अजायत उत्पन्न हुई दक्षात् उसी प्रारंभिक कार्य शक्ति से परि अन्तिम परिणाम स्वरूप अदितिः अखण्ड पृथ्वी उत्पन्न हुई।

दक्ष शब्द ऋग्वेद में आद्य सामर्थ्य (initial creative capacity) के लिये प्रयुक्त हुआ है[2]। अदिति शब्द मूल शक्ति का प्रतीक है तथा अखण्ड अर्थ में सृष्टि प्रलय के क्रम में निरन्तर रहने के कारण अर्थात् प्रत्येक सृष्टिकाल में पुनः पुनः उद्भूत होने के कारण प्रवाह से अखण्ड मानी गयी है तदनुसार पृथ्वी के लिये अदिति शब्द का प्रयोग हुआ है[3]।

---

1 असद्वा इदमग्र आसीत्। ततो वै सदजायत। ब्रह्मानन्द वल्ली अनुवाक ७
आदिकाल में असत् वर्तमान था उससे ही सत् उत्पन्न हुआ। असत् विद्यमान था इस प्रतिज्ञा से असत् का सत्तात्मक तत्त्व होना कहा गया है।

2 यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञं। १०/१२१
जिस ईश्वर ने निश्चय ही अपनी महिमा से (आपः) प्रकृति को (दक्षं) प्रारंभिक कार्य शक्ति धारण किये सृष्टि यज्ञ आरम्भ करते देखा।
दक्षस्य वादिते जन्मनि.... । अदिति से दक्ष का जन्म होने पर। ऋ. १०/७४/५

3 अखण्ड अर्थ में अदिति शब्द का दूसरा प्रयोग प्रवाह से ध्रुव सत्ताओं के लिये हुआ है– द्यौ, अन्तरिक्ष, माता, पिता, पुत्र अदिति है। ऋ. १/८९/१०
इसी अर्थ में पृथ्वी के लिये हुआ है– ऋ. १/२४
को नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च। १
स नो मह्या अदितये पुनर्दात् .... । २

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकास के क्षेत्र में आकर प्रकृति दो भागों में विभक्त हो जाती है। प्रकृति के रसायनिक भाग से भौतिक ठोस, द्रव, गैस आदि द्रव्य उत्पन्न होते हैं तथा प्रकृति के बायोलाजिकल भाग से वनस्पति व प्राणि जगत की उत्पत्ति होती है। ऋचा में भूः अंश से सूक्ष्मभूत तथा भुवः अंश से वनस्पति व प्राणि जगत का उत्पन्न होना कहा गया है। सूक्ष्मभूत ही विस्तार पाकर स्थूलभूतों में परिणत होते हैं। वैदिक साहित्य में भूः, भुवः, स्वः महा व्याहृतियें कही गयी हैं (कोश में इन्हें रहस्यमयी कहा गया है) अतः इनमें अन्तर्हित भाव वैदिक दर्शन उपनिषद् विद्या से जाना जा सकता है। प्रश्नोपनिषद् में प्रकृति के दो भागों को रयि तथा प्राण कहा गया है। भूः, भुवः का अर्थ प्रतिरोपित नहीं है वरन् इसकी साक्ष्य ऋचाओं में वर्तमान है। यथा– (क्र. १५१)

यो अप्स्वा शुचिना दैव्येन ऋतावाजस्र उर्विया विभाति ।
वया इदन्या भुवनान्यस्य प्र जायन्ते वीरुधश्च प्रजाभिः ॥

भाष्य — शुचिना पवित्र (दैव्येन, तृ. विभ.) ईश्वरीय प्रेरणा से यः जो (ऋतावा, ऋतावन् = नियमित की प्र. विभ. वै. व्या.) स्वाभाविक नियमों में नियमित अप्सु क्रियात्मक मूल तत्त्वों में अजस्र निरन्तर (उर्विया, क्रि. विशे. वै. व्या. पृ. ६३९) दूर तक, व्यापक दिक् में आ विभाति स्वाभाविक क्रम में प्रकाशित होता है अस्य उसकी भुवनानि लोकादि – रसायन भाग का प्रतिनिधित्व करने वाले इन् अन्या वयाः निश्चय ही अन्य शाखाएँ हैं (वीरुध च प्रजाभिः, साहचर्य के अर्थ में तृ. विभ. पृ. ४०१ वै. व्या.) वनस्पति के साथ प्राणि वर्ग भी (अनुवृत्ति से अन्या वयाः) अन्य प्राणरूप शाखाओं से प्र विविध रूपों में जायन्ते उत्पन्न होते हैं।

परिणामी मूल तत्त्व के एक भाग से भौतिक रासायनिक जगत तथा दूसरे बायोलाजीकल भाग से वनस्पति व प्राण तत्त्व उत्पन्न हुए। ऋग्वेद ने इन्हें अन्यत्र सोम, पूषा प्रतीकों से संबोधित किया है इस प्रकरण पर पृथक् विचार किया गया है (ग्रन्थ भाग १)।

६. नक्षत्र, ग्रहों की उत्पत्ति –

सूक्त की आगामी ऋचा में ग्रहों की उत्पत्ति संबंधी विज्ञान है। ऋचा है– (क्र. १५२)

अदितिर्ह्यजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव ।
तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धवः ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाष्य — दक्ष हे प्रारंभिक सामर्थ्य के अवशेष रूप सूर्य तुझसे **हि** निश्चय ही **या** जो **(तव दुहिता, √दुह्** से) तेरी शक्ति का दोहन करने वाली तुझ पर निर्भर पुत्री की तरह **अदितिः** अखण्ड पृथ्वी **(अजनिष्ट, √जन्** इप् लुङ्. धातु वै. व्या.) उत्पन्न हुई **तां अनु** उसी अनुरूपता से, तुल्यता से **भद्रा** कल्याणकारी **अमृत ध्रुव बन्धवः** बन्धन में (आकर्षण में) बंधे हुए **देवाः** आकाशीय पिण्डों, ग्रह समूहों की **अजायन्त** उत्पत्ति हुई।

ऋचा में यह कहा गया है कि सूर्य से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई उसी तुल्यता से गैलेक्सियों में प्रज्वलित पिण्डों से ग्रह उद्भूत हुए। आगामी ऋचा के पूर्वार्द्ध भाग में नक्षत्र की उत्पत्ति संबंधी विचार है तथा उत्तरार्द्ध भाग में पृथ्वी की उत्पत्ति कब होती है इस विषय पर प्रकाश डाला गया है। ऋचा है– (क्र. १५३)

यद्देवा अदः सलिले सुसंरब्धा अतिष्ठत।
अत्रा वो नृत्यतामिव तीव्रो रेणुरपायत॥

भाष्य — यत् जब **देवाः** आकाशीय पिण्ड **सलिले** प्रारंभिक द्रव्य (कास्मिक मेटर) पर **अदः** पुष्ट हो **सु** उत्कृष्ट प्रकार से **सं** सम्यक्, एक जैसे ही परस्पर **(रब्धाः, √रभ्** = पकड़ना, क्तान्त रब्ध) जकड़े, आकर्षित हुए **(अप आयत, √इ** = जाना, लड्. ल. प्र. पु. बहु व.) उभरकर स्थित हुए तब **अत्र** यहाँ **नृत्यतां इव** नाचते हुए सी **वः** आपकी **तीव्रः रेणुः** वेगवान पृथ्वी (पूर्व मन्त्रानुवृत्ति से सूर्य से पृथक् हो अपनी कक्षा में, **अतिष्ठत**) स्थित हुई।

ऋचा के पूर्व पद में नक्षत्र की रचना संबंधी विज्ञान है उसमें यह बताया गया है कि आकाश में फैले हुए **सलिले** प्रारंभिक द्रव्य (कास्मिक मेटर) से मात्रा (mass) एकत्र कर **अदः** पुष्ट होते हुए **देवाः** छोटे-छोटे पिण्ड कालान्तर में विशाल आकार धारणकर नक्षत्रों (प्रज्वलित पिण्डों) के रूप में उभरे जो परस्पर **बन्धवः** आकर्षण में बंधे हुए होने से सन्तुलन में स्थित हुए। यह नक्षत्रों की उत्पत्ति संबंधी परिकल्पना है। पृथ्वी की उत्पत्ति बाद की है दूसरे चरण में होती है जब नक्षत्र पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित हो जाते हैं तब पृथ्वी को (अर्थात् ग्रह की) उत्पत्ति सूर्य (नक्षत्र) से होती है। ऋचोक्त पद **तीव्रः रेणुः** वेगवान पिण्ड का स्थित होना कक्षा (orbit) में स्थायित्व का द्योतक है। सलिलं शब्द क्रियात्मक तत्त्व आपः का पर्यायवाची[1] है। **सलति गच्छति निम्नम्**। जो पानी की तरह

---

1 आपो ह वा इदमग्र सलिलमेवास। शत. ब्रा. (कां. ११/अ. १)
आदिकाल में निश्चय ही यह सलिल आपः ही था।
तम आसीत्तमसा गूलहमग्रऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्। ऋ. १०/१२९/३
आदि सृष्टिकाल में अंधकार की तरह रहस्यमयो अंधकार था अर्थात् वह मात्र प्रकाश का अभाव न था। वह सम्पूर्ण आकाश को छाये अविज्ञेय रूप में सलिल था। स्पष्ट है कि पानो किसी रूप में अप्रकेतं नहीं है अतः यह सलिलं पद मूल अव्यक्त तत्त्व का वाचक है, पानी का वाचक नहीं है।
तं घोरात् क्रूरात् सलिलात् सरसः उदानिन्युः। गो. ब्रा. पू. भा. २/१८

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीचे की ओर जाता है अर्थात् सूक्ष्म अवस्था रूपी उच्च स्थान से स्थूल अवस्था रूपी निम्न स्थान की ओर प्रवाहित होता है।

ऋचा में 'सुसंरब्धा' पद से देव का अर्थ पिण्ड है तथा अदः पद से अविकसित क्योंकि अविकसित ही पुष्ट होने की प्रक्रिया में हो सकता है जैसे मानव की अवस्थाएँ जन्म, बाल्यावस्था, युवा व वृद्धावस्था होती हैं तथा किस समय कौन-सी अवस्था है यह विवरण से ज्ञात होता है, देह की आशातीत वृद्धि से बाल्यकाल, सन्तुलित वृद्धि से युवा व क्षय से वृद्धावस्था का अनुमान होता है वैसे ही अवस्थाएँ ज्योतिर्पिण्डों की होती हैं अतः यहाँ अदः पद अविकसित भ्रूण पिण्डावस्था का द्योतक है। यह ध्यान देने योग्य है कि सूक्त में ऋषि ने देवों के जन्म का वृत्तान्त कहने की प्रतिज्ञा की है। जन्म के बाद बाल्यावस्था आती है पिण्ड की बाल्यावस्था का अर्थ है पिण्ड का लघु और विकासरत होना। जब मनुष्य का जन्म होता है तब यह कहा जाता है कि बालक का जन्म हुआ इसी प्रकार जन्मने वाले और विकासरत देव को भ्रूणपिण्ड कहना ही उपयुक्त है।

सूक्त की आगामी ऋचा में सूर्य के माध्यम से नक्षत्रों की उत्पत्ति का विज्ञान कहा गया है, ऋचा है– (क्र. १५४)

यद्देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत।
अत्रा समुद्र आ गूलहमा सूर्यमजभर्तन॥

भाष्य — यत देवाः जब भ्रूण पिण्डों ने (यतयः, √यत्=खींचना) विस्तार पाकर यथा जिस प्रकार भुवनानि लोकों को (अपिन्वत, √पिन्व् = स्थूल करना, मोटा बनना, लङ्. ल. वै. व्या.) पुष्ट किया, स्थूल किया, अत्र तब यहाँ समुद्रे विभिन्न चरणों में विकासरत महान् विस्तार वाले सूक्ष्मभूतों से परिपूर्ण आकाश में आ स्वाभाविक रूप में (गूढम्, √गुह्=छिपना का क्तान्त गूढ़) अप्रकट, छोटा, भ्रूण होने से छिपे हुए से सूर्यम् सूर्य को देवों ने, भ्रूण पिण्डों ने (आ अजभर्तन, √भृ = धारण करना का लिट् प्रतिरूपक) स्वाभाविक ढंग से धारण किया, प्रकट किया।

ऋचा में सूर्य के माध्यम से नक्षत्रों की उत्पत्ति की बात कही गयी है सभी नक्षत्र एक ही काल में प्रायः एक-सी प्रक्रिया से उत्पन्न होते हैं। विचाराधीन ऋचा का पूर्वार्द्ध भाग तथा पूर्व ऋचा का पूर्वार्द्ध भाग नक्षत्रों की उत्पत्ति की प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हैं। पूर्व ऋचा के 'अदः' पद में तथा इस ऋचा के 'अपिन्वत' पद में एक ही भाव है और वह यह है कि लघु भ्रूण पिण्ड की रचना के अनन्तर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भ्रूण पिण्ड स्वयं समुद्रे सूक्ष्मभूत के सागर में गति करते हुए अद: सलिले सूक्ष्म तत्त्व को आकर्षित करते खींचते हुए अपिन्वत अपने पिण्ड में सम्मिलित करते हुए क्रमश: आकार की वृद्धि करते हुए यथा भुवनानि यतय: जिस प्रकार लोकों के रूप में प्रशस्त हुए उसी प्रकार गूलहम् अपने अप्रकट भ्रूणरूप से सूर्यमजभर्तन सूर्य धारण किया गया। (The rolling cosmic mass forms a small compact body which coalescing with more mass in the course of its motion through matter ultimately develops into a heavenly body, a star; This Vedic version of the process of formation of stars is almost identical to the scientific version).

समुद्र शब्द वेदों में सूक्ष्म तत्त्व से भरे आकाश अथवा ज्योतिर्पिण्डों से परिपूर्ण आकाश के लिये प्रयुक्त होता है[1]। निरुक्ताचार्य ने भी कहा है कि अन्तरिक्ष के १६ नामों में समुद्र भी एक है जिसका भ्रम पार्थिव समुद्र से हो जाता है (निरु.२/३)।

७. सूक्ष्म स्थूलभूतों की उत्पत्ति–

आगामी दो ऋचाओं में पदार्थ की अवस्थाओं का विवरण है। सृष्टि उत्पत्ति के क्रम में सर्वप्रथम मूल भौतिक सत्ता से प्राथमिक आठ परिणाम बनते हैं ये परिणाम अग्निकाण्ड के समय उत्पन्न होते हैं इन्हें वैदिक साहित्य में आठ वसु भी कहा गया है। अग्निकाण्ड के समय की अवस्था का नाम ऋग्वेद में (१०/१२१) बृहती: आप: पाया जाता है। यह विज्ञान प्रोक्त अष्टवर्गी कण-प्रतिकण के समग्र रूप प्लाज्मा अवस्था की द्योतक है जो विज्ञान प्रोक्त परमाणु तथा परमाणु की नाभि (nucleus) रचना की पूर्ववर्ती मौलिक कणों की अवस्था है। इस प्रारम्भिक तत्त्व का पर्याप्त प्रसार हो जाने पर तापमान गिर जाता है जिससे मौलिक तत्त्वों (कण-प्रतिकण) का परस्पर संयुक्त होना सम्भव होता है तथा परमाणु रचना होती है इसे ऋचा में सात देवों की उत्पत्ति कहा गया है। ये सात कहे गये देव परमाणु की सात अवस्थाओं के द्योतक हैं तथा विज्ञान प्रोक्त परमाणु के सात वर्ग (mendeleeff seven periods in the periodic table) हैं, ऋचा है– (क्र. १५५)

---

1 अयं वै समुद्रो योयं वायु पवत, एतस्मात वै समुद्रात् सर्वे देवा: सर्वाणि भूतानि च समुद्रवन्ति। शत. ब्रा. (१४/२/२)
समुद्र वही है जो वायु की तरह (व्यापक) व प्रवाहशील हो। इस कारण गतिशील ज्योतिर्पिण्डों का विस्तृत आकाश तथा सूक्ष्म स्थूलभूतों से भरा आकाश समुद्र कहलाता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्व१स्परि ।
देवाँ उप प्रैत्सप्तभिः परा मार्ताण्डमास्यत् ॥

भाष्य— अदितेः तन्वः समष्टि मूल तत्त्व रूपी अखण्ड आद्या शक्ति प्रकृति के मूल स्वरूप से अष्टौ पुत्रासः आठ पुत्ररूप प्रारम्भिक परिणाम ये जो (परि जाताः, परि = चारों ओर) समग्र तत्त्व में उत्पन्न हुए। (मार्ताण्डम् = सूर्य कोश, यहाँ महासूर्य क्योंकि घटना आदिकाल की है) मारक पिण्ड, मारा गया पिण्ड[1] अर्थात् आदिकाल के प्रज्वलित महापिण्ड (वैज्ञानिक सुपरनोभा) को परा दूर तक (आस्यत्, √अस् = फेंकना की लङ्. ल.) फेंका था अर्थात् द्रव्यमण्डल का पर्याप्त प्रसार हो चुका था तब वह प्रसारित द्रव्य सप्तभिः सात (अवस्थाओं) के द्वारा देवान् देवों को उप प्रसार की निकटता से प्र प्रकर्ष रूप से, बहुतायत से ऐत् लाया।

पिण्ड के प्रसार के पूर्व प्रकृति अष्टवर्गी थी यह काल आठ प्रारम्भिक विज्ञान प्रोक्त कण-प्रतिकण की सत्ता का द्योतक है जो वैदिक साहित्य में आठ वसु[2] के नाम से प्रसिद्ध हुआ। महाग्नि पिण्ड के पर्याप्त प्रसार हो जाने पर द्रव्य की आगामी अवस्था उद्भूत हुई जिसमें सप्तवर्गी देव उत्पन्न हुए। इस अवस्था को ऋग्वेद में अन्यत्र[3] सप्त अर्धगर्भाः कहा गया है। अर्धगर्भ का अर्थ अपरिपक्व अवस्था या भ्रूणावस्था है। परमाणु अवस्था भी विज्ञान में अन्तरिम अवस्था (nascent or ionic state) कहलाती है इस प्रकार अर्धगर्भ तथा आयोनिक अवस्था में लगभग एक-सा ही भाव है। नाभिक अवस्था तथा अणु अवस्था के मध्य की कड़ी परमाणु अवस्था है यह अन्तरिम अवस्था है जो अल्पायु है। स्थायी अवस्था (stable state) अणु अवस्था (molecular state) है। इस प्रकार ऋग्वेद की सप्त अर्धगर्भाः अवस्था विज्ञान की सप्त पीरियाडिक परमाणु अवस्था है जो सर्वमान्य मेन्डलीफ वर्गीकरण है।

दर्शन में परमाणु अवस्था को तन्मात्रा कहा गया है जो तत्-मात्रा का समास

---

1 मार्तण्डः – मृतश्चासौ अण्डश्च तत्र भवः इति अण्। हल. को.

2 आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलोऽनलः।
प्रत्यूषश्च प्रभाश्च वसवोऽष्टौ कीर्तिता ॥ मत्स्य पु.
(प्रति ऊषः) प्रत्येक सृष्टि के आदिकाल में (ध्रुवः आपः) शाश्वत मूल क्रियात्मक तत्त्व (च सोमः) तथा विकिरण का अग्निमय मण्डलाकार वायु रूपी पिण्ड था तथा आठ प्रदीप्त वसुओं का होना प्रसिद्ध है।

3 सप्तार्ध गर्भा भुवनस्य रेतो। भ्रूणावस्था में सप्तवर्गी परिणाम भौतिक जगत सत्ता के बीजरूप हैं। ऋ. १/१६४/३६

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। द्रव्य (element of science) चाहे ठोस हो, द्रव या गैस, उसकी तन्मात्रा उस द्रव्य की वह छोटी से छोटी मात्रा है जिसमें द्रव्य का सूक्ष्म स्वरूप बना रहे यह सूक्ष्माति-सूक्ष्म भाग परमाणु है। अतः तन्मात्रा परमाणु का पर्याय है।

८. ऋग्वेद की दूरगामी भविष्यवाणी–

सूक्त का उपसंहार करने वाली इस अन्तिम ऋचा में ऋषियों ने सृष्टि उत्पत्ति-प्रलय के अनादि अनन्त चक्र में पुनः पुनः उत्पन्न होने वाले इस जगत को प्रवाह रूप से सनातन कहा है तथा इस दृश्य जगत को सात वर्गों में वर्गीकृत कर सप्त चरम परिणाम (final effects) वाला कहा है। ये सूक्त के अदिति के सात अन्तिम पुत्र अन्तिम देव कहे गये हैं, ऋचा है– (क्र. १५६)

सप्तभिः पुत्रैरदितिरुप प्रैत्पूर्व्यं युगम्।
प्रजायै मृत्यवे त्वत्पुनर्मार्ताण्डमाभरत्॥

भाष्य — पूर्व्यम् युगं पूर्व कल्प में, पूर्व सृष्टिकाल में अदितिः मूल मातृ शक्ति सप्तभिः पुत्रैः सात अन्तिम परिणामों द्वारा उप प्र ऐत् प्रकर्षता से प्रकट हुई थी। (प्र जायै, मृत्यवे, चतु. प्रतिरूपक तुम. क्र. पृ. २५४-५५) विविध उत्पत्ति के लिये व विनाश के लिये त्वत् तुझसे ही, हे अदिते, हे मूल शक्ते मार्ताण्डम् महासूर्य रूप प्रज्वलित (सुपरनोभा) पिण्ड पुनः फिर से, बार-बार आ भरत् स्वाभाविक रूप से (कल्पारंभ में) धारण किया जाता है।

विज्ञान ने रेडियो धर्मिता (radio activity) के आधार पर परमाणु की आयु निर्धारित की है। इसके पूर्व विज्ञान यह कहने की स्थिति में भी नहीं था कि यह जगत कभी मूल भौतिक अवस्था से क्रमशः उद्भूत हुआ अर्थात् परमाणु कभी उत्पन्न हुआ तथा यह निश्चित रूप से उसी मूल अवस्था को पुनः प्राप्त होगा। ताप गति विज्ञान के दूसरे नियम (second law of thermodynamics) के अनुसार द्रव्य की विकिरण ऊर्जा में परिवर्तित मात्रा दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है अतः यह जगत भविष्य में ऊर्जा में ही परिवर्तित हो समाप्त हो जावेगा।

अब विज्ञान यह कहने की स्थिति में है कि यह विश्व मूल अवस्था से महा-विस्फोट (big bang) के शून्यकाल से क्रमशः विकसित हुआ तथा यह कालान्तर में विकिरण मृत्यु से अन्त को प्राप्त होगा किन्तु अभी भी विज्ञान यह नहीं कह सकता कि इस सृष्टि के पूर्व भूतकाल में कोई पूर्व सृष्टि थी या भविष्य में भी ऐसी ही सृष्टि पुनः होगी, पर सूक्त के ऋषि कह रहे हैं कि प्रत्येक कल्पारंभ में इसी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार मार्ताण्डम् से, महासूर्य से सृष्ट्यारंभ होता है तथा जगत का यह उत्पत्ति-विनाश क्रम अनादि अनन्त है तथा प्रजायै मृत्यवे उत्पत्ति-विनाश के इस अनवरत क्रम को धारण करने के लिये प्रत्येक सर्ग में इस महाविस्फोट से पुनः फिर से नवीन सृष्टि होती है। भविष्य के इस ज्ञान को देने की प्रतिज्ञा सूक्त की प्रथम ऋचा में थी। ऋग्वेद से प्रभूत हुई सृष्टि-प्रलय के सनातन क्रम की विचारधारा ने समस्त वैदिक साहित्य में सम्यक् स्थान पाया है। वेद का यह ज्ञान काल के बन्धन के परे त्रिकाल सत्य संजोये है इस सत्य को अथर्ववेद ने इन शब्दों में व्यक्त किया है-

भूतं ह भव्ये आहितं भव्यं भूते प्रतिष्ठितं।

होने वाले भविष्य पर भूत आश्रित है, भूतकाल में जो कुछ हो गया है उस पर भविष्य आश्रित है वैसा ही भविष्य भी होगा। जगत की उत्पत्ति की घटना आकस्मिक घटना नहीं है अपितु त्रिकाल चक्र में नियोजित स्थायी योजना का अंशमात्र है। भूत, वर्तमान, भविष्य परस्पर अविच्छिन्न घटना चक्र में बंधे हुए हैं।

द्रव्य गतिमान है परिवर्तन की निरन्तरता एक सत्य है उत्पत्ति विनाश सापेक्ष है निरपेक्ष (absolute) नहीं। ऋग्वेद के न्याय से (विज्ञान का) ऊर्जा संरक्षण का सिद्धान्त एक स्वयंसिद्ध प्रतिज्ञा (axiom) है और सृष्टि उत्पत्ति लय प्रकृति की कलाएँ हैं जो ईश्वरीय सकाश से यथासमय फलीभूत होते हैं।



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय १३

वैदिक प्रतीक मरुत के स्वरूप की विवेचना

वेदों में मरुत अनेक सूक्तों के देवता हैं अर्थात् अनेक सूक्त मरुतों की प्रशंसा में लिखे गये हैं। इस अध्याय में मरुतों के प्राकृतिक स्वरूप पर प्रकाश डाला जायगा।

१. वैज्ञानिक परिकल्पना –

विज्ञान के अनुसार जगत में चार प्रकार के बल कार्यरत हैं। इनमें से दो बलों का (range) प्रभाव क्षेत्र असीम है अर्थात् इनका क्षेत्र अनन्त दूरी तक व्यापक है पर अन्य दो बलों का क्षेत्र सीमित है अर्थात् यदि दूरी निर्धारित दूरी से अधिक हो तो इन दो बलों का प्रभाव काम नहीं करता। असीमित क्षेत्र में कार्य करने वाले दो बलों में से एक बल गुरुत्वाकर्षण बल है इस बल का कारण आदिकाल के अवशेष विकिरण की विद्यमानता है। असीमित क्षेत्र में काम करने वाला दूसरा बल (electrical) विद्युत संबंधी है इसमें धनात्मक और ऋणात्मक विद्युत बल काम करते हैं। किन्तु जब एक दीर्घ वर्तुल (sphere) का पृष्ठ लिया जाता है तो धनात्मक विद्युत बल और ऋणात्मक विद्युत बल परस्पर क्रिया करके एक सन्तुलन की स्थिति उत्पन्न करते हैं। क्योंकि मरुत बल असीमित क्षेत्र से संबंधित है अतएव यहाँ सीमित क्षेत्र वाले बलों के परिचय की आवश्यकता नहीं है।

२. मरुत शब्द की व्युत्पत्ति --

मरुत शक्ति के विषय में विचार करने के पूर्व मरुत शब्द के निर्वचन पर विचार करना उपादेय होगा। मरुत शब्द √मि + √रुच् धातुओं से बना है जिसका अर्थ है मापी हुई चमक से युक्त शक्ति अथवा वह शक्ति जो चमक के आधार पर मापी जा सके (निरु. ११/१३)। इसका तात्पर्य यह है कि माप के अनुसार विद्युत को धारण करने वाले कणों के प्रवाह से मरुत शक्ति उद्भूत होती है।

३. मरुत का स्वरूप –

ऋचाओं की व्याख्या से विदित होता है कि मरुत शक्ति न केवल विद्युत बल का प्रतिनिधित्व करती है वरन् यह गुरुत्वाकर्षण बल का भी प्रतिनिधित्व करती है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्युत मरुत असीमित क्षेत्र में बल का कार्य करने वाली अन्तरिक्षीय शक्ति है चाहे वह बल विद्युत संबंधी हो या गुरुत्वाकर्षण संबंधी। वेद के इस सिद्धान्त में दोनों प्रकार के बलों के स्रोत का एक ही आधार होने का विचार निहित है ऐसा प्रतीत होता है। विज्ञान आज (unified field theory) सभी बलों के एकत्व (एक्यं) की बात कर रही है। वेद में विज्ञान प्रोक्त दो बलों को एक ही वर्ग के अन्तर्गत रखा गया है।

अब आगामी अनुच्छेदों में मरुत शक्ति के लक्षणों की विवेचना की जावेगी। अनेक ऋचाओं में मरुतों का वर्णन मानवों की तरह हुआ है और उन्हें रथों पर सवार अस्त्र-शस्त्र लिये जाता हुआ कहा गया है किन्तु ये सब रूपक प्रयोग हैं। प्रत्युत मरुतों के स्वरूप का निर्धारण उन ऋचाओं से होता है जिनमें उनका भौतिक स्वरूप उभरकर सामने आया है और इन्हीं ऋचाओं के आधार पर रथों अस्त्रों आदि रूपकों में निहित भाव को समझना चाहिये। मरुतों के वर्णन में यह विशेषता है कि इन्हें बल से और गुरुत्वाकर्षण तथा विद्युत से संबंधित कहा गया है यह विशेषता किसी अन्य देवता के विवरण में नहीं है। इससे मरुतों के स्वरूप का निर्धारण होता है।

४. मरुत व्यापक बल का कार्य करते हैं–

ऋग्वेद मण्डल ५ के सूक्तों से विषय पर प्रकाश डाला जाता है, सूक्त ५२ की दूसरी ऋचा है– (क्र. १५७)

ते हि स्थिरस्य शवसः सखायः सन्ति धृष्णुया।
ते यामन्ना धृषद्विनस्त्मना पान्ति शश्वतः॥

भाष्य — ते हि धृष्णुया वे ही साहसी शवसः बल के स्थिरस्य सखायः स्थायी सहायक सन्ति हैं। ते वे यामन् प्रयाणकाल के समय धृषद्विनः घर्षण-कारी बल से युक्त शश्वतः सदैव त्मना अपने बल की पान्ति रक्षा करते हैं।

मरुत गण बल के स्थायी सहायक हैं अर्थात् मरुत शक्ति बल (force) से संबंधित है। मरुत अपने बल की सदैव रक्षा करते हैं, मरुत शक्ति बल का निरन्तर संरक्षण करती है।

सूक्त की आगामी ऋचा है– (क्र. १५८)

ते स्पन्द्रासो नोक्षणोऽति ष्कन्दन्ति शर्वरीः।
मरुतामधा महो दिवि क्षमा च मन्महे॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाष्य — **ते** वे (**स्पन्द्रासः**, स्वा. आ. स्पन्दते = काँपना) कंपन करने वाले (**उक्षणः**, √उक्ष् = वक्ष् = बढ़ना) बढ़ने वाले **शर्वरीः** रात्रिवत् अज्ञात, अदृश्यमान **महः दिवि क्षमा च** महान् द्युलोक और पृथ्वी पर (**अति स्कन्दन्ति**, √स्कन्द् = कूदना, वै. व्या.) अतिशय कंपन करते हैं **अध अतः मरुताम्** मरुतों के बल का **मन्महे** हम मनन करें।

मरुत विस्तृत द्युलोक और पृथ्वी पर अतिशय कंपन (vibrations) उत्पन्न करने वाली शक्ति है इस कंपन से पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है। मरुतों का क्षेत्र असीमित (द्यु-लोक) नक्षत्रों का विस्तृत आकाश है।

इसी सूक्त की ९ वीं ऋचा है– (क्र. १५९)

उत स्म ते परुष्णयामूर्णा वसत शुन्ध्यवः।
उत पव्या रथानामद्रिं भिन्दन्त्योजसा॥

भाष्य — **उत स्म** और **ते** वे **शुन्ध्यवः** शुद्ध हुए **परुष्णयाम् ऊर्णाः** कठोर आवरण (**वसत**, √वस् लुङ्. लोट्) पहनें। **उत** और **रथानाम् पव्या** रथों के चक्र के **ओजसा** बल से **अद्रिम्** पर्वत को **भिन्दन्ति** भेदन कर डालते हैं।

मरुतों का आवरण कठोर है इनकी बल रेखाएँ चक्राकार (in great circles) गति करती हैं।

इसी मण्डल के सूक्त ५३ के मन्त्रों से इसी विषय पर प्रकाश डाला जाता है। सूक्त की ८ वीं ऋचा में मरुतों के व्यापक कार्य क्षेत्र का उल्लेख है, ऋचा है– (क्र. १६०)

आ यात मरुतो दिव अन्तरिक्षादमादुत। माव स्थात परावतः॥

भाष्य — हे **मरुतः** मरुतों **दिवः** द्युलोक से **उत** और **अमात् अन्तरिक्षात्** असीम अन्तरिक्ष से **आ यात** आप लोग यहाँ आओ। **परावतः मा अव स्थात्** दूर के ही क्षेत्र में न रहो।

ऋचा में कहा गया है कि मरुतों का क्षेत्र असीम है अनन्त आकाश है। आगामी ऋचा है– (क्र. १६०)

मा वो रसानितभा कुभा क्रुमुर्मा वः सिन्धुर्नि रीरमत्।
मा वः परि ष्ठात् सरयुः पुरीषिण्यस्मे इत् सुम्नमस्तु॥

भाष्य— **अन्-इत्-भा** तेजहीन **कुभा** मलिन **रसा** प्रवाह **वः** आपको **मा नि**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रीरमत् आनन्दित न करे। सिन्धुः क्रमुः मा वः रीरमत् समुद्र की तरंग आपको आनन्दित न करे। सरयुः मा वः परि स्थात् वायु प्रवाह आपको न रोक सके। वः आपकी पुर्-ईषिणी पुर् = ब्रह्माण्ड का स्वामित्व करने वाली सुम्नम् उत्तम मति अस्मे इत् हमें ही अस्तु प्राप्त हो।

मरुत शक्ति तेजहीन प्रवाह से संबंधित नहीं है। मरुत शक्ति समुद्र के प्रवाह से या वायु के प्रवाह से भी संबंधित नहीं है वह ब्रह्माण्ड का स्वामित्व करने वाली व्यापक शक्ति है।

इसी सूक्त की ११ वीं ऋचा है– (क्र. १६१)

शर्धं शर्धं व एषां व्रातं व्रातं गणङ्गणं। अनु क्रामेम धीतिभिः॥

भाष्य — एषां वः इन आपके शर्धं शर्धं प्रत्येक बल-बल के साथ व्रातं व्रातं व्रतधारी समूह-समूह के साथ गणं गणं वर्ग-वर्ग के साथ धीतिभिः विचारों के साथ अनु क्रामेम अनुकरण करें।

मरुत शक्ति अनेक प्रकार के बल के साथ संबंधित है मरुत के इन वर्गों का बुद्धि से मनन करें।

सूक्त ५५ की ७ वीं ऋचा है– (क्र. १६२)

न पर्वता न नद्यो वरन्त वो यत्राचिध्वं मरुतो गच्छतेदु तत्।
उत द्यावा पृथिवी याथना परि शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥

भाष्य — हे मरुतः मरुतों वः पर्वताः नः आपके मार्ग को न पर्वत न नद्यः न नदियाँ (वरन्त, √वृ लुङ्. लोट्) रोक सके यत्र अचिध्वं जहाँ (जाना) चाहा है तत् इत् उ वहाँ ही गच्छथ जाते हो। उत क्योंकि आप लोग द्यावा पृथिवी परि याथन द्युलोक और पृथ्वी पर चारों ओर जाते हो। शुभं याताम् शुभ कार्य के लिये जाते हुए आपके रथाः रथ (अनु अवृत्सत, √वृत् लुङ्. स्) अनुकूलता से मुड़े थे।

मरुतों का बल अखण्ड है मरुतों के मार्ग का अवरोध पर्वत नहीं कर सकते। मरुतों की बल रेखायें पर्वतों को पार कर निकल जाती है। मरुत शक्ति का क्षेत्र द्युलोक पृथ्वी पर सब ओर फैला है।

५. मरुत गुरुत्वाकर्षण बल का नियंत्रण करते हैं–

मरुत शक्ति लोकों को अपनी-अपनी कक्षा में चलाने के लिये गुरुत्वाकर्षण

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बल का नियंत्रण करती है ये विचार ऋचाओं में दिये हुए हैं उन्हें यहाँ प्रकाश में लाया जाता है। सूक्त ५४ की ६ वीं ऋचा है– (क्र. १६३)

प्रवत्वतीयं पृथिवी मरुद्भ्यः प्रवत्वती द्यौर्भवति प्रयद्भ्यः।
प्रवत्वतीः पथ्या अन्तरिक्ष्याः प्रवत्वन्तः पर्वता जीरदानवः॥

भाष्य — मरुद्भ्यः मरुतों से इयं पृथिवी यह पृथ्वी प्रवत्-वती अपने मार्ग पर जाने वाली हुई। प्रयद्भ्यः यत्नशील मरुतों से द्यौः प्रकाशित लोक प्रवत्-वती अपनी-अपनी कक्षा में गति करने वाले हुए। अन्तरिक्ष्याः अन्तरिक्ष के प्रवत्वतीः गमनशील लोकों के पथ्याः मार्ग सुगम बने। जीरदानवः शीघ्र देने वाले पर्वताः आकाशस्थ द्रव्य समूह प्रवत्वन्तः सरल मार्ग पर चलने वाले हुए।

इस ऋचा में मरुतों का गुरुत्वाकर्षण संबंधी लक्षण स्पष्ट रूप से कहा गया है कि मरुतों के प्रयत्न से लोक अपनी-अपनी दीर्घाओं पर गमनशील हुए। अतः मरुत गुरुत्वाकर्षण बल संबंधी व्यापक शक्ति है जो लोकों के सन्तुलन को बनाती और नियंत्रित करती है।

इसी प्रकार सूक्त ५६ की ऋचाओं में मरुतों की गुरुत्वाकर्षण बल संचालन करने संबंधी भूमिका का स्पष्ट उल्लेख है, सूक्त की द्वितीय ऋचा है– (क्र. १६४)

अमादेषां भियसा भूमिरेजति नौर्न पूर्णा क्षरति व्यथिर्यती।
दूरेदृशे ये चितयन्त एभिरन्तर्महे विदथे येतिरे नरः॥

भाष्य — एषाम् इनके अमात् भियसा बल के भय से भूमि पृथ्वी रेजति चलती है। पूर्णा भरी हुई व्यथिः डगमगाने वाली नौः न नाव की तरह यह पृथ्वी यती नियंत्रित हुई क्षरति चलती है।
दूरेदृशः दूर तक (दूरवीक्षण यंत्र से) देखने वाले ये जो एभिः मार्गों से, गतियों से चितयन्ते विचार करते हैं वे नरः श्रेष्ठ व्यक्ति महे अन्तः आन्तरिक बृहत् विदथे ज्ञान के लिये (येतिरे, √यत् लिट् ल.) यत्न करते हैं।

मरुतों के कारण पृथ्वी भरी हुई नाव की तरह चलती है। जो विद्वान् नक्षत्रों का और उनके मार्गों तथा गतियों का विचार करते हैं उन्हें मरुतों के आन्तरिक स्वरूप का अध्ययन करना चाहिये।

आगामी ऋचा है– (क्र. १६५)

गवामिव श्रियसे शृङ्गमुत्तमं सूर्यो न चक्षू रजसो विसर्जने।
अत्या इव सुभ्वश्चारवः स्थन मर्या इव श्रियसे चेतथा नरः॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाष्य— हे मरुतों ! उत्तमं श्रङ्गम् उत्तम पर्वत की चोटी को श्रियसे शोभायमान करने के लिये गवाम् इव किरण की तरह तुम शोभायमान हो। सूर्यः चक्षुः न सूर्य का तेज जैसे विसर्जने फैलने के लिये वैसे ही रजसः लोकों के विसर्जने त्यागने के लिये अर्थात् मार्ग पर चलने के लिये अत्याः इव सुभ्वः घोड़ों की तरह उत्तम सामर्थ्यवान् चारवः चलाने वाले स्थन होओ। श्रियसे ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये मर्या नरः मर्यादित, व्रतपालक मनुष्य की तरह चेतथ तुम लोग सावधान रहते हो।

मरुत व्रतपालक हैं नियमों में बद्ध हैं। सूर्य की किरणें जैसे चारों ओर सर्वत्रगामी हैं वैसे मरुत शक्ति व्यापक है। वे लोकों को चलाने में घोड़ों की तरह वाहक शक्ति (traction) का काम करती है।

सूक्त की चौथी ऋचा है- (क्र. १६६)

को वो महान्ति महतामुदश्नवत्कस्काव्या मरुतः को ह पौंस्या।
यूयं ह भूमिं किरणं न रेजथ प्र यद्धध्वे सुविताय दावने ॥

भाष्य— वः आपके महतां महान्ति बड़े सामर्थ्य को कः कौन उत् अश्नवत् ही पा सकता है। हे मरुतः मरुतों कः वः काव्या कौन आपके लिये बनाये गये प्रशंसा वचनों को उद् अश्नवत् पा सकता है।

यूयं ह भूमिं किरणं न रेजथ आप लोग पृथ्वी को कण की या किरण की तरह हिला देते हो, ले जाते हो यत् जब आप सुविताय दावने उत्तम ऐश्वर्य देने के लिये प्र भरध्वे प्रकर्षता से धारण करते हो।

जब पृथ्वी के अन्तस् का लावा ज्वालामुखी के विस्फोट के द्वारा सतह पर आता है तो दबाव (pressure) के कारण पृथ्वी कण की तरह कंपायमान हो जाती है जिसे भूकम्प कहते हैं। यह तथ्य ज्ञात है कि पृथ्वी के अन्तस् से निकला लावा खनिज पदार्थों में अत्यन्त समृद्ध होता है।

सूक्त की छठवीं ऋचा है- (क्र. १६७)

ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदोऽमध्यमासो महसा वि वावृधुः।
सुजातसो जनुषा पृश्निमातरो दिवो मर्या आ नो अच्छा जिगातन ॥

भाष्य— ते वे मरुत अज्येष्ठाः सर्वोच्च सत्ता मूल तत्व से पृथक् हैं अ-कनिष्ठासः मूल के अन्तिम परिणाम (जो सबसे छोटा है) से भी पृथक् हैं अ-मध्यमासः मध्यम परिणाम से भी पृथक् हैं उद् भिदः भेदनकर ऊपर उठने वाले

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महसा तेज से, बल से, आभा से **वि वावृधुः** विशेष वृद्धि पाते हैं।

जनुषा जन्म से ही **सु-जातसः** उत्तम उत्पत्ति वाले **पृश्नि मातरः** नक्षत्रों से युक्त आकाश रूप माताओं वाले अर्थात् लोकों से जिनकी उत्पत्ति होती है ऐसे **दिवः** प्रकाश, आभा युक्त (**मर्याः**, मर्या=सीमा, हद, कोश) सीमा वाले तुम लोग **नः** हमारी (**अच्छ आ जिगातन**, √गा लोट् म. पु.) ओर आओ।

इस ऋचा में मरुतों के स्वरूप पर विशेष प्रकाश पड़ता है। मरुत मूल तत्त्व या मूल तत्त्व से उत्पन्न मध्यम या अन्तिम परिणाम नहीं है अर्थात् मरुत रासायनिक द्रव्य नहीं है। ऋचा में इनकी उत्पत्ति का स्रोत आकाशस्थ लोक कहा गया है। ये पदार्थ की बल रूप शक्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं। मरुत मर्यादित बल है जिसका उद्भव लोकों से गुरुत्वाकर्षण के रूप में होता है।

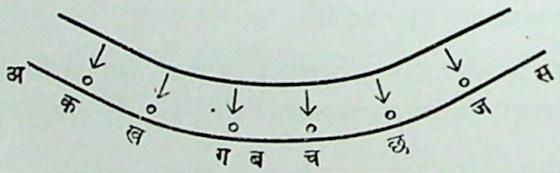
आगामी ऋचा है– (क्र. १६८)

वयो न ये श्रेणीः पप्तुरोजसान्तान्दिवो बृहतः सानुनस्परि।
अश्वास एषामुभये यथा विदुः प्र पर्वतस्य नभूनूँरचुच्यवुः॥

भाष्य— ये ये मरुत **वयः न** पक्षी की तरह **श्रेणीः** पंक्तिबद्ध हुए **ओजसा** बल के साथ **बृहतः** बड़े **सानुनः** पर्वत शिखर की तरह **दिवः** प्रकाशित लोक, आकाश के **अन्तान्** अन्त तक **परि पप्तुः** चारों ओर उड़ें।

एषाम् इनके **उभये** दो प्रकार के लिये **अश्वासः** शक्तियां **यथा विदुः** जैसी जानी गयी हैं **पर्वतस्य** द्रव्य समूह को (**नभूनून्**, नभ आदित्यो भवति, नेता **रसानाम्**, नेता भासाम्, निरु. २/१४) और सूर्यवत प्रज्वलित लोकों को (**प्र-अचुच्यवुः**, √च्यु=चलना) अच्छी तरह चलाया।

मरुतों की बल रेखायें पक्षियों की पंक्तिबद्ध श्रेणी की तरह की (curved paths) वक्राकार होती हैं। इनका क्षेत्र आकाश के अन्त तक अर्थात् जहाँ तक लोकों की, गैलेक्सियों की सत्ता है वहाँ तक फैला है। मरुत बल रेखायें असीम क्षेत्र



वाली हैं। चित्र में दर्शाए अनुसार क, ख, ग, च, छ, ज पक्षियों की किसी क्षण स्थिति है, तीर की दिशा (direction) दिशा पक्षी के उड़ने का मार्ग है जो बल-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेखा है और वक्र अ व स पक्षियों की पंक्ति है जो बल रेखाओं पर (equi potential curve) समान विभव वाला वक्र है। मरुतों की शक्तियाँ दो प्रकार की हैं एक गुरुत्वाकर्षण बल है दूसरा (electrical force) विद्युन्मय बल है। इनका काम लोकों को उनकी दीर्घाओं पर चलाना है तथा द्रव्य समूह में गति उत्पन्न करना है।

६. मरुतों के विद्युत बल संबंधी विचार-

इस विषय को सूक्त ५४ की ऋचाओं से प्रकाश में लाया जाता है। सूक्त की प्रथम ऋचा है- (ऋ. १६९)

प्र शर्धाय मरुताय स्वभानव इमां वाचमनजा पर्वतच्युते।
धर्म स्तुभे दिव आ पृष्ठयज्वने द्युम्नश्रवसे महि नृम्णमचत ॥

भाष्य— स्वभानवे स्वयं प्रकाश पर्वतच्युते पर्वतों को हिला देने वाले मरुताय शर्धाय मरुतों के बल के लिये इमां वाचं हे विद्वानों, तुम इस वाणी को प्र अनज अच्छी प्रकार अलंकृत करो।
द्युम्नश्रवसे प्रकाश के यश वाले दिवः पृष्ठयज्वने द्युलोक की पृष्ठभूमि में संगतिकरण करने वाले धर्म स्तुभे तेज की उपासना करने वाले या तेज ही जिनकी प्रशंसा है ऐसे मरुतों के लिये महि नृम्णम् आ अचत महान् मनुष्योचित अर्चना करो।

मरुत का यह यश है कि वे तेज स्वरूप हैं, स्वयं प्रकाश हैं, स्वबल से युक्त हैं ये द्युलोक की पृष्ठभूमि में संगतिकरण करते हैं। इनका बल पर्वतों को हिला देता है ये असीम बल वाले हैं।

आगामी ऋचा है- (ऋ. १७०)

प्र वो मरुतस्तविषा उदन्यवो वयोवृधो अश्वयुजः परिज्रयः।
सं विद्युता दधाति वाशति त्रितः स्वरन्त्यापोऽवना परिज्रयः ॥

भाष्य— हे मरुतः मरुतों वः तविषाः आपका बल धारण करने वाले वयोवृधः बल की वृद्धि करने वाले अश्वयुजः शक्ति सम्पन्न प्र परिज्रयः वेग से चक्राकार, चतुर्दिक घूमने वाले उदन्यवः जल प्रवाह विद्युता सं दधाति विद्युत से सम्यक् (यन्त्रों को) धारण करते हैं।
अवना धरती पर जलप्रवाह त्रितः तीनों ओर (आगे की तरफ) फैलता हुआ वाशति आवाज करता है और परिज्रयः चारों ओर चक्कर काटने वाली आपः

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जल धाराएँ (सु–अरन्ति, √अर्) भँवर की तरह अच्छी प्रकार स्थिर हो जाती हैं।

इस ऋचा में जलप्रपातों से विद्युत के उत्पन्न होने का ज्ञान है यांत्रिक बल (mechanical power) को विद्युत बल में परिवर्तित करने का निर्देश है।

आगामी ऋचा है– (क्र. १७१)

विद्युन्महसो नरो अश्मदिद्यवो वातत्विषो मरुतः पर्वतच्युतः।

भाष्य— विद्युत् महसः विद्युत की आभा से युक्त **नरः** श्रेष्ठ **अश्म दिद्यवः** बादल को चमकाने वाले **वात त्विषः** प्रदीप्त तरंगवत **मरुतः** मरुत **पर्वतच्युतः** पर्वत को हिला देते हैं।

मरुत विद्युत आभा से युक्त हैं। बादलों में जो विद्युत चमकती है वह मरुतों की शक्ति है मरुतों का बल पर्वतों को हिला देता है।

सूक्त की ५ वीं ऋचा है– (क्र. १७२)

तद् वीर्यं वो मरुतो महित्वनं दीर्घं ततान सूर्यो न योजनम्।
एता न यामे अगृभीत शोचिषोऽनश्वदां यन्नययातना गिरिम्॥

भाष्य— हे **मरुतः** मरुतों **वः तत्** आपकी उस **योजनम्** व्यवस्था को व **दीर्घं महित्वनं वीर्यम्** अति विशाल पराक्रम को **सूर्यः न** सूर्य की तरह **ततान** फैला है (ऐसा जाना गया है)।
एताः न यामे हरिण जैसे मार्ग पर जाते हैं वैसे **शोचिषः** आपकी किरणें **अगृभीत** पकड़ी जाने योग्य नहीं हैं **यत्** क्योंकि आप लोग **अनू–अश्व–दाम्** बिना किसी अश्व के **गिरिम्** पर्वत के, द्रव्य समूह के **नि अयातन** पार गये हो।

इस ऋचा में मरुतों के स्वरूप संबंधी उच्च विज्ञान है। मरुतों को ऋचा में अश्व रहित गति करने वाला कहा गया है अतः जहाँ भी इनके लिये अश्व पद आया है वह गति, शक्ति का पर्याय है घोड़े का वाचक नहीं है। मरुत स्वतः गतिवान् हैं, स्वयं शक्ति रूप हैं। द्वितीय यह कि मरुतों का बल व्यापक है। मरुतों की बल रेखायें दर्शनीय नहीं हैं अतः मरुतों के विषय में जो त्विषः, स्वभानवे, द्युम्नश्रवसे आदि जो विशेषण आये हैं उनके विषय में यह समझना चाहिये कि इनका तात्पर्य सूर्य के दर्शनीय प्रकाश की तरह का तेज नहीं है वरन् मरुतों की बल रेखायें अदृश्य होकर सर्वत्र फैली हैं इसीलिये ये (अगृभीत) स्पर्श में आने योग्य नहीं हैं। अदृश्य चुम्बकीय बल (magnetic force) रेखाओं से मरुतों का विस्तार हुआ है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी सूक्त की १२ वीं ऋचा है– (क्र. १७३)

तं नाकमर्यो अगृभीत शोचिषं रुशत् पिप्पलं मरुतो वि धूनुथ।
समच्यन्त वृजनातित्विषन्त यत्स्वरन्ति घोषं विततमृतायवः ॥

भाष्य — हे अर्यः मरुतः श्रेष्ठ मरुतों तं अगृभीत उस न पकड़े जाने वाले, अस्पृश्य रुशत् पिप्पलं नाकं प्रदीप्त वृक्षरूप आकाशवर्ती शोचिषं तेज को वि धूनुथ विशेष रूप से कंपा देते हो ऋतायवः प्राकृतिक नियमों को पालन करने के इच्छुक वृजना वक्र मार्ग पर चलने वाले लोक (अति त्विषन्त, √त्विष् लिट् प्र.) अत्यधिक प्रदीप्त हुए तथा सम् अच्यन्त सम्यक् प्रकार से चले यत् विततम् जो विस्तार करते हुए घोषं ध्वनि को स्वरन्ति करते हैं।

मरुतों का आकाशवर्ती तेज अस्पृश्य है। मरुतों की बल रेखाएँ लोकों के कंपन में अर्थात् उनके अपनी धुरी पर घूमने में हेतुभूत हैं। लोक मरुतों के बल से प्रेरित हो अपनी-अपनी वक्र कक्षा में चलते हैं लोक अतिशय प्रदीप्त हैं। जब लोकों का विस्तार होता है अर्थात् नये लोक की उत्पत्ति होती है तो तीव्र घोष के साथ मात्रायें पृथक् होती हैं।

७. मरुतों का क्षेत्र, बल और रथ का विवेचन–

इस अनुच्छेद में सूक्त ५६ की ऋचाओं से विषय पर प्रकाश डाला जाता है। सूक्त की प्रथम ऋचा है– (क्र. १७४)

अग्ने शर्धन्तमा गणं पिष्टं रुक्मेभिरञ्जिभिः।
विशो अद्य मरुतामव ह्वये दिवश्चिद्रोचनादधि ॥

भाष्य— हे अग्ने अग्ने रुक्मेभिः अञ्जिभिः प्रकाशमान लेपनों से पिष्टं अलंकृत शर्धन्तम बलवान् मरुताम् मरुतों के विशः गणं वर्गगत समूह को अद्य आज मैं रोचनात् दिवः चित् अधि प्रकाशमान द्युलोक से अव ह्वये नीचे बुलाता हूँ।

विद्युन्मय देह वाले मरुत समस्त द्युलोक में व्याप्त हैं।

आगामी ऋचा है– (क्र. १७५)

यथा चिन्मयसे हृदा तदिन्मे जग्मुराशसः।
ये ते नेदिष्ठं हवनान्यागमन्तानवर्धं भीम सन्दृशः ॥

भाष्य — हे अग्ने अग्ने तू हृदा यथा चित् मन्यसे हृदय से जैसा मानता है तत् इत् वैसा ही आशसः सब ओर शासन करने वाले मे जग्मुः मेरे पास आ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गये। ये ते जो तेरे हवनानि आहुतियों के नेदिष्ठं समीप आगमन् आ गये तान् उन भीम संदृशः उग्र स्वरूप वालों को वर्ध तू बढ़ा।

मरुत सब ओर शासन करने वाले प्रमुख बल का प्रतिनिधित्व करने वाली शक्ति है उनके संपर्क में जो कण हैं वे उग्र स्वरूप हो जाते हैं।

आगामी ऋचा है– (क्र. १७६)

मीलहुष्मतीव पृथिवी पराहता मदन्त्येत्यस्मदा।
ऋक्षो न वो मरुतः शिमीवा अमो दुध्रो गौरिव भीमयुः॥

भाष्य— मीढुष्मती इव उदार की तरह पर–अ–हता किसी से पराभूत न हुई पृथिवी पृथ्वी मदन्ती हर्षित हुई अस्मत् आ एति हमारे निकट आती है। हे मरुत वः तुम्हारा अमः बल ऋक्षः न नक्षत्र के समान शिमीवान् कार्यशील गौ इव किरण के समान प्रचण्ड दुध्र धारण करने में दुरूह है।

मरुतों का बल प्रज्वलित नक्षत्र के समान असह्य और दुरूह है।

आगामी ऋचा है– (क्र. १७७)

नि ये रिणन्त्योजसा वृथा गावो न दुर्धुरः।
अश्मानं चित्स्वर्यं पर्वतं गिरिं प्र च्यावयन्ति यामभिः॥

भाष्य — दुर् धुरः गावः न जीर्ण जूए को जैसे बैल तोड़ देते हैं उसी प्रकार ये मरुत ओजसा अपने तेज से वृथा अनायास ही नि रिणन्ति अवरोधों को हटा देते हैं। मरुत यामभिः अपने नियंत्रित प्रयाणों से स्वर्यं अश्मानं गरजते मेघ को पर्वतं गिरिं चित् पर्वत को, शृङ्गों को प्र च्यावयन्ति अच्छी तरह हिला देते हैं।

मरुतों का प्रमुख कार्य बल का प्रसार करना है।

आगामी ऋचा है– (क्र. १७८)

उत्तिष्ठ नूनमेषां स्तोमैः समुक्षितानाम्।
मरुतां पुरुतममपूर्व्यं गवां सर्गमिव ह्वये॥

भाष्य — उत्तिष्ठ उठो। सम् उक्षितानाम् एक साथ बढ़े हुए एषां मरुताम् इन मरुतों के पुरुतमम् बहुत बड़े अपूर्व्यं अभूतपूर्व बल को गवां सर्गम् इव वेदवाणी के सूक्तों की तरह मैं स्तोमैः स्तुति वचनों से नूनं वास्तव में ह्वये प्रार्थना करूँ।

आगामी ऋचा है– (क्र. १७९)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युङ्ग्ध्वं ह्यरुषी रथे युङ्ग्ध्वं रथेषु रोहितः ।
युङ्ग्ध्वं हरी अजिरा धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे ॥

भाष्य — हे मरुतों तुम रथे सृष्टि रथ में हि अरुषीः लाल वर्ण की उषा रूप घोड़ी को (युङ्ग्ध्वं, √युज् आ. लोट्) जोड़ दो। रथेषु लोक लोकान्तर रूपी रथों में रोहितः लाल वर्ण की (किरणों रूप अश्वों को) जोड़ दो। अजिरा शीघ्रगामी वहिष्ठा वहन करने की क्षमता रखने वाले हरी दो शक्ति रूप घोड़ों को वोळ्हवे धुरि २ ढोने के लिये काल रूप धुरे में जोड़ दो।

रथों में अश्व को जोड़ना एक रूपक है। इसका तात्पर्य यह है कि सृष्टि रथ को खींचने वाली शक्ति ऊषा या सृष्टिकाल है। लोकों को अपनी-अपनी कक्षा में चलाने वाली शक्ति को भी संयुक्त करने वाले मरुत हैं। इन्द्र की दो हरियां, दो घोड़े प्रकृति की दो शक्तियाँ हैं ये दो शीघ्रगामी शक्तियाँ विकिरण एवं द्रव्य भाग (कण-प्रतिकण संघात) हैं।

सभी शक्तियों को जोड़ने का काम मरुतों का है अर्थात् मरुतों का काम बल (forces) का है इस प्रकार मरुत विज्ञान प्रोक्त असीमित बल के पर्यायवाची हैं।

आगामी ऋचा है– (क्र. १८०)

उत स्य वाज्यरुषस्तुविष्वणिरिह स्म धायि दर्शतः ।
मा वो यामेषु मरुतश्चिरं करत्प्र तं रथेषु चोदत ॥

भाष्य— उत और स्यः वह अरुषः रक्तिम आभा से युक्त दर्शतः दर्शनीय तुविस्वनि जोर की आवाज करने वाला वाजी अश्व इह धायि स्म यहाँ जोड़ा जावे। हे मरुतः मरुतों वः आपके यामेषु[1] प्रयाणों में वह अश्व चिरं मा करत विलम्ब न करे। तं उसे रथेषु प्र चोदत रथों में अच्छी तरह प्रेरित करो।

सृष्टिकाल (उषा) रूपी अश्व सृष्टि रथ को खींचता है। मरुत शक्ति बलरूप कार्य से उस अश्व के प्रयाण को शीघ्र कार्य रूप देवें और लोकों रूप रथ अपने-गन्तव्य मार्ग पर चलें यह तात्पर्य है। लोकों रूप रथों को खींचने वाला समग्र बल रूप अश्व एक ही कहा गया है यद्यपि बलों की विविधता कही गयी है।

आगामी ऋचा है– (क्र. १८१)

रथं नु मारुतं वयं श्रवस्युमा हुवामहे ।
आ यस्मिन्तस्थौ सुरणानि बिभ्रती सचा मरुत्सु रोदसी ॥

---

1 यामेषु गमनेषु ऋ. १/४८/४ इति तद्भाष्ये सायणः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाष्य — यस्मिन् रथं सुरणानि जिस रथ में उत्तम रमणीय वस्तुओं को बिभ्रती धारण किये रोदसी द्यावा पृथ्वी मरुत्सु मरुतों पर सचा संयुक्त हुए आ तस्थौ अच्छी तरह बैठे हुए हैं मारुतं रथं मारुतों के उस रथ की श्रवस्युं कीर्ति को वयं हम नु निश्चय ही हुवामहे अच्छी प्रकार कहें।

इस ऋचा में रथ के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। जिस रथ पर द्यावा पृथ्वी बैठे हैं वह रथ सृष्टि रथ ही है द्यावा पृथ्वी अर्थात् समस्त लोक मरुतों के बल पर स्थित हैं, टिके हैं। मरुत बृहत गुरुत्वाकर्षण बल है जो लोकों को थामता है और सृष्टि रथ को गमनशील शक्तियों (अश्वों) से जोड़ता है। जो शक्तियाँ सृष्टि रथ को काल के बीच से ले जाती हैं उन्हें ही अश्व शक्ति कहा गया है। इस प्रकार इस ऋचा में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि जिस रथ की चर्चा है वह सांसारिक रथ के तुल्य कोई वाहन नहीं है वरन् सृष्टि के लिये ही प्रयुक्त रूपक है तदनुसार अश्व आदि के स्वरूप को और अस्त्रादि के स्वरूप को भी उसी अनुरूपता से देखा जाना चाहिये।

सूक्त की अन्तिम ऋचा है– (क्र. १८२)

तं वः शर्धं रथे शुभं त्वेषं पनस्युमा हुवे।
यस्मिन्त्सुजाता सुभगा महीयते सचा मरुत्सु मोलहुषी॥

भाष्य— रथे सृष्टि रथ में वः आपके तं उस शुभं कल्याणकारी त्वेषं आभायुक्त पनस्युवं प्रशंसनीय शर्धं बल को आ हुवे बुलाता हूँ यस्मिन् जिसमें सुजाता उत्तम जन्म वाली सुभगा सौभाग्यवती मौदुषी उदार रोदसी, द्यावा पृथ्वी मरुत्सु मरुतों के साथ सचा संयुक्त हुई महीयते आदरणीय पद को प्राप्त है।



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय १४

सप्त सिन्धु आकाशवर्ती परमाणु प्रवाह हैं

सिन्धु शब्द को सिन्धुनद से एकता के आधार पर कुछ विद्वानों ने वेद के सप्त सिन्धु से पंजाब की पाँच नदियाँ, सिन्धु नदी व लुप्त सरस्वती नदी को मिलाकर सात नदियों की कल्पना की है तथा इस आधार पर ऋग्वेद का रचना स्थल पंजाब को बताया है। ऋग्वेद में सप्तसिन्धु से संबंधित पृथ्वी के किसी स्थल का विवरण नहीं है। ऋचाओं में सप्तसिन्धु के साथ इन्द्र द्वारा वज्र संचालन और वृत्र के उन्मूलन की घटना अभिन्न रूप से जुड़ी है तथा इस घटना के साथ ज्योतिर्पिण्डों को आकाश में स्थापित करने का तथ्य भी अभिन्न रूप से जुड़ा है। अतः किसी भी (version) विचार में इन तथ्यों का स्पष्टीकरण अपेक्षित है। केवल सप्तसिन्धु शब्द लेकर उड़ जाने से समस्या का हल प्राप्त नहीं हो सकता।

१. सप्तसिन्धु का स्थल व काल –

पूर्वोक्त अध्यायों (अध्याय ५ आदि) में ऋग्वेद की अन्तःसाक्षी के आधार पर यह बताया गया है कि इन्द्र ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं है वरन् ईश्वर ही है तथा वृत्र के उन्मूलन हेतु वज्र का संचालन आदि सृष्टिकाल की घटना है जब पृथ्वी तो क्या सूर्य की भी उत्पत्ति नहीं हुई थी। इस विषय में पाठकों का ध्यान ऋचा (क्र. ५४) की ओर आकर्षित किया जाता है जिसमें यह स्पष्ट कहा गया है कि इन्द्र–वृत्र युद्ध आकाशवर्ती पिण्डों के परे[1] उच्चाकाश में हुआ था, जिसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि द्युलोक के परे गैलेक्सियों के केन्द्र में यह घटना हुई थी, जहाँ विज्ञान के अनुसार महाविस्फोट हुआ था। द्युलोक के परे हुई इस घटना को पंजाब से जोड़ना अज्ञान का द्योतक है।

इसी प्रकार ऋचा (क्र. ५६) में स्पष्ट कहा गया है[2] कि वृत्र की घटना अन्तरिक्ष में हुई थी तथा (क्र. ५७) वृत्र द्वारा आकाशवर्ती (अप् तत्त्व) मूल तत्त्व का अधिग्रहण किया गया था इसी तत्त्व के प्रवाह को इन्द्र ने सरल मार्ग पर कर दिया जिससे मूल तत्त्व की परिणति आगामी अवस्था में हुई। अनेक आन्तरिक साक्षीभूत प्रमाणों द्वारा प्रस्थापित किया गया है कि वैदिक अप् (आपः) सृष्टि रचना में

---

1 त्वम् एतान् अयोऽयः रजसः इन्द्र पारे। अवादहो दिव आ दस्यूमुच्चा।

2 अन्तरिक्ष प्रां तविषीभिः आवृतम्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियोजित मूल क्रियात्मक प्रकृति है[1] तथा वज्र और वृत्र की घटना सृष्टि सृजन का प्रारंभिक चरण है। इसके विपरीत सप्तसिन्धु से पंजाब की पाँच नदियाँ ग्रहण करने वालों के पास शब्द एकात्मता के अतिरिक्त कोई प्रमाण नहीं है।

ऋचा (क्र. ६०) में स्पष्ट कहा गया है कि वृत्र के उन्मूलन के अनन्तर प्रज्वलित लोक व सूर्य अस्तित्व में आये[2] इस प्रकार सृष्टि के उषाकाल का आरंभ (dawn of creation came into being) हुआ।

२. पदार्थ की अवस्थाओं का विवरण–

सृष्टि आरंभ से लेकर पृथ्वी की रचना तक वेद में पदार्थ की पाँच अवस्थाएँ दी हुई हैं। आदिकाल में मूल तत्त्व जब सृष्टि रचना हेतु नियोजित होता है तो उस अवस्था का नाम माया, अप् (आपः) या सलिल है। जब द्रव्य का समग्र पिण्ड किरण मण्डल के रूप (हिरण्यगर्भ) में प्रकट होता है तब पदार्थ की उस अवस्था को बृहती: आपः कहा गया है। इसके अनन्तर पदार्थ वर्तुलाकार प्रसार में संलग्न हो जाता है और कालान्तर में पदार्थ अपनी अपां नपात् नामक तीसरी अवस्था में परिवर्तित हो जाता है विज्ञान के संदर्भ से यह विदित होता है कि यह नाभिकीय अवस्था ही है। इसके अनन्तर नाभिकीय द्रव्य परमाणु रचना में संलग्न हो जाता है और वेद के अनुसार पदार्थ की सप्तवर्गी अर्ध गर्भा: अवस्था उद्भूत होती है जो विज्ञान के सप्त पीरियाडिक (Mendeleeff table) परमाणु का पर्याय है।

वेद ने अपनी शब्दावलि में इन सप्तवर्गी परमाणु प्रवाहों को सप्तसिन्धु कहा है और यह भी कहा है कि इस सप्तसिन्धु की उत्पत्ति के साथ-साथ नक्षत्रों की भी उत्पत्ति होती है तथा यह सप्तसिन्धु की उत्पत्ति महाग्नि काण्ड और इन्द्र द्वारा वृत्र उन्मूलन की घटना से अभिन्न रूप से जुड़ी है। वज्र संचालन, वृत्र उन्मूलन उसी प्रकार प्राकृतिक घटनायें हैं जैसे कि नक्षत्रों की उत्पत्ति प्राकृतिक घटना है। इन घटनाओं के साथ सप्तसिन्धु का अभिन्न रूप से संयुक्त होना यह सिद्ध करता है कि यह भी एक प्राकृतिक घटना है। किसी भी ऐतिहासिक घटना में देश और काल दो प्रमुख पक्ष हैं। ऋचाओं में स्थल आकाश कहा गया है और घटना आदि सृष्टि काल की कही गयी है जिससे ऐतिहासिक पक्ष निराधार एवं कपोल कल्पित सिद्ध होता है। विज्ञान से भी हमें विदित है कि परमाणु रचना और नक्षत्रों की रचना साथ-साथ होती है। अतः वैदिक सप्तसिन्धु, सप्तवर्गी परमाणु की उत्पत्ति का

---

1 ग्रन्थ भाग १

2 यत् इन्द्र अहन् प्रथमजाम् अहीनाम् ···· ···· आत् सूर्यम् जनयन् द्याम् उषासं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्योतक है। सिन्धु शब्द आकाशस्थ सूक्ष्म स्थूलभूत एवं लोकों के विस्तार के लिये प्रयुक्त होता है (देखिये क्र. ५८), सिन्धु का अर्थ केवल पार्थिव सागर ही नहीं है (निरुक्त)।

३. वज्र संचालन, लोकों की उत्पत्ति व सप्तसिन्धु के मध्य अभिन्न संबंध –

ऋचाओं में वज्र संचालन, लोकों की उत्पत्ति व सप्तसिन्धु प्रवाहों के उद्भूत होने की घटनाएँ परस्पर अविच्छिन्न रूप से संयुक्त हैं। ऋचाओं की इस योजना में वस्तुस्थिति की यथार्थता का रहस्य छिपा हुआ है। इन घटनाओं के बीच के परस्पर संबंध को दृष्टि ओझल कर सत्य का अनावरण नहीं हो सकता। इन घटनाओं के मध्य परस्पर संबंध को ऋचाओं के माध्यम से ही समझाया जाना चाहिये। पृथ्वी की उत्पत्ति के पूर्व की घटनाओं को पंजाब से जोड़ना सर्वथा अयुक्त है। अब वज्र संचालन, लोकों की उत्पत्ति और सप्तसिन्धु के प्रभूत होने के मध्य ऋचोक्त अभिन्न संबंध के प्रकाशनार्थ ऋचाओं को प्रस्तुत किया जाता है।

मण्डल २, सूक्त १२ की ३ री ऋचा में यह कहा गया है कि वृत्र का उन्मूलन, बृहत् अग्निकाण्ड, लोकों का आकाश में स्थापित किया जाना और सप्तसिन्धु का प्रभूत होना ये सभी घटनायें अभिन्न रूप से परस्पर संबद्ध हैं तथा ये सृष्टि उत्पत्ति के चरणों की द्योतक हैं। ऋचा है– (क्र. १८३)

यो हत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धून् यो गा उदाजदपधा वलस्य।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक्समत्सु स जनास इन्द्रः॥

भाष्य — यः जिसने **समत्सु** भीषण संग्रामों में, महाग्नि ताण्डवों में (**संवृक्**, √वृक् = बल) बल के द्वारा (**अश्मनः** = बादल, कोश) आदिकाल के बादल, निहारमण्डल की **अन्तः** आन्तरिक **अग्निं** अग्नि को **जजान** उत्पन्न किया। **यः** जिसने **अहिम् हत्वा** वृत्र को मारकर **सप्त सिन्धून्** सात (परमाणु) प्रवाहों को **अरिणात्** चलाया था। **यः** जिस **वलस्य अप धा** आवरण हटाने वाले ने **गाः** लोकों को **उद् आजत्** ऊपर आकाश में चलाया था; हे **जनासः** मनुष्यों **सः इन्द्रः** वह इन्द्र है।

ऋचा में निम्नलिखित घटनाओं का विवरण है–

१. वज्र प्रहार से वृत्र का मारा जाना, जो ऊर्जाओं की नियोजित टक्कर से आदिकाल के प्राकृतिक अवरोध के उन्मूलन का द्योतक है।

२. इस वज्रपात से महाग्नि ताण्डव (big bang) का होना।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३. अग्नि-ताण्डव के अनन्तर सप्तवर्गी अन्तरिम द्रव्य की उत्पत्ति। महाग्नि पिण्ड के पर्याप्त प्रसार हो जाने पर सात देवों की उत्पत्ति हुई[1]।

४. साथ-साथ ज्योतिर्पिण्डों की उत्पत्ति व उनका आकाश में स्थायित्व।

ये सभी सृष्टि विकास क्रम की परस्पर सम्बद्ध प्राकृतिक घटनाएँ हैं। उसी परिपेक्ष्य में सप्तसिन्धु प्रवाह का आकाश में उद्भूत होना द्रव्य की सप्तवर्गी अवस्था की उत्पत्ति का द्योतक है। इसी सूक्त की १२ वीं ऋचा में ऋषि ने स्वयं सप्तसिन्धु के रहस्य का अनावरण किया है, ऋचा है– (क्र. १८४)

य: सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत् सर्त्तवे सप्त सिन्धून्।
यो रौहिणमस्फुरद्वज्रबाहुद्यामारोहन्तं स जनास इन्द्र: ॥

भाष्य— य: जिस वृषभ: सुख वर्षाने वाले (तुविष्मान्, अदा. परस्मै. √तु= बलवान होना) शक्तिशाली ने सप्त रश्मि: सात रश्मि के सप्त सिन्धून् सात प्रवाहों को (सर्त्तवे, √सृ का तुम. कृ.) बहने के लिये अव असृजत् प्रकट किया (मूल तत्व से क्रम में) नीचे की ओर य: वज्रबाहु: जिस बाहु की तरह वज्ररूप शक्ति के धारणकर्ता ने आरोहन्तम् आकाश में चढ़ते हुए द्याम् द्युलोक को रौहिणम् अपनी कक्षा में चढ़ने के लिये अस्फुरत् स्फूर्ति दी थी; हे जनास: मनुष्यों स: इन्द्र: वह इन्द्र है।

इस ऋचा में सप्त रश्मियों को सप्तसिन्धु के रूप में प्रवाहित हुआ कहा गया है अत: जल की नदियों के होने की कल्पना सर्वथा निर्मूल है। पृथ्वी के किसी भू-भाग पर इस घटना के होने का कोई संकेत नहीं है इसके विपरीत इस घटना का वज्र से तथा लोकों का अपनी-अपनी कक्षा में निर्धारण से संबंध होने की बात ऋचा में कही गयी है। इस प्रकार सप्तसिन्धु को पंजाब की नदियों से जोड़ना पूर्ण रूप से संदर्भ के विपरीत है। सप्तसिन्धु प्रवाह उस काल में उद्भूत हुए थे जब आकाश में ज्योतिर्पिण्ड अपनी-अपनी कक्षाओं को निर्मित कर रहे थे।

यह निश्चय हो जाने पर कि इन्द्र ईश्वर है तथा उसके द्वारा वज्र संचालन, वृत्र उन्मूलन, लोकों का आकाश में स्थायित्व आदि सृष्टि विकास क्रम में हुई प्राकृतिक घटनाएँ हैं यह संदेह नहीं रहता कि सप्तसिन्धु का उद्भूत होना भी सृष्टि विकास क्रम का महत्वपूर्ण चरण है। पार्थिव जल प्रवाहों की बात सर्वथा असंगत व मिथ्या है।

मण्डल १, सूक्त ३२ की १२ वीं ऋचा है– (क्र. १८५)

---

1 देवान् उप प्रैत्सप्तभि: परा मार्ताण्डम् आस्यत्। (क्र. १५५)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र सृके यत् त्वा प्रत्यहन् देव एकः ।
अजयो गा अजयः शूर सोममवासृजः सर्तवे सप्त सिन्धून् ॥

भाष्य— यत् जब सृके वज्र सहित त्वा प्रति एकः देवः अहन् तुझ पर एक दिव्य शक्ति ने प्रहार किया तत् अश्व्यः वारः अभवः वह प्रहार घोड़े के झटकारने जैसा तुमने कर दिया । शूर इन्द्र हे शूरवीर इन्द्र गाः अजयः तुमने लोकों को जीता, तुमने सोमम् अजयः विकिरण पर आधिपत्य किया, तुमने सप्त सिन्धून् सर्तवे अव असृजः सप्तसिन्धु को बहने के लिये प्रकट किया ।

यह ध्यान देने योग्य है कि वज्र संचालन, वृत्र का मारा जाना, सूर्यादि लोकों की उत्पत्ति और सप्तसिन्धु का प्रवाहित होना ये सभी घटनायें एक ही ऋचा में कही गयी हैं अर्थात् ऋचा में इन्हें युगपद् घटनायें माना गया है । वृत्र का मारा जाना आदिकाल की घटना है अतः सप्त सिन्धुओं के प्रवाह के उद्भूत होने की घटना भी आदिकाल की घटना है जब लोकों की उत्पत्ति हो रही थी । पृथ्वी की उत्पत्ति बाद की है अतः सप्तसिन्धु का पृथ्वी की नदियाँ होना असंभव है ।

मण्डल ४, सूक्त २८ की प्रथम ऋचा है— (क्र. १८६)

त्वा युजा तव तत्सोम सख्य इन्द्रो अपो मनवे सस्रुतस्कः ।
अहन्नहिमरिणात्सप्त सिन्धूनपावृणोदपिहितेव खानि ॥

भाष्य — हे सोम सोम तव तत् सख्ये तेरी उस मित्रता के लिये त्वा युजा तेरे से युक्त हुए इन्द्रः इन्द्र ने मनवे मानव के लिये सस्रुतः अपः कः बहने वाले तत्त्वों के प्रवाहों को खोल दिया अहिम् अहन् अहि वृत्र को मारा सप्त सिन्धून् अरिणात् सात सिन्धु के प्रवाहों को चलाया अपहिता इव खानि बंद द्वारों को अपावृणोत् खोल दिया ।

मण्डल ४, सूक्त १८ की ७ वीं ऋचा है— (क्र. १८७)

किमु ष्विदस्मै निविदो भनन्तेन्द्रस्यावद्यं दिधिषन्त आपः ।
ममैतान्पुत्रो महता वधेन वृत्रं जघन्वाँ असृजद्वि सिन्धून् ॥

भाष्य— अस्मै इन्द्रस्य इस इन्द्र के विषय में निविदः वेद वाणियों ने किम् उ भनन्त क्या कहा ।

आपः प्रकृति के व्यापक तत्त्व अस्मै अवद्यं इसके अकथनीय सामर्थ्य को दिधिषन्ते धारण करते हैं । मम पुत्रः मुझ प्रकृति से उत्पन्न पुत्र रूप वज्र महता वधेन महान् मारक शक्ति से वृत्रं वृत्र को जघन्वान् मारते हुए सिन्धून्

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असृजत् निहारिका प्रवाहों को प्रकट करता है।

ऋचाओं में वज्र संचालन, वृत्र वध और सप्तसिन्धु का उद्भूत होना युगपद् कहा गया है अतः इस तथ्य को दृष्टि ओझल करना वैदिक विज्ञान को अनदेखा करना है। वैदिक विज्ञान को आत्मसात करने के लिये इन तथ्यों में परस्पर संबंध का निर्धारण परमावश्यक है।

इन्द्र ईश्वर है और वृत्र प्राकृतिक अवरोध है जिसके हट जाने पर अप् तत्त्व के प्राकृतिक प्रवाह गतिशील होते हैं यही तथ्य ऋचाओं में बार-बार दुहराया गया है। मण्डल ४, सूक्त १७ की प्रथम ऋचा है– (क्र. १८८)

त्वं महाँ इन्द्र तुभ्यं ह क्षा अनु क्षत्रं मंहना मन्यत द्यौः।
त्वं वृत्रं शवसा जघन्वान्त्सृजः सिन्धूँरहिना जग्रसानान्॥

भाष्य— हे इन्द्र इन्द्र त्वं महान् तू महान् है तुभ्यं ह क्षाः तेरे लिये ही प्रजायें अर्चना करती हैं द्यौः द्युलोक मंहना तेरी महिमा को व क्षत्रं सामर्थ्य को अनु मन्यत स्वीकार करता है त्वं शवसा वृत्रं जघन्वान् तुम बल से वृत्र को मारने वाले हुए, तुमने अहिना जग्रसानान् वृत्र के द्वारा ग्रसित सिन्धून् सृजः प्रवाह को प्रकट किया।

आगामी ऋचा है– (क्र. १८९)

तव त्विषो जनिमन् रेजत द्यौ रेजद् भूमिर्भियसा स्वस्य मन्योः।
ऋधायन्त सुभ्वः पर्वतास आर्दन्धन्वानि सरयन्त आपः॥

भाष्य— त्विषः हे तेजस्वी इन्द्र स्वस्य मन्योः तेरे निज के क्रोध से व भियसे भय से भूमिः पृथ्वी रेजत् काँपे व द्युः रेजत् द्युलोक काँपे।
तव जनिमन् तेरे प्रकट होते ही अर्थात् तेरे सौजन्य से सुभ्वः उत्तम सत्ता वाले पर्वतासः द्रव्य मण्डल (ऋधायन्त, √ऋध् = समृद्ध होना) समृद्ध हुए और आपः व्यापक मूल तत्त्व धन्वानि शुष्क क्षेत्रों को आर्दन् गीला करने, रसयुक्त करने सरयन्ते प्रवाहित हुए।

द्युलोक व पृथ्वी जिसके भय से काँपते हैं वह इन्द्र सृष्टि नियामक ईश्वर ही है। उसी ईश्वर के सौजन्य से आदि सृष्टिकाल में मूल प्रकृति की महान् पर्वताकार मात्राओं की विकासशील तरलों में परिणति हुई जिससे सृजन के चरणों का उद्भव हुआ और सब दिशाओं में विकासशील तरल फैल गये।

आगामी ऋचा है– (क्र. १९०)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिनद् गिरिं शवसा वज्रमिष्णन्नविष्कृण्वानः सहसान ओजः।
वधीद् वृत्रं वज्रेण मन्दसानः सरन्नापो जवसा हतवृष्णीः ॥

भाष्य — सहसानः ओजः आविकृण्वानः बलपूर्वक अपने तेज को, सामर्थ्य को प्रकट करते हुए इन्द्र ने **शवसा वज्रं ईष्णन्** बल से वज्र को प्रेरित करते हुए **गिरिं भिनत्** मूल तत्त्व के पर्वताकार मण्डल को फोड़े अर्थात् फोड़ा। **मन्दसानः** सोम विकिरण की शक्ति से हर्षित होते हुए **वज्रेण वृत्रं वधीत्** वज्र से वृत्र को मारा तथा **हत वृष्णीः** बलवान् के मारे जाने पर **आपः जवसा सरन्** व्यापक मूल तत्त्व के प्रवाह वेग से बहने लगे।

इस ऋचा से यह स्पष्ट है कि मूल तत्त्व के विकास में जो अवरोध आ गया था उसकी संज्ञा ही वृत्र है। वृत्र का मारा जाना अर्थात् उस अवरोध के निवारण हेतु इन्द्र द्वारा वज्र संचालन भी प्रकृति को उद्वेलित करने की दिशा में एक चरण है तथा इसी तारतम्य में पर्वत का फोड़ा जाना आदि सृष्टिकाल के महान् द्रव्य-मण्डल के खण्ड-खण्ड होकर निहारिकाओं (गैलेक्सियों) में विभक्त होने का प्रतीक है। इन्हीं निहारिकाओं के आगे और विभक्त होने पर नक्षत्र मण्डल, ग्रह आदि की उत्पत्ति होती है। ऋचोक्त पर्वत पार्थिव पर्वत नहीं है क्योंकि यह प्रस्थापित हो चुका है कि वृत्र उन्मूलन की घटना आदि सृष्टिकाल की है तथा अप् मूल तत्त्व वाचक है। मूल तत्त्व के इन्हीं प्रवाहों को सिन्धुओं का सरण होना कहा गया है।

मण्डल ४, सूक्त १९ की २ री ऋचा है— (क्र. १९१)

अवासृजन्त जिव्रयो न देवा भुवः सम्राळिन्द्र सत्ययोनिः।
अहन्नहिं परिशयानमर्णः प्र वर्तनीररदो विश्वधेनाः ॥

भाष्य— हे **सत्ययोनिः इन्द्र** जगत के सत्य कारण इन्द्र तू **सम्राट् भुवः** सर्वोच्च अधीक्षक हुआ है **जिव्रयः न देवाः** दृढ़ जीवनों के समान प्राकृतिक शक्तियों ने तुझे, तेरे कार्यरूप जगत को **अव असृजन्त** प्रकट किया है। तेरी शक्ति ने **परिशयानम् अहिम् अहन्** अन्तरिक्ष में फैलकर पड़े हुए वृत्र को मारा। तुमने **अर्णः** जल की तरह शीतल व प्रवाहशील **विश्वधेनाः** समस्त वेद वाणियों के **वर्तनीः** मार्ग को **प्र अरदः** अच्छी तरह बनाया।

इन्द्र सम्राट् है, सर्वोच्च सत्ता है, प्रकृति के अंगभूत मूल तत्त्व वरुण मित्रादि स्वराट् हैं, अपने सीमित क्षेत्र के अधिष्ठाता हैं[1]।

---

1 सम्राळन्यः स्वराळन्य उच्यते वां महान्ताविन्द्रावरुणा महावसू। ऋ. ७/८२/२

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्र ईश्वर है, जगत का सत्य नित्य कारण है, रचयिता है उसी संदर्भ में वृत्र का उन्मूलन सृष्टि विकास संबंधी एक प्राकृतिक घटना है। आगामी ऋचा है- (ऋ. १६२)

अतृप्णुवन्तं वियतमबुध्यमबुध्यमानं सुषुपाणमिन्द्र ।
सप्त प्रति प्रवत आशयानमहिं वज्रेण वि रिणा अपर्वन् ॥

भाष्य— अतृप्णुवन्तं तृप्त न होने वाले अबुध्यम् कठिनाई से ज्ञान में आने वाले अबुध्यमानं स्वयं ज्ञान रहित अर्थात् जड़ सुषुपाणम् निरन्तर सोने वाले वियतम् पूर्ण रूप से नियंत्रित या पराभूत हुआ सप्त प्रवतः सात प्रवाहों को, नीचे की सात प्रकृतियों को[1] प्रति आशयानम् अहिम् व्यापे हुए, पर अधिकार किये हुए वृत्र को वज्रेण वज्र से (अपर्वन्, पर्वन् = टुकड़े टुकड़े) समूचा ही (वि रिणाः, √ रि = बहना) प्रवाहित कर दिया।

इस ऋचा में वृत्र संबंधी महत्वपूर्ण तथ्य दिये गये हैं। प्रथम यह कि वृत्र जड़ है प्रकृति का ही विकार है। द्वितीय यह कि स्वयं सोने वाला है अर्थात् ईश्वरीय प्रकाश के अभाव में प्रकृति सृष्टि उत्पादन सामर्थ्य से रहित है। सात नीचे की प्रकृतियां सप्तवर्गी परमाणु प्रवाह की द्योतक हैं जिनके विकास को वृत्र नामक प्राकृतिक अवरोध रोके था। अन्तिम बात यह है कि वृत्र समूचा ही वह गया अर्थात् वृत्र कोई राक्षस नहीं था वरन् एक प्राकृतिक अवरोध ही था।

इस ऋचा में वज्र से वृत्र पर प्रहार करने की और वृत्र को मारने की बात नहीं है वरन् वज्र से प्रवाहों को खोलने की ही बात है। इस प्रकार जो वृत्र को मारने संबंधी परस्पर विरोधी बातें हैं उनसे यही निष्कर्ष निकलता है कि वृत्र उन्मूलन सृष्टि उत्कर्ष संबंधी एक प्राकृतिक चरण ही है जिसको दर्शाने वाले विविध विवरण मात्र कहने की शैली हैं जिससे परस्पर विरोध वास्तविक नहीं है।

पूर्व अध्यायों में प्रस्थापित देश और काल संबंधी सभी साक्ष्यों के विपरीत यह मान भी लिया जाय कि वृत्र राक्षस था जिसने सप्तसिन्धु प्रदेश (पंजाब सीमा प्रान्त) पर आधिपत्य स्थापित कर लिया था तो भी, ऋचाओं में बार-बार कहे गये इस तथ्य को कि वृत्र ने प्रवाहों को रोक लिया था और वृत्र उन्मूलन से रुके हुए प्रवाह खुल गये, समझाना कठिन है। प्रवाह कैसे रुक गये थे और कैसे फिर चल पड़े यह एक प्रहेलिका ही है जिसका ऐतिहासिक हल नहीं है।

सूक्त की आगामी ऋचा है- (ऋ. १६३)

---

1 भाष्यकार पं. जयदेव विद्यालंकार

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अक्षोदयच्छवसा क्षाम बुध्नं वाणं वातस्तविषीभिरिन्द्रः ।
दृळहान्यौभ्नादुशमान ओजो ऽवाभिनत्ककुभः पर्वतानाम् ॥

भाष्य — वातः तविषीभिः वाः न वायु जैसे अपने बलवान थपेड़ों से पानी को क्षुब्ध और चपल कर देता है उसी तरह इन्द्र ने बुध्नं क्षाम द्युलोक पृथ्वी को शवसा अपने बल से अक्षोदयत् गतिशील कर दिया ।
उशमानः ओजः बल की कामना करते हुए इन्द्र ने दृढ़ानि दृढ़ गढ़ों को ओभ्नात् तोड़ते हुए पर्वतानाम् ककुभः अव अभिनत् पर्वतों को दिशाओं की ओर दूर तक फाड़ दिया ।

ईश्वर ने प्रकृति के दृढ़ गढ़ों को तोड़कर सृष्टि रचने की इच्छा की । उसने मूल तत्त्व के पहाड़ों को तोड़कर दिशाओं में फैलाया जिससे निहारिकाओं (गैलेक्सियों) की उत्पत्ति हुई जिनसे आगामी चरण में ज्योतिर्पिण्डों व पृथ्वी की उत्पत्ति हुई । वायु जैसे जल को प्रेरित करती है ऐसे ही वह ईश्वर द्युलोक व पृथ्वी को अपने बल से चला रहा है । आगामी ऋचा है– (क्र. १६४)

अभि प्र दद्रुर्जनयो न गर्भं रथा इव प्र ययुः साकमद्रयः ।
अतर्पयो विसृत उब्ज ऊर्मीन्त्वं वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥

भाष्य — हे इन्द्र इन्द्र जनयः न गर्भम् स्त्रियाँ जैसे गर्भ का विकास करती हैं वैसे ही अद्रयः मूल तत्त्व के पर्वत (तेरे द्वारा स्थापित) सृष्टि बीजरूप गर्भ को अभि सब ओर से (प्र ददृ्रु, √द्रा = दौड़ना लिट् ल.) ले गये हैं अर्थात् उस बीजरूप गर्भ का सर्वांगीण विकास करते हैं तथा रथा इव रथों के समान ही अद्रयः मूल तत्त्व को समाहित करने वाले द्रव्यमण्डल अपने गन्तव्य को साकं ययुः एक साथ ही संयुक्त हो गये । त्वं हे इन्द्र, तूने वृतान् सिन्धून् अरिणाः रुके हुए प्रवाहों को चलाया विसृतः अतर्पयः तथा विशेष फैले हुए प्रवाहों को परिपूर्ण किया वैसे ही तू (ऊर्मीन् उब्ज, √उब्ज् = विवश करना, वै. व्या.) उनकी तरंगों को प्रेरित कर ।

आदि सृष्टिकाल में मूल तत्त्व का महामण्डलाकार किरणमय पिण्ड उद्भूत होता है[1] जो विखण्डित हो अनेक पर्वताकार मात्राओं (masses) के रूप में परिणत हो दसों दिशाओं में प्रयाण करता है इन्हीं खण्डों से निहारिकायें (galaxies) उद्भूत होती हैं और सप्तवर्गी परमाणु प्रवाहित होते हैं यह ऋचा में कहा गया है। पार्थिव पहाड़ों की बात ऋचाओं (क्र. १८६, १६३, १६४) में नहीं है क्योंकि ये

1 तस्माद् विरालजायत । ऋ. १०/६०

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घटनाएँ आकाशवर्ती हैं तथा आदि सृष्टिकाल की हैं जब नक्षत्रों की उत्पत्ति नहीं हुई थी। आदि सृष्टिकाल में आकाशवर्ती मौलिक द्रव्य की मण्डलाकार मात्राओं (masses) को कहीं बादल, कहीं पर्वत, कहीं सिन्धु और कहीं शम्बर के किले आदि कहा गया है इसे यथावत् समझना आवश्यक है।

सूक्त की ८ वीं ऋचा है– (क्र. १६५)

पूर्वीरुषसः शरदश्च गूर्ता वृत्रं जघन्वाँ असृजद्वि सिन्धून् ।
परिष्ठिता अतृणद् बद्बधानाः सीरा इन्द्रः स्रवितवे पृथिव्या ॥

भाष्य— **वृत्रं जघन्वान्** वृत्र को मारने वाले इन्द्र ने (**गूर्ताः**, √गुर् = अभिनंदन करना, वै. व्या.) अभिनंदनीय **पूर्वी उषसः शरदः च** प्राचीन सृष्टिकालों और सूर्य संचालित वर्षों को तथा **सिन्धून् असृजत्** तत्त्व प्रवाहों को प्रकट किया। **परिष्ठिता** चारों ओर स्थित **बद्बधानाः** तटों को तोड़ती हुई **सीराः** नदियों को **पृथिव्या स्रवितवे** पृथ्वी पर बहने के लिये **अतृणत्** फोड़ दिया।

इस ऋचा में पृथ्वी पर नदियों का बहना पृथक् कहा गया है। पृथ्वी की नदियों की उत्पत्ति में पंजाब की नदियों की उत्पत्ति भी सम्मिलित है किन्तु 'सिन्धून्' अर्थात् सप्तसिन्धु की उत्पत्ति वृत्र वध और सृष्टिकाल के साथ पृथक् कही गयी है जिसका स्पष्ट आशय यह है कि सप्तसिन्धु सृष्टि विकास क्रम की एक महत्वपूर्ण कड़ी है और जैसा कहा जा चुका है सप्तसिन्धु सप्तवर्गी परमाणु (सप्त अर्ध गर्भाः) प्रवाह के द्योतक हैं।



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय १५

मरुतो देवता

अध्याय १३ में मरुतों के भौतिक स्वरूप पर प्रकाश डाला जा चुका है। वहाँ यह दर्शाया जा चुका है कि मरुत रासायनिक द्रव्य नहीं (क्र. १६७) है। वहाँ यह भी दर्शाया जा चुका है कि मरुत शक्ति असीमित क्षेत्र (infinite range) में बल का प्रतिनिधित्व करने वाली शक्ति है। यह बल दो प्रकार का है एक प्रकार का बल विद्युत प्रवाह से संबंधित (अनु. ६, अ. १३) है और दूसरे प्रकार का बल गुरुत्वाकर्षण बल है जो लोकों को अपनी-अपनी दीर्घा पर (अनु. ५ अ. १३) चलाता है।

ऋचाओं में मरुतों के जिस स्वरूप का विवरण दिया गया है उससे निश्चयात्मक रूप से उनका भौतिक स्वरूप उभरकर सामने आया है। उससे ऐतिहासिक पक्ष न तो प्रकट होता है न ही उस विवरण की किसी शस्त्रधारी सेना में संगति होती है। क्रमांक १६० की ऋचा कहती है--

आ यात मरुतो दिव अन्तरिक्षात् अमात् उत।

हे मरुतो! द्युलोक से और असीम अन्तरिक्ष से यहाँ आओ।

इस विवरण से स्पष्ट है कि मरुत द्युलोकवर्ती शक्ति है या देवता है और उसका क्षेत्र असीम अन्तरिक्ष है। इस विवरण से ऐतिहासिक पक्ष धराशायी होता है और पार्थिव शस्त्रधारी सेना वाला पक्ष भी तिरोहित होता है। मरुत यदि देवता है, दिव्य शक्ति है तो यह निश्चय ही ईश्वरीय भौतिक शक्ति का ही प्रतिनिधित्व करती है वर्णन में रोचकता लाने के लिये इस शक्ति का वैयक्तीकरण किया गया है और ईश्वरीय भौतिक शक्ति को ईश्वरीय सकाश से चेतनवत माना गया है इससे बहुदेववाद का सृजन नहीं होता। ऋग्वेद (१०/९०) का यह वचन ध्यातव्य है कि--

पुरुष एवेदं सर्वम् यद् भूतं यच्चभाव्यम्।

यह समस्त आकाश, ब्रह्माण्ड एकमात्र पुरुष से परिपूर्ण है, व्याप्त है, आच्छादित है वही भूत में था वही भविष्य में रहेगा।

इस मूल उक्ति के दर्पण में भौतिक शक्तियों, देवताओं की सत्ता का रहस्य निहित है।

यह मैं नहीं कहता कि वेद में इतिहास नहीं है किन्तु जो कुछ भी होगा उसकी भूमिका गौण है जो केवल वेद की विज्ञान को निखारने के लक्ष्य से है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेना, राजा आदि को कैसा होना चाहिये इस संदर्भ में मरुत आदि दैवी शक्तियों का प्रयोग उपमा देने के लिये किया गया है कि सेना मरुतों की शक्ति की तरह कैसी सुदृढ़, गतिशील, आक्रामक एवं सबको अपने आधिपत्य में कर लेने वाली होना चाहिये। ऋचाओं में मरुतों के जो लक्षण दिये गये हैं उन्हें ध्यान में रखना आवश्यक है यथा–

मरुतों से यह पृथ्वी अपने मार्ग पर जाने वाली हुई।

मरुतों से प्रकाशित लोक (अपनी-अपनी कक्षा में) गति करते हैं।

मरुतों से अन्तरिक्ष के लोकों के मार्ग सुगम बने। (क्र. १६३)

ऋषि ने तो देवता के लक्षण का दिग्दर्शन करा दिया, अब मरुत देवता किस भौतिक शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है इसका निर्णय हमें स्वयं करना है। और देखिये –

वे नरः श्रेष्ठ विद्युत् महसः विद्युत की आभा से बड़े हुए अरम दिव्यवः बादलों को विद्युत से भरने वाले वात क्षिपः प्रदीप्त तरंगवत मरुत पर्वतच्युतः पर्वतों को हिलाने वाले हैं।

इस विवरण से मरुतों का भौतिक शक्ति होना ही अभिप्रेत है (क्र. १७१) और देखिये– (क्र. १७२)

अगृभीत शोचिषोऽनश्वदां यन्न्ययातना गिरिम्।
न पकड़ी जाने वाली किरणों से युक्त बिना अश्व के पर्वत के पार गये हो।

अब विचार करिये, सूर्य प्रकाश अस्पृश्य नहीं है अतः मरुतों की गति अदृश्य किरणों के द्वारा होती है तो ये कौन-सी किरणें हैं, कौन-सी भौतिक शक्ति है? अल्ट्रावायलेट किरण, इन्फ्रारेड किरण अदृश्य किरण होती है, चुम्बकीय बल रेखाएँ अदृश्य होती हैं, विद्युत बल रेखाएँ अदृश्य होती हैं तो मरुत शक्ति इन्हीं में से है।

और मरुत बिना अश्व के चलते हैं अतः जहाँ अश्वादि का विवरण आया है वे मात्र रूपक हैं, वास्तविक विवरण नहीं। मरुतों के रथ का वर्णन तो पूर्व अध्याय में ही आ चुका है कि इनके रथ पर द्यावा पृथ्वी सवार हैं (क्र. १८१), तो रथ, अश्व, अस्त्र-शस्त्रादि का विवरण मात्र रूपक ही है उसे इसी संदर्भ में लेना चाहिये। अब मण्डल १, सूक्त ६४ की ऋचाओं से मरुतों के स्वरूप पर प्रकाश डाला जाता है। इस सूक्त का ऋषि नोधा गौतम है तथा देवता अग्नि और मरुत हैं। सूक्त की प्रथम ऋचा है– (क्र. १६६)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृष्णे शर्धाय सुमखाय वेधसे नोधः सुवृक्तिं प्र भरा मरुद्भ्यः ।
अपो न धीरो मनसा सुहस्त्यो गिरः समञ्जे विदथेष्वाभुवः ॥

भाष्य— नोधः हे नोधः वृष्णे ज्ञान वर्षा के लिये शर्धाय बल के लिये सुमखाय उत्तम रीति से ज्ञानयज्ञ के संपादन के लिये वेधसे उत्तम ज्ञान धारण करने के लिये मरुद्भ्यः मरुतों के लिये सु वृक्तिं प्र भर उत्तम काव्य, स्तुति वचन धारण कर, की रचना कर ।
धीरः धैर्यवान् पुरुष सु हस्तयः उत्तम हस्तकौशल युक्त अपः न जैसे कर्म करता है वैसे ही मैं विदथेषु ज्ञानमय विचारों के संपादन में आ भुवः गिरः सर्व समर्थ वाणी सं अञ्जे सम्यक् प्रकार से धारण करता हूँ ।

आगामी ऋचा है- (क्र. १६७)

ते जज्ञिरे दिव ऋष्वास उक्षणो रुद्रस्य मर्या असुरा अरेपसः ।
पावकासः शुचयः सूर्या इव सत्वानो द्रप्सिनो घोरवर्पसः ॥

भाष्य— ते वे (ऋष्वासः, ऋष्व = बृहत्, निघ. ३/३) महान् हुए (उक्षणः, √ उक्ष = बढ़ना) प्रकृति का विस्तार करने वाले असुराः मूल शक्ति रूप प्राण देने वाले अरेपसः निष्कलंक, निर्मल हुए पावकासः पवित्र करने वाले रुद्रस्य मर्याः रुद्रों की मर्यादित सन्तान सूर्याः इव शुचयः सूर्य की किरणों की तरह पवित्र, तेजस्वी सत्वानः सत्स्वरूप मूल शक्ति को धारण करने वाले द्रप्सिनः ईश्वर प्रदत्त मूल शक्ति के अंश[1] को धारण करने वाले घोर वर्पसः भयंकर रूप वाले दिवः जज्ञिरे द्युलोक से उत्पन्न हुए ।

इस ऋचा में यह कहा गया है कि मरुत मूल शक्ति से उत्पन्न प्रकृति का विस्तार करने वाली सत्स्वरूप निर्मल किन्तु भयंकर रूप वाली प्राकृतिक द्रव्यों को प्राणशक्ति प्रदान करने वाली शक्ति है अर्थात् मरुतों के सौजन्य से द्रव्य संचार करते, गति करते, परस्पर सम्पर्क करते व क्रिया करते हैं ।

आगामी ऋचा है- (क्र. १६८)

युवानो रुद्रो अजरा अभोग्घनो ववक्षुरध्रिगावः पर्वता इव ।
दृळ्हा चिद्विश्वा भुवनानि पार्थिवा प्रच्यावयन्ति दिव्यानि मज्मना ॥

भाष्य— युवानः सदा युवा रहने वाले अ-जराः क्षीणता से रहित अभोक्-

1 द्रप्सः प्रकृति का सारभूत तेज अंश है देखिये ग्रन्थ भाग १, अ. १२
यस्ते द्रप्सः स्कन्दति यस्ते अंशुर्बाहुच्युतः ···· ····

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धनः उपभोग न किया जा सके ऐसे धन हैं सता हैं (**अद्रिगावः**, निघ. ४) अंकुश का कार्य करने वाले अर्थात् हाथी को जैसे अंकुश वश में करके नियंत्रित करता है **इव पर्वताः** वैसे ही द्रव्य के बड़ी-बड़ी मात्राओं, पहाड़ों को नियंत्रित करके **ववक्षुः** आगे बढ़ें ।

पार्थिवा पृथ्वीवत लोक **दिव्यानि विश्वा भुवनानि** आकाशस्थ सभी लोकों **दृळ्हा चित्** कितने भी दृढ़ क्यों न हों **मरुतः प्र चयावयन्ति** इनके बल से अच्छी तरह विचलित हो जाते हैं ।

मरुत क्षीणता से रहित नित्य शक्ति है अंकुश जैसे हाथी को नियंत्रित करता है वैसे ही मरुत सूक्ष्म शक्ति रूप होते हुए भी बड़े-बड़े आकाशस्थ लोकों को संचालित करते हैं । आगामी ऋचा है– (क्र. १६६)

चित्रैरञ्जिभिर्वपुषे व्यञ्जते वक्षः सु रुक्माँ अधि येतिरे शुभे ।
अंसेष्वेषां नि मिमृक्षुर्ऋष्टयः साकं जज्ञिरे स्वधया दिवो नरः ॥

भाष्य — **वपुषे चित्रैः अञ्जिभिः वि अञ्जते** शरीर को अद्भुत लेपों के द्वारा विशेष लेपन करते हैं । **शुभे** कल्याण के लिये **वक्षः सु** छातियों पर **रुक्मान्** चमकते हुए आवरण **अधि येतिरे** पूर्ण रूप से तने रहते हैं ।
एषां अंसेषु इनके कंधों पर **ऋष्टयः** तलवार की तरह दुधारा **नि मिमृक्षुः** नियंत्रित रहती है । **दिवः नरः स्वधया साकं जज्ञिरे** द्युलोक की ये श्रेष्ठ शक्तियाँ मूल तत्त्व की स्वशक्ति से तत्क्षण प्रादुर्भूत हुए ।

भावार्थ — इस ऋचा में रूपक में यह कहा गया है कि मरुत अद्भुत किरणों के आवरण से आच्छादित हुई कार्य करती है ये विद्युत वाहक हैं तथा अल्ट्रावायलेट व इन्फ्रारेड, क्ष-किरणें (x-rays) आदि से सशक्त हुई दुधारा तलवार की तरह द्रव्यों की काट-छांट करते हुए कार्यरत हैं । यह दिव्य शक्ति मूल तत्त्व से तत्क्षण प्रादुर्भूत हुई ।

आगामी ऋचा है– (क्र. २००)

ईशानकृतो धुनयो रिशादसो वातान्विद्युतस्तविषीभिरक्रत ।
दुहन्त्यूधर्दिव्यानि धूतयो भूमिं पिन्वन्ति पयसा परिज्रयः ॥

भाष्य — **ईशान कृतः** आधिपत्य करते हुए **धुनयः** कम्पन करते हुए **रिशादसः** विरोध का परिष्कार करते हुए **तविषीभिः** बलों से, शक्तियों से **विद्युतः वातान्** विद्युत प्रवाह को **अक्रत** बनाया है ।
धूतयः कम्पन उत्पन्न करते हुए **दिव्यानि ऊधः** दिव्य अर्थात् सृष्टि उत्पादक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वोत्कृष्ट रस दुहन्ति का दोहन करते हैं, को उत्पन्न करते हैं। भूमिम् पृथ्वी को या आधारभूत द्रव्य को (परिञ्जयः, पृथुञ्जयः = अंकुश, निघ. ४/२) सब तरह से आगे बढ़ाते हुए अथवा जैसे अंकुश हाथी को वैसे नियंत्रित करते हुए पयसा पिन्वन्ति तरल से पुष्ट करते हैं।

मरुतों ने विद्युत प्रवाह को नियंत्रित किया है अतः मरुत विद्युत बल (electrical force) से संबंधित शक्ति है। मरुतों ने द्रव्य में कम्पन (vibrations) उत्पन्न करके आदिकाल में सर्वश्रेष्ठ तरलों की उत्पत्ति की। उन्होंने पृथ्वी को रस से पुष्ट किया।

आगामी ऋचा है– (क्र. २०१)

पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः पयो घृतवद् विदथेष्वाभुवः।
अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिनमुत्सं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम् ॥

भाष्य — सुदानवः उत्तम दानी मरुतः मरुत गण विदथेषु ज्ञानमय यज्ञों, सृष्ट्युत्पादक ज्ञानमय कार्यों में आ भुवः अच्छे प्रकार स्थित हो (घृतवत्, आग्नेयं वै घृतं, शत.) प्रकाश की तरह पयः रस का व अपः मूल तत्त्वों के तरलों की पिन्वन्ति वृद्धि करते हैं। वे मरुतगण अत्यं न अश्वों की तरह वाजिनं शक्तिशाली (द्रव्य के) मेघ को (मिहे, तुम. कृ.) गतिशील करने के लिये वि नयन्ति विशेष प्रकार से ले जाते हैं स्तनयन्तं गर्जने वाले अर्थात् प्रतिष्ठित पद पर आसीन अक्षितं अक्षय उत्सं स्रोतों का दुहन्ति दोहन करते हैं।

मरुतगण सृष्टि के विकास के लिये मौलिक तरलों की वृद्धि करते हैं वे द्रव्य समूहों को बलपूर्वक बल की दिशा में ले जाते हैं तथा प्रकृति के अक्षय स्रोतों को कार्यशील बनाने वाले (गुरुत्वाकर्षण व विद्युत रूप) बल हैं।

आगामी ऋचा है– (क्र. २०२)

महिषासो मायिनश्चित्रभानवो गिरयो न स्वतवसो रघुष्यदः।
मृगा इव हस्तिनः खादथा वना यदारुणीषु तविषीरयुग्ध्वम् ॥

भाष्य — महिषासः बलवान मायिनः रूप बदलने वाले, छिपे हुए रहने वाले चित्रभानवः अद्भुत कान्तिमान् गिरयः न पहाड़ों के समान स्वतवसः अपने स्वयं के पराक्रम पर स्थिर होने वाले रघु स्यदः तीव्र गति से प्रवाहित होने वाले हस्तिनः मृगा इव हाथियों की तरह स्थिर तथा मृगों की तरह वेगवान् हे मरुतो यत् जब तुम आरुणीषु रक्तिम किरणों के तविषीः समूह को अयुग्ध्वम् संयुक्त करते हो तब तुम वना खादथ जंगल को जलाकर नष्ट कर देते हो।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मरुत अपने स्वयं के बल पर स्थिर रहने वाली किन्तु तीव्र गति से चलने वाली बल रेखाएँ हैं इनकी विद्युत शक्ति दर्शनीय कान्ति वाली होती है। जब सूर्य की किरणों की ताप शक्ति एक स्थान पर केन्द्रित होती है तो वन में दावानल प्रज्वलित हो उठता है।

आगामी ऋचा है- (क्र. २०३)

सिंहा इव नानदति प्रचेतसः पिशा इव सुपिशो विश्ववेदसः।
क्षपो जिन्वन्तः पृषतीभिरृष्टिभिः समित्सबाधः शवसाहिमन्यवः॥

भाष्य— प्रचेतसः पिशाः इव सुपिशः उत्तम ज्ञानी की तरह अलंकृतों के से सजे हुए विश्ववेदसः सब ऐश्वर्यों से युक्त (सिंहा इव नानदति, √नद्, यङ्. लुगन्त प्र. पु. बहु व.) सिंहों की तरह बार-बार गर्जते हैं।
पृषतीभिः ऋष्टभिः धब्बे वाली रंग-बिरंगी किरणरूप धारों से क्षपः जिन्वन्तः जल को गतिशील करने वाले अहिमन्यवः सर्प के क्रोध की तरह शवसा बल से सम् इत् एक साथ सबाधः मारते हुए जाते हैं।

मरुतों के बल रूप कार्य से बादलों में रंग-बिरंगी किरणें उत्पन्न होती तथा बादलों का घोष उत्पन्न होता है। ऋचा में अलंकारिक वर्णन है। आगामी ऋचा है- (क्र. २०४)

रोदसी आ वदता गणश्रियो नृषाचः शूराः शवसाहिमन्वयः।
आ बन्धुरेष्वमतिर्न दर्शता विद्युन्न तस्थौ मरुतो रथेषु वः॥

भाष्य— हे मरुतः मरुतो, गणश्रियः समूह के रूप में शोभा पाने वाले नृषाचः नेतृत्व से संयुक्त हुए शूराः बलवान् (अ-हि-मन्यवः √हि = प्रेरित करना) किसी से प्रेरित किये जाने वाले बल को न धारण करने वाले अर्थात् स्वशक्ति से प्रेरित शवसा बल से रोदसी पृथ्वी आकाश को आ वदत अपनी गर्जना से भर देते हो। अमति न रूपवान् के समान विद्युत न दर्शिता विद्युत की तरह दर्शनीय वः हे मरुतो तुम रथेषु गमनशील शक्तियों के बन्धुरेषु बन्धनों में आ तस्थौ स्थित हुए हो।

मरुत समूह रूप में रहते हैं वे विद्युत बल को घोष बल (sound energy) में परिवर्तित कर देते हैं। गतिशील द्रव्य की मात्रा (mass) से मरुत शक्ति बंधी हुई है यह लक्षण निश्चय ही गुरुत्वाकर्षण बल का है।

आगामी ऋचा है- (क्र. २०५)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्ववेदसो रयिभिः समोकसः संमिश्लासस्तविषीभिर्विरप्शिनः।
अस्तार इषुं दधिरे गभस्त्योरनन्त शुष्मा वृषखादयो नरः॥

भाष्य— विश्ववेदसः रयिभिः अनेक प्रकार के द्रव्यों से युक्त होने वाले सम्-ओकसः एक-से स्थान में रहने वाले सं-मिश्लासः तविषीभिः सब प्रकार के बलों से संयुक्त हुए (वि-रप्शिनः, निरु. ६/२१) आवाज न करते हुए अनन्त शुष्माः असीम सामर्थ्य, बल वाले वृष-खादयः नरः बल ही जिनका भोजन है ऐसे श्रेष्ठ (अस्तारः, √स्तृ = बिखेरना) जो बिखेरे न जा सके, अच्युत, अपने गन्तव्य मार्ग पर दृढ़ता से आरुढ़ गभस्तयोः बल रूप दो बाहुओं में इषुं बाण को दधिरे धारण किये हैं।

मरुत गण सब प्रकार के बलों से संयुक्त हुए सब प्रकार के द्रव्यों में स्थित हैं। मरुतों का प्रमुख कार्य द्रव्य में, कण-कण में बल को संचार व्यवस्था स्थापित करना है। इनकी सामर्थ्य असीम है, इनका क्षेत्र असीम है। बल रेखायें अपने मार्ग पर दृढ़ता से स्थित होती हैं।

आगामी ऋचा है– (क्र. २०६)

हिरण्ययेभिः पविभिः पयोवृध उज्जिघ्नन्त आपथ्योऽन पर्वतान्।
मखा अयासः स्वसृतो ध्रुवच्युतो दुधक्रतो मरुतो भ्राजदृष्टयः॥

भाष्य— पयोवृधः रस के वर्धक हिरण्ययेभिः पविभिः किरणों रूप पहियों के द्वारा आपथ्यः न राहगीर जैसे मार्ग के अवरोधों को दूर कर देते हैं वैसे ही ये मरुत गण पर्वतान् पर्वतों को उत् जिघ्नन्ते अपने मार्ग से दूर हटा देते हैं। मखाः सृष्टि यज्ञ करने वाले स्व सृतः अपने सामर्थ्य से प्रवाह, गमन करने वाले दु-धक्रतः दुर्धर्ष पराक्रम को धारण करने वाले ध्रुव-च्युतः स्थिर लोकों को हिला देने वाले मरुतः मरुत गण भ्राजत्-ऋष्टयः चमकते दुधारों की तरह विद्युत प्रवाह को धारण करते हुए अयासः जाते हैं।

स्व-सामर्थ्य वाले पर्वतों को हिला देना, लोकों को हिला देना यह मरुतों का प्रमुख लक्षण गुरुत्वाकर्षण बल संबंधी है। दुर्धर्ष बल वाले मरुतगण भौतिक विज्ञान की बल रूप शक्ति है। आगामी ऋचा है– (क्र. २०७)

घृषुं पावकं वनिनं विचर्षणिं रुद्रस्य सूनुं हवसा गृणीमसि।
रजस्तुरं तवसं मारुतं गणमृजीषिणं वृषणं सश्चत श्रिये॥

भाष्य — (घृषं, √घृष् = माँजना) घर्षण करते हुए पावकं अग्नि के समान

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेजस्वी (**वनिनं**, वनं = किरण, निघ. १/५) किरणों के समान सघन **विचर्षणिं** विशेष ज्ञान करने वाले को **रुद्रस्य सूनुं** रुद्र शक्ति के पुत्र का **हवसा गृणीमसि** हम आहुति से आदर करें, स्तुति करें।

रजस् तुरम् लोक को तीव्रगामी बनाने वाले की **तवसम्** बलवान् की **ऋज्रीषिणम्** सरल मार्ग पर चलने वाले **वृषणं मारुतं गणं** बलवान्, शक्ति वर्षाने वाले मारुत गणों को **श्रिये** ऐश्वर्य बढ़ाने के लिये **सश्चत** हे प्रजाजनों, तुम प्राप्त करो।

ईश्वरीय शक्ति होने के कारण मरुत शक्ति को ईश्वरीय सकाश से ज्ञानों की तरह कार्य करने वाला कहा गया है व उनकी स्तुति की गयी है। मरुतों का लक्षण यह है कि वे सरल मार्ग पर चलते हैं। बल बढ़ाने वाले मरुत बल से संबंधित हैं ये रुद्र शक्ति से उत्पन्न होते हैं इनका प्रमुख लक्षण यह है कि ये लोकों को दीर्घाओं पर चलाते हैं। अतः गुरुत्वाकर्षण बल रूप शक्ति ही मरुत गणों का प्रतिनिधित्व करती है।

आगामी ऋचाओं में मरुत गणों की उपमा से समाज में वीर पुरुषों का आदर करने का आह्वान किया गया है। इसमें यह विचार निहित है कि जिस प्रकार सृष्टि के सफल विकास के लिये मरुत गण कार्य करते हैं उसी समता से समाज की रक्षा व समृद्धि के लिये मरुत तुल्य वीर पुरुष कार्य करते हैं। आगामी ऋचा है– (क्र. २०८)

प्र नू स मर्तः शवसा जनाँ अति तस्थौ व ऊती मरुतो यमावत।
अर्वद्भिर्वाजं भरते धना नृभिरापृच्छ्यं क्रतुमा क्षेति पुष्यति॥

भाष्य — मरुतः मरुत सदृश्य वीर पुरुषों! **वः** आप लोग ऊती संरक्षण शक्ति द्वारा **यम् आवत** जिसकी रक्षा करते हो **सः मर्तः** वह पुरुष **जनान्** मानवों में **नु अति तस्थौ** शीघ्र उच्च स्थान पर आसीन होता है। वह **अर्वद्भिः** अश्वारोहियों की सहायता से **वाजं भरते** संग्राम को विजय करता, ऐश्वर्य को धारण करता है। जो **आपृच्छ्यम्** सराहनीय **क्रतुम्** यज्ञ को, शुभ कर्म को **पुष्यति** वृद्धि करता है वह **नृभिः** नायकों के साथ **धना आ क्षेति** धन का स्वामी होता है।

आगामी ऋचा है– (क्र. २०९)

चर्कृत्यं मरुतः पृत्सु दुष्टरं द्युमन्तं शुष्मं मघवत्सु धत्तन।
धनस्पृतमुक्थ्यं विश्वचर्षणिं तोकं पुष्येम तनयं शतं हिमाः॥

भाष्य— मघवत्सु वैभव संपन्न लोगों में **चर्कृत्यं** उत्तम कार्य करने वाला **पृत्सु दुस्तरं** संग्रामों में अपराजित **द्युमन्तं** तेजस्वी **शुष्मं** बलशाली को **मरुतः** हे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नायकों तुम धत्तन धारण करो। (धन स्पृतम्, √स्पृ = जीतना, क्तान्त स्पृत। धन जीतने वाले उक्थ्यं प्रशंसित विश्वचर्षणिं सर्वद्रष्टा तनयम् पुत्रादि तोकम् सन्तान को शतं हिमा हम सौ वर्षों तक पुष्येम पुष्ट करें।

जो व्यक्ति शस्त्र विद्या में पारंगत है वे वैभव संपन्न जनों को कष्ट न दें वरन् अपने उत्तम कर्म से समाज को समृद्ध करें। धन को अर्जन करने वाले संकीर्ण दृष्टि वाले न हों वरन् वे सब प्रकार से समाज के विकास को दृष्टिगत करते हुए कार्य करें जिससे वे समाज में प्रशंसा के पात्र हों। ऐसे व्यक्तियों के १०० वर्ष जीने की कामना समाज अवश्य करेगी अन्य की नहीं।

आगामी ऋचा है– (क्र. २१०)

नू ष्ठिरं मरुतो वीरवन्तमृतीषाहं रयिमस्मासु धत्त।
सहस्रिणं शतिनं शूशुवांसं प्रातर्मक्षू धियावसु जगम्यात्॥

भाष्य— हे मरुतः मरुत आप नु शीघ्र ही स्थिरं स्थायी ऋतीषाहम् शत्रुओं के विनाशक शतिनं सहस्रिणं सैकड़ों हजारों वीरवन्तं वीर पुरुषों से युक्त रयिं धन को अस्मासु हममें धत्त धारण करिये। प्रातः प्रातःकाल, ज्ञान की प्रभात वेला मक्षू शीघ्र धियावसुः ज्ञान ऐश्वर्य के धनियों (शुशुवांसं, √शू = सूजना का क्वस्वन्त) के विस्तार को जगम्यात् प्राप्त करें।

ऋचा में दुष्ट विनाशक क्षत्रिय वर्ग और ज्ञान ऐश्वर्य के धनी ब्राह्मण वर्ग के होने की कामना की गयी है इन्हीं के होने से समाज दोषों से मुक्त हो ज्ञान शान्ति और समृद्धि की ओर अग्रसर होता है दुष्ट और दीर्घसूत्री लोग ही समाज को नष्ट भ्रष्ट करते हैं उत्तम क्षत्रिय वर्ग वही है जो दुष्टों से समाज की रक्षा करता है।

अब इसी मंडल के सूक्त ८५ से मरुतों के विषय पर प्रकाश डाला जाता है। सूक्त का ऋषि गोतमो राहूगणः है तथा देवता मरुतः है। सूक्त की प्रथम ऋचा है– (क्र. २११)

प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयो यामन् रुद्रस्य सूनवः सुदंससः।
रोदसी हि मरुतश्चक्रिरे वृधे मदन्ति वीरा विदथेषु घृष्वयः॥

भाष्य— यामन् जाने के पहर जनयः न शुम्भन्ते स्त्रियां जैसे सजती हैं वैसे ही रुद्रस्य सूनवः रुद्रों के पुत्र ये मरुत सप्तयः सुदंससः उत्तम दांतों वाले अश्वों पर शुम्भन्ते शोभायमान होते हैं। मरुतः मरुतों ने रोदसी वृधे द्युलोक पृथ्वी की वृद्धि के लिये (चक्रिरे, √कृ लिट् ल.) कार्य किया है। घृष्वयः घर्षण के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इच्छुक वीराः वीर गण (विदथेषु, विदथानि = ज्ञान समूह, निरु. ६/७) ज्ञानमय सृष्टि सृजन में मदन्ति आनन्दित होते हैं।

मरुत शक्ति रुद्र शक्ति से उत्पन्न होती है अर्थात् मरुत शक्ति का स्रोत रुद्र शक्ति है। ये तीव्रगामी हैं और विद्युत रूप सुन्दर दांतों से युक्त हैं। मरुतों ने द्युलोक पृथ्वी की वृद्धि की है। आगामी ऋचा है- (क्र. २१२)

त उक्षितासो महिमानमाशत दिवि रुद्रासो अधि चक्रिरे सदः।
अर्चन्तो अर्कं जनयन्त इन्द्रियमधि श्रियो दधिरे पृश्निमातरः॥

भाष्य — रुद्रासः दिवि सदः अधि चक्रिरे रुद्रों ने आकाश में आवास बनाया है ते उक्षितासः उन बढ़ते हुओं ने (महिमानम् आशत, √अंश् लुङ् धातु) महान् महिमा को प्राप्त किया है। ये रुद्र अर्कं अर्चन्तः इन्द्रियम् जनयन्तः प्रकाश का आश्रय लेते हुए बल को उत्पन्न करते हैं। (पृश्निमातरः, पृश्निः = नभ, निघ. १/४, पृश्निः = तारा समूह से युक्त आकाश, कोश) आकाशस्थ द्रव्य रूप माता वाले इन रुद्रों ने श्रियः दधिरे श्री को धारण किया है।

रुद्रों का उत्पत्ति स्थान आकाश है और आकाश में ही इनका प्रसार होता है रुद्र शक्ति बल का स्रोत है। आगामी ऋचा है- (क्र. २१३)

गोमातरो यच्छुभयन्ते अञ्जिभिस्तनूषु शुभ्रा दधिरे विरुक्मतः।
बाधन्ते विश्वमभिमातिनमप वर्त्मान्येषामनु रीयते घृतम्॥

भाष्य — शुभ्राः तेजस्वी गो-मातरः किरण रूप माता वाले रुद्र यत् जब अञ्जिभिः किरणों के लेपनों द्वारा शुभयन्ते शोभायमान होते हैं तब ये तनूषु वि रुक्मतः दधिरे देहों पर विशेष द्युति धारण करते हैं। विश्वं अभिमातिनं अप बाधन्ते सभी प्रकार की बाधाओं को पूर्ण रूप से दूर करते हैं एषां वर्त्मानि इनके मार्गों पर घृतं अनु रीयते अग्नि वर्ण तेज[1] पीछे-पीछे प्रवाहित होता है।

रुद्र शक्ति किरणों और तेज से संबधित है इनके मार्ग विद्युत प्रवाह से संबंधित है। आगामी ऋचा है- (क्र. २१४)

वि ये भ्राजन्ते सुमखाय ऋष्टिभिः प्रक्षयावयन्तो अक्षयुता चिदोजसा।
मनोजुवो यन्मरुतो रथेष्वा वृषव्रातासः पृषतीरयुग्ध्वम्॥

भाष्य— ये ये सुमखासः उत्तम सृष्टि यज्ञ करने वाले ऋष्टिभिः शस्त्रधारों की तरह तीक्ष्ण विद्युतों के द्वारा वि भ्राजन्ते विशेष रूप से चमकते हैं मनोजुवः

---

1 आग्नेयं वै घृतम्, शत.

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन के समान गतिवान् वृष व्रातासः सामर्थ्यशाली संघ बनाने वाले हे मरुतः मरुतों यत् जब तुमने रथेषु गमनशील साधनों पर पृषतीः रंग-बिरंगी किरणों को (आ अयुग्ध्वम्, √युज् लुङ् धातु) संयुक्त किया तब चित् ओजसा अपने बल से अच्युता प्रच्यावयन्तः न डिगने वाले लोक भी अच्छी तरह हिल जाते हैं।

मरुतों की गति अत्यन्त तीव्र है। मरुत अपने बल से लोकों को अपनी दीर्घा पर चलाते हैं। आगामी ऋचा है– (क्र. २१५)

प्र यद् रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं वाजे अद्रिं मरुतो रेहयन्तः।
उतारुषस्य वि ष्यन्ति धाराश्चर्मेवोदभिर्व्युन्दन्ति भूम॥

भाष्य— हे मरुतः मरुतों यत् जब तुमने वाजे अन्न के लिये, पोषक तत्त्व के लिये अद्रिं बादल को रेहयन्तः गतिशील करते हुए रथेषु गमनशील साधनों, द्रव्यों पर पृषतीः रंग-बिरंगी किरणों को अयुग्ध्वं संयुक्त किया उत तब अरुषस्य प्रदीप्त किरणों की धाराः धारायें वि स्यन्ति बहती हैं चर्म इव चमड़े की तरह भूम उदभिः व्युन्दन्ति भूमि को जलों से गीला करती हैं।

मरुत शक्ति अर्थात् बल से ही बादल चलते हैं व वर्षा होती है। ज्ञातव्य है कि पृथ्वी पर वायु के दबाव (pressure) से ही बादलों की गति नियंत्रित होती है। वर्षा से अन्न की उपज होती है। आगामी ऋचा है– (क्र. २१६)

आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः।
सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः॥

भाष्य— वः तुम्हें रघुष्यदः सप्तयः आ वहन्तु तीव्रगामी शक्तियाँ ले आवें। रघु पत्वानः शीघ्र उड़कर आये हुए आप लोग बाहुभिः शक्ति रूप भुजाओं से (प्र जिगात, √गा लोट् ल.) अच्छी प्रकार जावें। वः तुम्हारे लिये मरुतः हे वीर पुरुषों उरु सदः कृतं हमने विशाल आवास तैयार किये हैं बर्हि आ सीदत आसन पर आकर बैठो मध्वः अन्धसः मादयध्वं मधुर अन्न से मुदित हो।

यहाँ मरुतों के माध्यम से समाज में वीर पुरुषों के होने की आवश्यकता प्रतिपादित करते हुए उनका आह्वान किया गया है और उनका सत्कार करने का निर्देश दिया गया है। आगामी ऋचा है– (क्र. २१७)

तेऽवर्धन्त स्वतवसो महित्वना नाकं तस्थुरुरु चक्रिरे सदः।
विष्णुर्यद्धावद् वृषणं मदच्युतं वयो न सीदन्नधि बर्हिषी प्रिये॥

भाष्य — ते स्वतवसः अवर्धन्त वे अपने स्वयं के बल से बढ़े हैं महित्वना

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाकं तस्थुः अपने महत्व से आकाश में स्थित हुए हैं। उरु सदः चक्रिरे वहां (आकाश में) उन्होंने विशाल आवास तैयार किये हैं। यत् वृष्णं मदच्युतं जिस बलवान्, आनन्द वर्षक की विष्णु ह आवत् व्यापक परमात्मा ही रक्षा करता है प्रिये प्रिय बर्हिषि अधि आसन पर वयः न पक्षी की तरह सीदन् आकर बैठो।

मरुत आकास्थ शक्ति है मरुतों ने आकाश में आवास तैयार किये हैं परमात्मा से रक्षित उस शक्ति का स्वागत करना योग्य है। आगामी ऋचा है (क्र. २१८)

शूरा ईवेद् युयोध्यो न जग्मयः श्रवस्यवो न पृतनासु येतिरे।
भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भयो राजान इव त्वेष संदृशो नरः॥

भा.— शूरा इव इत् युयोध्यः न जग्मयः वीरों के समान युद्ध की इच्छा करते हुए जाने वाले पृतनासु श्रवस्यवः न येतिरे √यत् (लिट् ल.) युद्धों में यश की इच्छा करने वालों की तरह मरुतों ने यत्न किया है, करते हैं राजानः इव त्वेषः संदृशः नरः राजाओं की तरह तेजस्वी दिखाई देने वाले नेता की तरह मरुद्भ्यः मरुतों से विश्वा भुवना भयन्ते समस्त लोक भयभीत होते हैं।

इस ऋचा में मरुतों के लिए कई उपमायें दी गई हैं मरुत युद्धों में यश की इच्छा करने वाले वीरों की तरह यत्न करते हैं इस उपमा से इस बात का निषेध है कि मरुत मानव शूरमा की तरह दिव्य या देवताओं के शूरमा हैं क्योंकि दिव्य शूरमाओं के लिये मानवीय उपमा अपमान जनक है। इसी प्रकार तेजस्वी राजाओं से राजकर्मचारी, प्रजागण आदि जैसे भयभीत होते हैं उसी प्रकार मरुतों से समस्त लोक भयभीत होते हैं। इस उपमा से स्पष्ट है कि मरुत गण ऐसी शक्तियां हैं जिससे लोक कम्पायमान होते हैं और यह शक्ति भौतिक गुरुत्वाकर्षण बल ही है। आगामी ऋचा है (क्र. २१९)

त्वष्टा यत् वज्रं सुकृतं हिरण्ययं सहस्रभृष्टिं स्वपा अवर्तयत्।
धत्त इन्द्रो नर्यपांसि कर्तवेऽहन् वृत्रं निरपामौब्जदर्णवम्॥

भा.— सु-अपाः कौशल पूर्ण कार्य करने वाले त्वष्टा ने यत् हिरण्ययं सहस्रभृष्टिं जिस ज्योतिर्मय हजारों धारवाले सु कृतं अच्छी तरह निर्मित वज्र को अवर्तयत् चलाया या इन्द्र को दिया नरि अपांसि कर्तवे श्रेष्ठों में कार्यों का करने के लिये इन्द्रः धत्ते इन्द्र धारण करता है उसने वृत्रं अहन् वृत्र को मारा। अपां अर्णवं निः ओब्जत्, √उब्ज्=विवश करना (लङ्.) मूल तत्व के सागर को (प्रवाह के लिये) प्रेरित किया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगामी ऋचा में आकाशवर्ती आदिकाल के तत्त्वों की स्थिति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। ऋचा है– (क्र. २२०)

ऊर्ध्वं नुनुद्रेऽवतं त ओजसा दाद्रहाणं चिद् बिभिदुर्वि पर्वतम्।
धमन्तो वाणं मरुतः सुदानवो मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे॥

भाष्य— ते ओजसः ऊर्ध्वं अवतं उन तेजस्वियों ने ऊपर आकाशवर्ती रक्षा पंक्ति को (नुनुद्रे, √नुद् लिट् ल.) आगे बढ़ाया। (दाद्रहाणां, √दृढ़ करना कानजन्त से) अत्यन्त दृढ़ बने हुए पर्वतान् चित् मूल तत्त्व के आकाशवर्ती पर्वतों को उन्होंने वि बिभिदुः विविध प्रकार छिन्न-भिन्न कर दिया।

सोमस्य मदे विकिरण के मद से, शक्ति से युक्त होने से सुदानवः उत्तम दानशील मरुतों ने वाणं धमन्त वाद्यों को तरह घनघोर आवाज करते हुए रण्यानि चक्रिरे संघर्ष किया।

ऊर्जाओं की सघन मात्रा रूप वज्र के प्रहार से आकाशवर्ती मूल तत्त्व के पहाड़ आवाज करते हुए विभक्त हो गये। विकिरण की शक्ति से गुरुत्वाकर्षण बल एवं विद्युत बल का प्रतिनिधित्व करने वाले मरुतों ने मौलिक द्रव्यों के मंडलों में घर्षण संघर्षण की स्थिति उत्पन्न कर दी तथा प्रज्वलित द्रव्य मंडल चारों ओर गतिशील हो गये। इन्हीं मंडलों ने कालान्तर में निहारिकाओं (गैलेक्सियों) और ज्योतिर्पिण्डों का रूप धारण किया। आगामी ऋचा है– (क्र. २२१)

जिह्मं नुनुद्रेऽवतं तया दिशा सिञ्चन्नुत्सं गोतमाय तृष्णजे।
आ गच्छन्तीमवसा चित्रभानवः कामं विप्रस्य तर्पयन्त धामभिः॥

भाष्य— तृष्णजे गोतमाय ज्ञान के प्यासे गोतम ऋषि के लिये अथवा ज्ञान के लिये तृषित के लिये जिह्मं अवतम् कठिन दुस्तर (ज्ञान) मार्ग की रक्षा करने तया दिशा उस दिशा से मरुत गण नुनुद्रे आगे ले गये और उत्सम् असिञ्चन् ज्ञान रस के कुंड को भर दिया।

चित्रभानवः वे अद्भुत दीप्ति से युक्त ईम अवसा आ गच्छन्ति रक्षा के लिये ही आते हैं। विप्रस्य कामं विद्वान् के मनोरथ को धामभिः तर्पयन्त अपनी शक्तियों से तृप्त करते हैं।

ईश्वरीय शक्ति होने के कारण इस ऋचा में मरुत शक्ति का वैयक्तीकरण किया गया है।

सूक्त की अन्तिम ऋचा है– (क्र. २२२)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या वः शर्म शशमानाय सन्ति त्रिधातूनि दाशुषे यच्छतधि ।
अस्मभ्यं तानि मरुतो वि यन्त रयिं नो धत्त वृषणः सुवीरम् ॥

भा. — त्रि धातूनि प्रकृति को तीन मूल धारक शक्तियों से मिलने वाले या वः शर्म जो आपके सुख सन्ति हैं जिन्हें हे मरुतो तुम (शशमानाय, √शम्= परिश्रम करना कानजन्त शशमान) परिश्रम करने वाले दाशुषे दानी के लिये अधि यच्छत अच्छी तरह दिया करते हो तानि उन्हें हे मरुतः मरुतो तुम अस्मभ्यम् वि यन्त हमें भी दो। वृषणः हे वर्षकों, तुम सुवीरम् रयिं नः धत्त उत्तम सन्तानरूप धन हमारे लिये धारण करो।

इस प्रकार यह निश्चय होता है कि मरुत दिव्य (ईश्वरीय भौतिक) शक्ति है जो विद्युत बल तथा सार्वभौम गुरुत्वाकर्षण बल का प्रतिनिधित्व करती है। जहाँ भी मरुतों का विवरण व्यक्ति की तरह हुआ है वहाँ उस दिव्य शक्ति का वैयक्तीकरण हुआ है। वेद में ईश्वर और उसकी प्राकृतिक (भौतिक) शक्तियों को अभिन्न माना गया है। उन प्राकृतिक शक्तियों के भौतिक स्वरूप का यथोचित निखार करते हुए भी ऋषियों ने उनके द्वारा सृष्टि उत्पादन, संरक्षण एवं प्रलय रूप कर्मों को ईश्वरीय इच्छानुसार वहन किये जाने के कारण उन्हें ईश्वर रूप में ही वरण किया है। इस प्रकार जहाँ प्राकृतिक शक्ति के वर्णन से विज्ञान पक्ष उजागर होता है वहीं उस भौतिक शक्ति के ईश्वरीय अंश रूप से ईश्वर में समाहित होने से ईश्वरीय कर्तृत्व रूप में वेद की अध्यात्म विद्या प्रकाश में आती है तथा उस विद्या में दर्शन व विज्ञान पक्ष पृथक् नहीं रह जाते। वेद की इस शैली को हृदयङ्गम किये बिना वेद के विज्ञान व दर्शन को समझना कठिन है।

*

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय १६

आदि मूल अग्नि पिण्ड का लोकों के रूप में विस्तार

अध्याय ९ में यह विस्तार से बताया जा चुका है कि वैदिक परिकल्पनानुसार आदि सृष्टिकाल में एक महाग्नि पिण्ड का उदय हुआ था। इस प्रज्वलित पिण्ड का तीव्र गति से प्रसार हुआ जिससे मूल द्रव्य के तापमान में निरन्तर गिरावट आई। जैसे-जैसे तापक्रम गिरता गया यह प्रसारित होता हुआ मूल द्रव्य अवस्थान्तरित होता गया तथा यह आपः, बृहतीः आपः, अपां नपात् अवस्थाओं से निष्क्रमण करता हुआ प्रज्वलित लोकों के रूप में विकसित हुआ। अनन्तर प्रज्वलित लोकों के विखंडन से ग्रहों की व प्राणिजीवन हेतु उपयुक्त पृथ्वीवत् लोकों की उत्पत्ति हुई। इस अध्याय में ऋग्वेद मंडल १० के सूक्त ८८ की व्याख्या है।

इस सूक्त में आदि मूल अग्नि पिण्ड की उत्पत्ति के तथ्य को अनेक प्रकार से लगभग प्रत्येक ऋचा में कहा गया है अनन्तर उस मूल अग्नि (शक्ति) का विस्तार दर्शनीय जगत के रूप में हुआ यह तथ्य भी अनेक प्रकार कहा गया है। उसी मूल शक्ति के अन्तिम परिणाम रूप यह स्थावर व जंगम जगत उत्पन्न होकर, धारण किया जा रहा है। उसी मूल शक्ति की महिमा व सामर्थ्य से यह जगत आज भी शक्ति से ओत-प्रोत हुआ तप रहा है। इस सूक्त के देवता सूर्य व वैश्वानर हैं तथा ऋषि मूर्धन्वानाङ्गिरसः व वामदेव्यः हैं।

सूक्त की प्रथम ऋचा है– (क्र. २२३)

हविष्पान्तमजरं स्वर्विदि दिविस्पृश्याहुतं जुष्टमग्नौ।
तस्य भर्मणे भुवनाय देवा धर्मणे कं स्वधया पपथन्त॥

भाष्य — अजरं अविनाशी जुष्टं सेवनीय पान्तं पालक की हविः आहुति (स्वर्विदिः, स्वर् = देवताओं का आवास) देवों के उत्पत्ति स्थान को जानने वाली दिवि स्पृशि दिव्य (उस उत्पत्ति) स्थान को स्पर्श करने वाली अग्नौ मूल शक्ति अग्नि में आहुतम् पड़ गयी है।

तस्य उस मूल अग्नि को भुवनाय लोक के लिये धर्मणे भर्मणे धारण करने व

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पालन करने के लिये **देवा:** देवों ने अर्थात् जगत में नियोजित सूक्ष्म स्थूल भूतों ने **स्वधया** स्वधारणा शक्ति से, पोषक शक्ति से **कं** सुख के हेतु **पप्रथन्त** विस्तार किया।

अविनाशी मूल आद्या शक्ति समस्त द्रव्य जगत की पालक शक्ति है। आदि सृष्टिकाल में उस शक्ति की देवों के उत्पत्ति स्थान में हिरण्यगर्भ रूप प्रज्वलित पिण्ड के रूप में आहुति हुई। देवों के आदि स्थान स्वर्ग से आयी अग्नि के धारण एवं पालन हेतु सृष्ट जगत में आये देवों (सूक्ष्म स्थूल भूतों) ने उस अग्नि को विश्व सुखाय पोषक शक्ति के रूप में विस्तृत किया। आगामी ऋचा है– (क्र. २२४)

गीर्णं भुवनं तमसापगूल्हमाविः स्वरभवज्जाते अग्नौ।
तस्य देवाः पृथिवी द्यौरुतापोऽरणयन्नोषधीः सख्ये अस्य॥

भा.— (**गीर्णं**, √गृ, क्तान्त गीर्णं भुवनं) समस्त ब्रह्माण्ड के निगले हुए **तमसा अप गूढम्** अंधकार रूप प्रलय से छिपे हुए रूप को (**स्व:**, तीन महाव्याहृतियों में से एक) निज स्वरूप मूल प्रकृति **जाते** उत्पत्तिमत् जगत के लिये **अग्नौ** हिरण्यगर्भ रूप अग्नि पिण्ड रूप में (**आविस् अभवत्**, आविस्, भू, कृत आदि धातुओं के योग में 'प्रत्यक्षत: प्रकट' के अर्थ में प्रयुक्त होता है, वै. व्या. पृ. ४११) प्रत्यक्ष हुई थी। **तस्य** उस हिरण्यगर्भ रूप प्रकट अग्नि के **अस्य** सृष्टि में नियोजित इस रूप के **सख्ये** मित्र भाव से **देवा:** समस्त सूक्ष्म स्थूल भूत पृथ्वी, द्यौ, जल तथा वनस्पति **अरणयन्** आनन्दित होते हैं, रमण करते हैं।

प्रलन काल में समस्त जगत् मूल सूक्ष्म प्रकृति रूप में परिवर्तित हो अंधकार से आवृत्त हो जाता है। तब आगामी सृष्टि के आरम्भ में महाग्नि पिण्ड के रूप में प्रकट होता है। इसीसे आगामी सृष्टि उत्पन्न होती है। समस्त सूक्ष्म स्थूल भूत सूर्यादि लोक, पृथ्वी व वनस्पति उसी प्रारंभिक शक्ति पिण्ड से उत्पन्न होते हैं। आगामी ऋचा है :– क्र. (२२५)

देवेभिर्न्विषितो यज्ञियेभिरग्निं स्तोषाण्यजरं बृहन्तम्।
यो भानुना पृथ्वीं द्यामुतेमामाततान रोदसी अन्तरिक्षम्॥

भा.— **देवेभि:** दिव्य शक्तियों द्वारा **यज्ञियेभि:** तत्त्व संगति करणों द्वारा **इषित:** लायी गयी **अजरं** अविनाशी **बृहन्तम्** महानतम **अग्निं** अग्नि को (**स्तोषाणि** स्तु की लेट् ल.) मैं स्तुति करता हूँ **य:** जिस **भानुना** अपनी ज्योति से **रोदसी** पृथ्वी व इस द्युलोक प्रकाशित, अप्रकाशित आकाश व **अन्तरिक्ष** को **आ ततान** विस्तृत किया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि सृष्टि काल में महाग्नि पिण्ड प्रगट हुआ था। उस अविनाशी महानतम अग्नि से तत्त्व संगतिकरण के द्वारा प्रकाशित अप्रकाशित लोक पृथिवी अन्तरिक्ष उत्पन्न हुए व उस शक्ति से ये आज भी व्याप्त हैं व पोषित हैं। ऋग्वेद स्तुत्य अग्नि मूल आद्या शक्ति प्रकृति है जो ब्रह्म की देहभूता शक्ति है जो हिरण्यगर्भ रूप से प्रत्यक्ष होने के अनन्तर द्युलोक, सूर्य, पृथिवी, अन्तरिक्ष व समग्र ब्रह्माण्ड के रूप में प्रत्यक्ष हुई है। आगामी ऋचा है (क्र. २२६)

यो होतासीत्प्रथमो देवजुष्टो यं समाञ्जन्नाज्येना वृणानाः।
स पतत्रीत्वरं स्था जगद्यच्छत्रमग्निरकृणोज्जातवेदाः ॥

भा.— यः देवजुष्टः जो अग्नि देवों से सेवित प्रथमः सर्व प्रथम होताआसीत् आहुति देने वाला था यं जिसको वृणानाः वरण करने वाले देवों ने (आज्येन सम् आञ्जन् √अञ्ज् = लेप करना) घृत की तरह (अपनी देह पर) लेप किया सः जातवेदाः अग्निः उस समस्त पदार्थों में व्यापक अग्नि ने पतत्रि इत्वरम् उड़ने वाले पक्षियों की तरह तत्परता से कार्यरत जंगम को व स्थाः जगत् स्थावर जगत को श्वात्रम् अकृणोत् अपनी शक्ति से चलने वाला बनाया। आदि काल में उत्पन्न वृहदाकार अग्नि सृष्टि उत्पत्ति रूप यज्ञ की प्रथम आहुति बनी। वही अग्नि देवों, भौतिक अवस्थाओं से सेवित हुई। उस अग्नि के लेप से भौतिक अवस्थाएँ (देव) पूर्णरूप से व्याप्त हुई। उसी मूल शक्ति के अन्तिम परिणाम रूप स्थावर व जंगम जगत उत्पन्न हुआ। आगामी ऋचा है (क्र. २२७)

यज्जातवेदो भुवनस्य मूर्धन्नतिष्ठो अग्ने सह रोचनेन।
तं त्वाहेम मतिभिर्गीर्भिरुक्थैः स यज्ञियोऽभवो रोदसि प्राः।

भा.— हे जातवेदः उत्पत्ति पदार्थों में व्यापक अग्ने यत् जब तू भुवनस्य मूर्धन् उत्पत्तिमत् जगत के शीर्षस्थ स्थान अर्थात् आदिकाल के प्रारंभिक सह रोचनेन अत्यन्त प्रदीप्त रूप से अतिष्ठः स्थापित हुआ था तं त्वा उस तेरे रूप को हम मतिभिः गीर्भि उक्थैः बुद्धियों द्वारा, वाणियों द्वारा, प्रशंसाओं द्वारा अहेम कहें। सः यज्ञियः वह तू पूज्य रोदसि धरती आकाश प्राः अभवः को परिपूर्ण करने वाला हुआ।

आदि सृष्टि में जो वृहदाकार अग्नि पिण्ड स्थापित हुआ था उसे ही शीर्षस्थ अग्नि कहा गया है उसी मूल शक्ति से जगत व्याप्त हुआ है। आगामी ऋचा का भाष्य क्रमांक (११७) में देखें। सूक्त की ७ वीं ऋचा है (क्र. २२८)

दृशेन्यो या महिना समिद्धोऽरोचत दिवियोनिर्विभावा।
तस्मिन्नग्नौ सूक्त वाकेन देवा हविर्विश्व आजुहुवुस्तनूपाः

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा.— यः जो दिवि योनि दिव्य स्थान में योनि रूप मूल कारण (महिना, महिमन् तृ. विभ. वै. व्या.) अपनी महिमा के द्वारा सम् इद्धः सम्यक् प्रज्व. लित हुआ विभावा विशेष कान्ति युक्त होकर दृशेन्यः दर्शनीय हुआ अरोचयत् प्रकाशित हुआ है तस्मिन् अग्नौ उस अग्नि में विश्वे देवाः समस्त भौतिक शक्तियों ने, समस्त विद्वानों ने तनूपाः देह के रक्षक, स्वरूप, व अवस्था के रक्षक सूक्त वाकेन सूक्त वचन द्वारा, उत्तम वचन द्वारा हविः आजुहुवुः हवि की आहुति दी।

दिव्य स्थान में द्युलोक के मध्य भाग में मूल कारण अपने स्वगुणों से प्रज्वलित हुआ था यह जगत् उसी मूल शक्ति का कालान्तर में विकसित हुआ दर्शनीय रूप है। उस मूल अग्नि से ईश्वरीय कामना के अनुरूप भौतिक अवस्थाओं सूक्ष्म स्थूल भूतों की उत्पत्ति हुई। समस्त भौतिक शक्तियों ने सूक्त वाकेन ईश्वरीय कामना व वचन के अनुसार अपनी-अपनी अवस्थाओं को धारण किया तथा हवि आजुहुवुः काय पूर्ण करके अपनी-अपनी आहुति देने रूप योगदान समर्पित किया। आगामी ऋचा से इस व्याख्या की पुष्टि होती है, ऋचा है (२२९)

सूक्तवाकं प्रथममादिदग्निमादिद्धविरजयन्त देवाः।
स एषां यज्ञो अभवत्तनूपास्तं द्यौर्वेद तं पृथिवी तमापः॥

भा.— देवाः सूक्ष्म, स्थूल भूतों ने प्रथमं सूक्तवाकं अजनयन्त सर्व प्रथम ईश्वरीय कामना के अनुरूप वाणी को अर्थात् योजना को प्रकट किया आत् इत् अनन्तर अग्नि अजनयन्त उसी योजना के अनुरूप शक्ति को प्रकट किया आत्-इत् अनन्तर उसी योजना के अनुरूप हविः अजनयन्त अपनी आहुति को प्रकट किया अर्थात् अपना योगदान Contri bution of their part) किया। स एषां तनूपाः वह उन देवों का, शक्ति प्राकृतिक शक्तियों का अपनी अवस्था की रक्षा करने वाला यज्ञः अभवत् संगतिकरण हुआ।

तं द्यौः वेद उसको द्युलोक जानता है तं पृथिवी वेद उसको पृथिवी जानती है तं आपः वेद उसको मूल तत्त्व जानता है।

इस ऋचा में द्युलोक पृथ्वी व मूल तत्त्व को यज्ञ का साक्षी होना कहा गया है। अतः प्राकृतिक शक्तियों द्वारा जो सृजन हेतु संगतिकरण हुआ है उसकी यहाँ चर्चा है। मानव तो धरती पर बहुत बाद में आया उसके द्वारा किये यज्ञ के साक्षित्व के लिये दिव्य शक्तियों के उल्लेख की आवश्यकता नहीं है। सहस्रों मानवों द्वारा सहस्रों अग्नि होत्र होते रहते हैं उनके साक्षी द्यौ और पृथ्वी को कहने से कोई

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तात्पर्य नहीं है। द्यो और पृथ्वी ने सृष्टि को तब से उत्पन्न होते देखा जब से ये सत्ता में आये उन संगतिकरणों के ये साक्षी हैं शेष जो तत्व संगतिकरण इनको उत्पत्ति के पूर्व हुआ उसका साक्षी मूल तत्व आपः है जो आदि सृष्टि काल से ही विद्यमान है। ऋचाओं की भाषा में गभीर दर्शन व विज्ञान निहित है सतह पर ऋचा में कुछ भी नहीं है। आगामी ऋचा में इसी सत्यकी पुनरावृत्ति हुई है ऋचा है (ऋ. २३०)

यं देवासोऽजनयन्ताग्निं यस्मिन्नाजुहुवु र्भुवनानि विश्वा ।
सो अर्चिषा पृथिवीं द्यामुतेमामृजूयमानो अतपन्महित्वा ॥

भा.— यं अग्निं जिस मूल शक्ति को देवासः सूक्ष्म स्थूल भूत व लोकादि प्राकृतिक शक्तियों ने अजनयन्त प्रकट किया, यस्मिन् जिस में विश्वा भुवनानि आजुहुवुः समस्त लोकों ने अपनी-अपनी आहुति दी, योगदान किया सः अर्चिषा उस अग्नि ने अपनी कान्ति व तेजोमय ज्वाला से ऋजूयमानः सरल मार्ग का आश्रय लेते हुए इमाम् द्यां पृथिवीम् इस द्युलोक व पृथ्वी को महित्वा अतपत् अपने सामर्थ्य से तपाया है, तप्त किया है।

आदि सृष्टि काल में उत्पन्न हुई मूल शक्ति ने सरल मार्ग का अनुगमन करते हुए सूक्ष्म स्थूल भूतों तथा प्रज्वलित व अप्रज्वलित लोकों आदि के रूपों में अपने आप को अभिव्यक्त किया है। आज द्यु लोक पृथ्वी में जो भी ताप है, जो भी तेज है वह उसी तेजोमय मूल शक्ति के सौजन्य से है। आगामी ऋचा है (ऋ. २३१)

स्तोमेन हि दिवि देवासो अग्निमजीजनञ्छक्तिभी रोदसि प्राम् ।
तम् अकृण्वन् त्रेधा भुवे कं स औषधीः पचति विश्वरूपाः ॥

भा.— स्तोमेन हि देवासः यथार्थ गुणों से ही प्रकृतिक शक्तियों ने दिवि आकाश में अग्निं अजीजनन् मूल शक्ति को (प्रकृतिक शक्तियों ने अपने-अपने रूप मे) प्रकट किया। शक्तिभिः रोदसि प्राम् उन प्राकृतिक शक्तियों से आकाश पृथिवी पूर्ण हो रहा है। तम् उ कं भुवे उसको सुखदाई होने के लिये त्रेधा अकृण्वन् प्राकृ-तिक शक्तियों ने तीन रूपों में किया। वही शक्ति नाना प्रकार की औषधियों को पकाती है।

अग्नि कही गयी प्रकृति सत्स्वरूपा है अतएव उसके गुण धर्म भी अविनाशी, नित्य एवं वास्तविक हैं। उन्हीं यथार्थ गुणों के अनुरूप मूल प्रकृति का विस्तार लोकों एवं सूक्ष्म स्थूल भूतों के रूप में हुआ है अतः ये लोकादि व भूतादि मूल शक्ति के गुणों के वाहक (Carrier) हैं। वही मूल शक्ति नाना रूपों में आकाश में

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याप्त है तथा ताप, प्रकाश व विद्युत इन तीन रूपों में जगत् को अपने महत्व से पूर्ण कर रही है। आगामी ऋचा है (क्र. २३२)

यदेदेनमदधुर्यज्ञियासो दिवि देवाः सूर्यमादितेयम्।
यदा चरिष्णू मिथुनावभूतामादित् प्रापश्यन्भुवनानि विश्वा॥

भा.— यदा इत् जब ही यज्ञियासः देवाः सृष्टि संगतिकरण यज्ञ में संलग्न प्राकृतिक शक्तियों ने, संगतिकरण के ज्ञान में संलग्न विद्वानों ने एनम् सूर्यम् इस सूर्य को आदितेयम् अखंड मूल शक्ति अदिति से उत्पन्न परिणाम को दिवि अदधुः आकाश में धारण किया यदा जब चरिष्णु चलने वाले मिथुनौ लोकों के जोड़े, कास्मिक द्रव्यों के जोड़े अपाम् नपात् के (हाइड्रोजन, हीलियम रूप) जोड़े अभूताम् उत्पन्न हुए आत् इत् अनन्तर विश्वा भुवनानि प्र पश्यन् समस्त लोक अच्छी तरह (उद्भव होते) देखे गये।

इस ऋचा में उच्च विज्ञान है सूर्य की उत्पत्ति के समय ही समस्त नक्षत्रों की उत्पत्ति होती है। उस समय कुछ लोक जोड़े से उत्पन्न होते हैं जिन्हें राशियां (multiple stars) कहते हैं समस्त लोकों की उत्पत्ति हाइड्रोजन, हीलियम नामके जोड़े से होती है। तत्व मीमांसक इस सूर्य को जब मूल शक्ति अदिति के परिणाम स्वरूप उत्पन्न हुआ देखते हैं तब ही यह समझना चाहिये कि वे समस्त लोकों के उद्भव को ठीक प्रकार से देख रहे हैं, समझ रहें हैं आगामी ऋचा है (क्र. २३३)

विश्वस्मा अग्निं भुवनाय देवाः वैश्वानरं केतुमह्नामकृण्वन्।
आ यस्ततानोषसो विभातीरपो ऊर्णोति तमो अर्चिषा यन्॥

भा.— देवाः वैश्वानरं अग्निं प्राकृतिक शक्तियों ने, विद्वानों ने समस्त मानवों के हितकारी तेजरूप सूर्य को विश्वस्मै भुवनाय समस्त जगत् के लिये अह्नाम् केतुम् अकृण्वन् दिनों का दर्शाने वाला बनाया या विद्वानों ने दिनों का बताने वाला जाना यः विभातीः जिसे विशेष रूप से प्रकाश करने वाले सूर्य ने उषसः ततान उषाओं को फैलाया तथा जो यन् गमन करते हुए तमः अप ऊर्णोति अंधकार को दूर करता है।

इस प्रकार सूक्त की पूरोक्त ऋचाओं में यह बताया गया है कि किस प्रकार मूल आद्या शक्ति प्रकृति से आदि सृष्टिकाल में प्रकट हुए महासूर्य, हिरण्यगर्भ से कालान्तर में लोकों की उत्पत्ति हुई जिस उत्पत्ति की अन्तिम कड़ी रूप सूर्य आज भी हमारे लिये उषाओं और दिन का सृजन उसी प्रकार कर रहा है

CC-0. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय १७

आकाशीय पिण्डों का गुरुत्वाकर्षण द्वारा सन्तुलन

आकाशीय पिण्डों की उत्पत्ति, उनका अपनी कक्षा में नियमित रूप से गतिमान होना, उनका परस्पर आकर्षण द्वारा आबद्ध हो सन्तुलित होना तथा प्रकाशित लोकों द्वारा ऊर्जा की उत्पत्ति व प्रसार आदि विषयों पर वैदिक विचार ऋचाओं में यत्र तत्र बिखरे पड़े हैं। आकाशीय पिण्डों की उत्पत्ति संबंधी वैदिक विचार धारा को अध्याय १२ में प्रस्तुत किया जा चुका है तथा सूर्यवत् प्रकाशित लोकों द्वारा ऊर्जा की उत्पत्ति और प्रसार विषय संबंधी वैदिक विचार धारा अध्याय ११ प्रथम भाग में दी जा चुकी है।

इस अध्याय में लोकों को परस्पर आकर्षण में आबद्ध होने व कक्षाओं में नियमित भ्रमण करने संबंधी विचारों को ऋचाओं से प्रस्तुत किया गया है। इस प्रस्तुति में संबंधित सिद्धान्तों पर प्रकाश डालने वाली अन्य ऋचाओं की भी व्याख्या की गयी है ताकि सूक्तों के विषय का तारतम्य किस प्रकार बना रहता है यह तथ्य प्रकाश में आवे। सर्वप्रथम मंडल के सूक्त २ की चार ऋचाओं की व्याख्या की गयी है इनमें ऋचा क्रमांक २३८ में यह कहा है कि (रथमित्र) रथ की तरह बने हुए निश्चित मार्ग पर **रजसः दिवस्पृथिव्योः नि एरिरे** प्रकाशित, लोक पृथ्वी आदि प्रेरित हुए हैं इस विषय में प्रस्तुत अग्नि जो अव्यक्त चुम्बकीय शक्ति (magnetism) है की भूमिका का उल्लेख महत्वपूर्ण है क्रमांक २३९ की ऋचा में चन्द्रकलाओं का कारण चन्द्रमा की सापेक्षता से पृथ्वी सूर्य की निरन्तर परिवर्तित होती हुई स्थिति को कहा गया है इसके अनन्तर मंडल ३ सूक्त ३१ की ऋचाओं की व्याख्या है ऋचाओंमें यह बताया गया है कि किस प्रकार सत्स्वरूप प्रकृति से जगत् का उद्भव हुआ इसी तारतम्य में क्र. २४४ की ऋचा में आकाशीय पिण्डों के सन्तुलन का मूलाधार **स्कम्भनेन ऊर्ध्वं आसीना: स्कम्भनन्तः** पद से परस्पर आकर्षण कहा गया है। आगमी ऋचाओं में मूल उपादान कारण तत्त्व अप् के महत्व को प्रस्थापित करते हुए ईश्वर के सृष्टि कर्तृत्व का वर्णन है अनन्तर ऋचा क्रमांक २४९ में सूर्य पृथिवी का परस्पर आकर्षण के अनुरूप (**उभे वसुधिती सूर्यस्य महना अनु जिहाते, यजत्रे कृष्णे**

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे आदि सृष्टि काल में उद्भूत हिरण्यगर्भः रूप महासूर्य मंडल ब्रह्म दिन अर्थात् सृष्टिकालों का सृजन करता है। आगामी ऋचा है (क्र. २३४)

वैश्वानरम् कवयो यज्ञियासोऽग्निं देवा अजनयन्नयुर्जयम्।
नक्षत्रं प्रत्निममिनच्चरिष्णु यज्ञस्याध्यक्षं तविषं बृहन्तम्॥

भा.— यज्ञियासः देवाः तत्त्वमीमांसक विद्वान् कवयः विचारक दार्शनिकों ने वैश्वानरं अग्निं सबके हितकारी चेतनस्वरूप अजुर्यम् नित्य ईश्वर के अजनयन् स्वरूप का ज्ञान किया चरिष्णु विचारशील विद्वान ने प्रत्नम् अति प्राचीन बृहन्तम् तविषं महान् बलशाली यज्ञस्य अध्यक्षं सृष्टि यज्ञ के अधिष्ठाता (नक्षत्रं √नक्ष्=प्राप्त करना) प्राप्तव्य ईश्वर के अमिनत् स्वरूप को निर्धारित किया।

पूर्व ऋचा में वैश्वानर पद सूर्य वाचक है किन्तु इस ऋचा में अजुर्यन् व यज्ञस्याध्यक्षं पदों से वह ईश्वर वाचक है क्योंकि ईश्वर ही सृष्टि यज्ञ का अध्यक्ष है यह तथ्य आगामी ऋचा से और भी स्पष्ट हो जाता है जो इस प्रकार है— (क्र. २३५)

वैश्वानरं विश्वहा दीदिवासं मन्त्रैरग्निं कविमच्छा वदामः।
यो महिन्मा परिबभूवोर्वी उतावस्तादुत देवः परस्तात्॥

भा.— यः जो देवः प्रकाशक ईश्वर अवस्तात् पास के उत तथा परस्तात् दूर के जो दर्शनीय नहीं हैं उर्वी दोनों को महिन्मा अपनी महान् सामर्थ्य से परि बभूव उन पर अध्यक्ष होकर स्थित हुआ है उस वैश्वानरं मानव के हितकारी विश्वहा दीदिवासं सब दिन, सदैव प्रकाशित रहने वाले कविम् सर्वज्ञ, क्रान्तदर्शी अग्निं प्रकाशस्वरूप को मन्त्रैः मन्त्रों से अच्छ वदामः हम लोग अच्छी प्रकाश कहें।

स्वप्रकाशित सूर्यादिक लोक नाशवान् हैं वे प्रकाश के नित्य स्रोत नहीं हैं इसके विपरीत ईश्वर को नित्य, सर्वदा प्रकाश स्वरूप कहकर ऋचा में ईश्वर का सूर्यादि लोकों से वैलक्षण्य दर्शाया है। तथा कवि, कहकर उपास्य देव को चैतन्य ज्ञान स्वरूप कहा है तथा परिभूः शब्द से उसे सर्वव्यापी कहा है तथा अग्निः शब्द से स्व प्रकाशस्वरूप तथा 'देवः, शब्द से सर्व प्रकाशक कहा है। आगामी ऋचा से विषय में परिवर्तन हो गया है तथा पूर्वोक्त विषय को आध्यात्म विद्या की तरफ मोड़ दिया गया है।

*

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

both sun and earth on occount of sun,s superior gravity have a relative movement bassed on mutual attraction परस्पर दूरी का बढ़ना घटना कहा गया है। यद्यपि सूक्त की कुछ ऋचाओं में लोकों के सन्तुलन संबंधी विषय है फिर भी सम्पूर्ण सूक्त की व्याख्या की प्रस्तुति वैदिक सूक्तों में विषय की तारतम्यता को प्रकाश में लाने हेतु की गयी है ऋग्वेद मंडल २, सूक्त २ का देवता अग्निः (ऊर्जा) है तथा ऋषि गृत्समद है। सूक्त की ऋचाओं में आकाशीय पिण्डों द्वारा अपनी-अपनी कक्षा में गति करने संबंधी विज्ञान है सूक्त की प्रथम ऋचा है– (क्र. २३६)

यज्ञेन वर्धत जातवेदसमग्निं यजध्वं हविषा तना गिरा।
समीधानं सुप्रयसं स्वर्णरं द्यृक्षं होतारं वृजनेषु धूर्षदम्॥

भा.— हे विद्वानों तुम जातवेदसं समस्त उत्पत्ति धर्मी पदार्थों में विद्यमान समिधानं द्रव्यों से प्रदीप्त होने वाले घृक्तां तेजस्वरूप (सुप्रयसम् जुहो. दिवा. √यस्=गरम होना वै. व्या.) उत्तम प्रकर्ष ताप वाले या (प्रयस्=प्रयास करना) उत्तम प्रयत्नशील स्वः नरं स्वयं श्रेष्ठता को प्राप्त हुए व सुख देने वाले होतारं द्रव्यरूप आहुति देने वाले वृजनीषु गमनशील लोकों में धूर्षदम् धुरियों का नियंत्रण व वहन करने वाले अग्निं मौलिक शक्ति रूप ऊर्जा को यज्ञेन वधत यज्ञ के द्वारा बढ़ाओ तथा हविषा अपना आहुति रूप तना गिरा विस्तृत वाणी से यजध्वं अलंकृत करो। आगामी ऋचा है– (२३७)

अभित्वा नक्तीरुषसो ववाशिरेऽग्ने वत्सं न स्वसरेषु धेनवः।
दिवइवेद रतिर्मानुषा युगा क्षपो भासि पुरुवार संयतः॥

भा.— धेनवः स्वसरेषु वत्सं न गौएं जैसे गोशालाओं में बछड़ों से मिलने ववाशिरे लालायित रहती हैं वैसे ही नक्तीः उषसः प्रलय रात्रि व सृष्टिकाल स्वसरेषु क्रमागत चलने से अपनी अनन्त परिमाणी क्रम रूप आवासों में हे अग्ने मूल शक्ते त्वा अभितेरे प्रति आने को ववाशिरे लालायित हैं। दिवः इव इत् सूर्य के अनुसार ही मानुषा युगा मानवों की गणना पर आधारित युगमान के अनुसार दिवः इव इत् सृष्टिकाल रूपी दिन की तरह पुरुवार संयतः अनेक बार अच्छी तरह स्थित हुई अरतिः क्षपः प्रसुप्त प्रलय रात्रि को में भी हे अग्ने मूल शक्ति तू भासि प्रकाशित रहती है।

सृष्टिकाल और प्रलयकाल जो अनवरतक्रम से चलते हैं मूल आद्या शक्ति रूप अग्नि की ही दो कलायें हैं। प्रलयकाल का परिमाण सृष्टिकाल के बराबर है जिसकी गणना सूर्य आधारित मानव युग गणना के अनुसार होती है। प्रलय काल में

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल शक्ति अपने मूल स्वरूप में प्रसुप्त (छिपी) हुई भासमान रहती है। सृष्टिकाल में मूल शक्ति से जगतरूप जो परिणाम उदभव होते हैं वे निरन्तर क्षीणता को प्राप्त होते रहते हैं तथा उनकी अन्ततम गन्तव्य स्थिति मूल तत्त्व ही होती है their ultimate goal is to disintegrate into the fundamental matter यही तथ्य ऋचोक्त है। आगामी ऋचा है– (क्र. २३८)

तं देवा बुध्ने रजासः सुदंससं दिवस्पृथिव्यो ररतिं न्येरिरे।
रथमिव वेद्यं शुक्रशोषिषमग्निं मित्रम् न क्षितिषु प्रशंस्यम् ॥

भा.— प्रशंस्यम् प्रशंसनीय **सुदंससं** उत्तम क्रियाओं को करने वाले अग्नि ने (**बुध्ने**, बुध्नम् अन्तरिक्षम् निरु. १०/४४) आकाश में अन्तरिक्ष में, **रजसः** लोकों के **दिवस्पृथिव्योः** व सूर्य पृथिवी को **रथमिव** रथ के समान निश्चित मार्ग पर (**नि-एरिरे** √ईर् = प्रेरित करना) नियंत्रण पूर्वक प्रेरित किया है। **तम्** उस **प्रशंस्यम्** प्रशंसनीय **शुक्र शोचिसम्** प्रदीप्त तेजस्वर्ण **वेद्यं** जानने योग्य **अरतिम्** प्रसुप्त, छिपी हुई, अकार्यरत **मित्रं न** मित्र की तरह सहायक **अग्निं** अग्नि को, ऊर्जा को **देवाः** देवों ने, विद्वानों ने **क्षितिषु** पृथ्वी के वास स्थानों पर **नि एरिरे** निरन्तर प्रेरित किया।

रथ जैसे नियमित मार्ग पर चलते हैं वैसे ही मूल प्रकृति से उत्पन्न उर्जा आकाशस्थ लोकों को उनकी निश्चित कक्षा में चलाती है। विद्वानों को चाहिये कि उस गोपनीय शक्ति को पृथिवी के विभिन्न स्थानों पर उपयोग हेतु उपलब्ध करें। ज्ञातव्य है कि अब यह सूक्ष्म ऊर्जा विद्युत रूप में प्राप्त है जो चुम्बकीय शक्ति magnetism का परिवर्तित रूप है इसी को प्राप्त करने का निर्देश ऋचा में है। आगामी ऋचा है– (क्र. २३९)

तमुक्षमाणं रजसि स्व आ दमे चन्द्रमिव सुरुचं ह्वार आ दधुः।
पृश्नयः पतरं चितयन्तमक्षभिः पाथो न पायुं जनसी उभे अनु ॥

भा. — **पाथः** = जल, **न पायुं उभे** जैसे दोनों जल और पीने वाले को **अनु** अनुकूलता से वर्तमान देखा जाता है अर्थात् पीने वाला प्यास के अनुरूप जल ग्रहण करता है **चन्द्रमिव** तथा जैसे चन्द्रमा **उभे जनसी** सूर्य पृथ्वी दोनों की स्थिति के अनुकूल **स्वेह्वारे दमे** अपने वक्राकार ग्रह में, कक्षा में **तम् उक्षमाणं सुरुचं** उस बढ़ते हुए उत्तम प्रकाश को **रजसि** अपने लोक पर **अनु पायुं** पीने वाले की समता के अनुरूप शक्त्यनुसार ग्रहण करता है उसी प्रकार **पृश्नयः** नक्षत्रों से भरे अन्तरिक्ष के **उभे जनसी** जोड़े नक्षत्र ग्रह की **(अक्षभिः)** धुरियों की (गति) द्वारा

CC-0. Gurukul Kangri Vishwavidyalaya, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उक्षमाणं बढ़ती हुई परतम् वेग से जाती हुई चितयन्तं एकत्र हुई (पाथः = अग्निं कोश) ऊर्जा, प्रकाश किरणें स्वेदमे अपनी कक्षा में रजसि लोक (ग्रह) पर आ दधुः स्थापित हुईं।

इस ऋचा में महत्वपूर्ण विज्ञान है प्रथम यह कि चन्द्रमा परकीय प्रकाश से प्रकाशित है द्वितीय यह कि चन्द्रमा की कलाएँ सूर्य पृथिवी की परस्पर स्थिति पर निर्भर हैं पृथिवी की वृष्टि छाया से चन्द्रमा पर सूर्य प्रकाश का घटना बढ़ना होता है। तृतीय तथ्य यह है कि आकाशीय पिण्ड वक्राकार कक्षाओं में भ्रमण करते हैं। पृथ्वी को धुरी अन्तरिक्ष में निरान्तर बदलती रहती है अर्थात् पृथ्वी की गति का धरातल परिवर्तित होता रहता है। इस परिवर्तन के परिणाम स्वरूप पृथ्वी पर सूर्य प्रकाश की मात्रा भी परिवर्तित होती रहती है इस परिवर्तित होने वाली ऊर्जा की मात्रा के कारण ही ऋतुऐं होती हैं। प्रकाशित लोक (नक्षत्र) और उसके साथ संबद्ध अप्रकाशित लोक (=ग्रह) के जोड़े उक्त नियम के अनुसार ही वर्तते हैं।

ऋग्वेद मंडल ३ सूक्त ३१ की ऋचाओं में आकाशवर्ती पिण्डों का संतुलन संबंधी विषय है इस सूक्त की प्रथम चार ऋचाओं में आये विषय की चर्चा अध्याय ९ में हो चुकी है वहां यह कहा गया है कि आदि सृष्टि काल में क्रियात्मक प्रकृति आपः से महान् अग्नि पिण्ड उत्पन्न हुआ था इस प्रकार नव सृष्टि का प्रभात हुआ था। उसी विषय के तारतम्य में ऋचा क्रमांक ८ में कहा गया है। (क्र. २४०)

सतः सतः प्रतिमानं पुरोभूर्विश्वा वेद जनिमा हन्ति शुष्णम्।
प्र णो दिवः पदवीर्गव्युरर्चन्त्सखा सखीँरमुञ्चन्निरवद्यात्॥

भा :— वह इन्द्र या विद्वान् पुरः भूः सामने रहता हुआ, अग्रगण्य होता हुआ सतः सतः प्रतिमानं: विद्यमान सत्स्वरूप प्रकृति के वर्गों के वास्तविक परिमाणों के विश्वा जनिमा समस्त उत्पत्ति धर्मी द्रव्यों को वेद जानता है वही शुष्णम् हन्ति शोषण कारी वृत्र को, प्रवृत्तियों को मारता है। दिवः ज्ञान प्रकाश के पदवीः प्रतिष्ठित पदों की गव्युः वाणी, ज्ञान का इच्छुक होता हुआ (सखा) वह मित्रवत् व्यवहार वाला इन्द्र, विद्वान् (प्रअर्चन) वाणी का सत्कार करता हुआ अर्थात उसे आगे बढ़ाता हुआ (नः सखीन्) हम मित्रवत् मानवों को (अवद्यात्) न कहने योग्य वाणी से, ज्ञान से अमुञ्चत् छुड़ाता है।

सत्स्वरूप प्रकृति के कणों के वास्तविक परिमाणों से यह जगत निर्मित हुआ हैं जिसका यथार्थ ज्ञान ईश्वर को ही है वह ईश्वर मानवों को प्रेरणा देता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ उनको ज्ञान प्रकाश से आलोकित करे। आगामी ऋचा है (क्र. २४१)

नि गव्यता मनसा सेदुरर्कैः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम्।
इदं चिन्नु सदनं भूर्यसां येन मासाँ असिषासन्नृतेन ॥

भा.— गव्यता मनसा ज्ञान को प्राप्त करने की इच्छावाली बुद्धि से तथा अर्कैः स्तोत्रों से अमृतत्वाय शाश्वत ज्ञान के लिये, अमरता के लिए गातुं कृण्वानासः मार्ग बनाते हुए जन नि वेद सेदुः समीप स्थित हैं एषां इन विद्वानों का इदं चित् नु भूरि सदनं यही (ज्ञान में रमण) बड़ा आवास है येन जिससे उनने ऋतेन सत्य ज्ञान द्वारा मासान् महीनों अर्थात् काल के असिषासन् विभाग किये।

इस ऋचा में 'गव्यता मनसा,' पद से स्पष्ट है कि पूर्व ऋचा में भी गव्यु पद वाणी के लिये प्रयुक्त हुआ है। शाश्वत ज्ञान प्राप्ति ही जिनके जीवन का लक्ष्य है ऐसे जनों की निकटता को हम प्राप्त करें यह कहा गया है तथा यह कि ज्ञानियों ने काल के विभाग किये हैं। आगामी ऋचा है (क्र. २४२)

सम्पश्यमाना अमदन्नभि स्वं पयः प्रत्नस्य रेतसो दुघानाः।
वि रोदसी अतपद्घोष एषां जाते निःष्ठामदधुर्गोषु वीरान् ॥

भा.— प्रत्नस्य स्वं पयः प्राचीन काल के अर्थात् पूर्व सृष्टि के अनुरूप अपनी स्व शक्ति को सृष्ट द्रव्य, महाभूत रूप दूध को दुघानाः दुहते हुए, प्रकट करते हुए सं पश्यमानाः सम्यक् देखते हुए रेतसः मूल तत्व अभि अमदन् पूर्ण रूप से हर्षित हुए एषां घोषः रोदसी वि अतपत् इन मूल तत्वों के नाद से धरती अकाश व्याप्त हो गया इनने जाते उत्पन्न हुए जगत् में गोषु लोकों पर निः स्थाम् उत्तम प्रकार स्थित वीरान् शक्तिशाली द्रव्यों को अदधुः धारण किया।

ऋचा में मूल तत्वों का वैयक्ती करण हुआ है। पूर्व सृष्टियों के अनुरूप वे मूल तत्व अपनी स्व शक्ति से जगत् के उपादान कारण होते हुए महाभूतों को उत्पन्न करते हैं इनकी क्रिया से संपूर्ण आकाश व्याप्त हो जाता है जगत् के समस्त लोक मूल आद्या शक्ति प्रकृति अर्थात् मूल तत्वों की शक्ति पर ही स्थिर हैं।आगामी ऋचा है (क्र. २४३)

स जातेभिर्वृत्रहा सेदु हव्यैरुक्थिया असृजदिन्द्रो अर्कैः।
उरुव्यस्मै घृतवद् भरन्ती मधु स्वादुम दुदुहे जेन्या गौः ॥

भा — सः इन्द्रः वृत्रहा वह इन्द्र वृत्र विनाशक है सः इत् उ उसने निश्चय ही जातेभिः अर्कैः हव्यैः उत्पत्ति धर्मी किरण रूप द्रव्यों से रचना रूप आहुति के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा उक्षिया: सृष्टि रूप उषाकाल को असृजत् प्रकट किया। अस्मै उस इन्द्र (ईश्वर) के लिये उरूची पूज्यनीया जेन्या गो: जीतने योग्य मूल प्रकृति ने घृतवत् जैसे दूध में घी धारण होता और अवसर पर निकलता है वैसे भरन्ती धारण करती हुई मधु स्वादुम मधु गुण युक्त स्वादिष्ठ अर्थात् सृष्टि में नियोजित करने योग्य गुणयुक्त द्रव्यों का दुदुहे दोहन किया।

पूर्व ऋचा में मूल तत्त्व (प्रकृति) की महिमा गायी गयी है इस ऋचा में निमित्त कारण ईश्वर की भूमिका कही गयी है। प्रकृति अपने आप सृष्टि रचना में असमर्थ है ईश्वर ही सृष्टि विकास के मार्ग में आये वृत्र नामक अवरोध को हटाता है तथा उसकी निश्चित योजनानुसार जो सृष्टि यज्ञ में आहुति होती है उसी से वांछित तत्त्व संगतिकरण होता है जिसके परिणाम स्वरूप जीती गई मूल प्रकृति सुनियोजित उत्तम सृष्टि को उत्पन्न करती है। आगामी ऋचा है (क्र. २४४)

पित्रे चिच्चक्रु: सदनं समस्मै महि त्विषीमत् सुकृतो वि ह्यन्।
विष्कभ्नन्त: स्कम्भनेना जनित्री आसीना ऊर्ध्वं रभसं वि मिन्वन्॥

भा.— सुकृत: उत्तम प्रकार निर्मित द्रव्यों ने, लोकों ने अस्मै पित्रे इस पिता परमेश्वर के लिये महि चित् त्विषीमत् सदनं विस्तृत प्रकाशयुक्त जगत् रूप आवास को (सं चक्रु:, √कृ लिट् ल.) पूर्णरूप से बनाया और वे उसे वि ख्यन् देखते रहेंगे।

ऊर्ध्वं आसीना: उपर आकाश में स्थित लोक स्कम्भनेन स्तम्भन शक्ति के द्वारा, गुरुत्वाकर्षण के द्वारा वि स्कम्भनन्त: विशेष प्रकार से थामते हुए रभसं वेगवान् पृथ्वी को व जनित्री प्रकाशित अप्रकाशित लोकों के जोड़ों को (वि मिन्वन् √मि= स्थिर करना लुङ् लोट्) विशिष्टता से स्थिर करें।

मूल तत्त्व के द्वारा उत्तम प्रकार निर्मित द्रव्य ने जगत् को सूर्यवत् प्रकाश युक्त लोकों से निष्पन्न किया है ये लोक परस्पर आकर्षण शक्ति द्वारा ही आकाश में स्थित हैं। इस ऋचा में आकर्षण शक्ति द्वारा लोकों के स्थायित्व संबंधी तत्त्व का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन हुआ है। आगामी ऋचा है (क्र. २४५)

महि यदि धिषणा शिश्नथे धात् सद्योवृधं त्वष्टारं रोदस्यो:।
गिरो यस्मिन्ननवद्या: समीचीर्विश्वा इन्द्राय तविषीरनुत्ता:॥

भा.— रोदसी: द्युलोक पृथिवी को शिश्नथे, √श्नथ्=बांधना परस्पर बांधने के लिये यदि जिस महि पूज्यनीय (धिषणा, धिषणम्=बुद्धि, कोश)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धि से सद्योवृधं विभ्वं शीघ्र बढ़ने वाले व व्यापक जगत् को धात् धारण किया गया है यस्मिन् जिस ईश्वर में अनवद्याः निन्दादि दोष रहित विश्वाः गिरः समीचीः समस्त वाणियें अच्छी प्रकार संगत हुई हैं इन्द्राय उसी ईश्वर से विश्वः समस्त तविषीः शक्तियों अनुत्ताः चल रही हैं।

जगत रचयिता ईश्वर सकाश से ही समस्त शक्तियां यथावत योजनानुसार कार्यरत हैं उसी ईश्वर को अलौकिक बुद्धि से समस्त लोक आकर्षण में बंधे हैं वही ईश्वर वेद वाणी का एक मात्र विषय है, आगामी ऋचा है (क्र. २४६)

मह्या ते सख्यं वशिम शक्तीरा वृत्रघ्ने नियुतो यन्ति पूर्वीः।
महि स्तोत्रमव आगन्म सूरेरस्माकं सु मघवन्बोधि गोपाः॥

भा.— हे मघवन् ऐश्वर्य वान् इन्द्र मैं ते आपके महि आदर करने योग्य सख्यम् मित्रभाव की आ वशिम पूर्णरूप से कामना करता हूँ। वृत्रघ्ने वृत्र को मारने वाले आपके लिये पूर्वीः अनादि काल से सिद्ध नियुतः निश्चित, करोड़ों शक्तीः सामर्थ्य, शक्तियां आ यन्ति प्राप्त हैं। सूरेः ज्ञानवान् प्रकाशक तेरे महि पूज्य, बड़े स्तोत्रम् स्तुति वचन को व भवः ज्ञान और रक्षादि को हम लोग आ अगन्म प्राप्त हों तू अस्माकं हमारा गोपः रक्षक होकर सु बोधि उत्तम ज्ञान को प्राप्त करा।

प्रकृति अनादि है उस प्रकृति को असख्य शक्तियां अनादि काल से ईश्वराधीन हैं। ईश्वर के साथ ध्यान योग और पवित्र भावना द्वारा तदात्म स्थापित करने से ईश्वरीय संरक्षण व ज्ञान मानव को प्राप्त होता है। आगामी ऋचा है (क्र. २४७)

महि क्षेत्रं पुरुश्चन्द्रं विविद्वानादित्सखिभ्यश्चरथं समैरत्।
इन्द्रो नृभिरजनद्दीद्यानः साकं सूर्यमुषसं गातुमग्निम्॥

भा.— विविद्वान् सर्वज्ञ ईश्वर ने सखिभ्यः मित्रवत् जीवों के लिये त्रिवर्गी प्रकृतिसे पुरुः चन्द्रं अत्यन्त प्रकाशमान क्रियात्मक मूल तत्त्व अप् के महि क्षेत्रं विशाल क्षेत्र को व चरथं गतिशील ऊर्जा को सं ऐरत् सम्यक् प्रेरणा दी। 'पुरुः चन्द्रः' पद अप् तत्त्व के लिये प्रयुक्त होता है जैसे कि आगामी ऋचा में स्पष्ट कहा गया है। आत् इत् अनन्तर दीद्यानः इन्द्रः तेजस्वी इन्द्र ने नृभिः साकं प्रधान शक्तियों के साथ सूर्यम् उषसम् अग्निं सूर्य के सृष्टिकाल, के ऊर्जा के गातुम् मार्ग को अजनत् उत्पन्न किया।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वज्ञ ईश्वर ने जीवात्माओं के भोग के लिये प्रकाशमान द्रव्यों को उत्पन्न किया उसने मूल प्रकृति से अनेक प्रमुख तत्त्वों को बनाया तथा उनके द्वारा सूर्य-वत् नक्षत्रों के मार्गों को बनाया तथा ऊर्जा को अनेक रूपों में फैलाया उसने उषा का मार्ग = सृष्टि की आयु निर्धारित की। आगामी ऋचा है (क्र. २४८)

अपश्चिदेष विम्वो ३ दमूनाः प्र सधीचीरसृजद्- विश्वश्चन्द्राः।
मध्वः पुनानाः कविभिः पवित्रैद्युभिर्हिन्वन्त्यक्तुभिर्धनुत्रीः ॥

भा.— दमूनाः एषः प्रकृति का नियंत्रण करने वाले इस इन्द्र ने विभ्वः सध्रीची विश्वचन्द्राः व्यापक एकत्र हुए समस्त प्रकाशमान अपः मूल तत्त्वों को चित् असृजत् ही प्रकट किया कविभिः ज्ञानियों द्वारा द्युभिः अक्तुभिः दिनों और रातों के प्रयास द्वारा पवित्रैः पवित्र किये गये ज्ञानों से मध्वः मधुर स्वभाव वाले मनुष्यों को पुनानाः परिशुद्ध हुए जन धनुत्रीः धन धान से युक्त होकर हिन्वन्ति बढ़ते हैं व बढ़ाते हैं।

ज्ञानी पुरुषों को चाहिये कि इस दिव्य शक्ति प्रकृति के गुणों व स्वभाव का निरन्तर अध्ययन करें तथा उस ज्ञान से मानव समाज को धन धान से पूर्ण करें तागामी ऋचा है (क्र. २४९)

अनु कृष्णे वसुधिती जिहाते उभे सूर्यस्य मंहना यजत्रे।
परि यत्ते महिमानं वृजध्वै सखाय इन्द्र काम्याः ऋजिप्याः ॥

भा.— सूर्यस्य महा सूर्य, की महान् सामर्थ्य से उभे दोनों वसुधिती ऐश्वर्य के धारण कर्ता सूर्य पृथिवी यजत्रे सुसंगत हुए कृष्णे परस्पर आकर्षण से युक्त हुए अनु = तुल्यता बराबर परिणाम से (जिहाते, √हा = आगे बढ़ना, द्वि वचन लट्. ल. वै. व्या.) परस्पर आगे बढ़ते हैं अर्थात् पृथक् होते हैं हे इन्द्र इन्द्र तेरी ते महिमानं तेरी महिमा के कारण ऋजीप्याः सखायः सरल मार्ग का अनुगमन करने वाले मित्रवत् व्यवहार वाले लोक परि (वृजध्वं, √वृज् = मरोड़ना तुम. कृ.) चारों ओर वक्राकार भ्रमण के लिये काम्याः कामनावान् अभवन् हुए।

सूर्य मंडल में सूर्य ही केन्द्रस्थ नक्षत्र है। पृथिवी और सूर्य परस्पर आकर्षण mutual attraction में बंधे हैं उस आकर्षण के अनुरूप ही वे परस्पर दूर होते हैं अर्थात् सूर्य की सापेक्षता पृथ्वी की गति व दूरी परस्पर आकर्षण पर निर्भर है। The velocity & distance of earth Relative to sun depend on mutual attraction) वृज् धातु के प्रयोग में लोकों के वक्राकार मार्ग पर भ्रमण करने के तथ्य का स्पष्ट कथन निहित है। इसी सूक्त की २१ वीं ऋचा में यह तथ्य आया है कि आकाशगत पिण्ड परस्पर आकर्षण में आबद्ध हैं व्याख्या क्रमांक ८३ में देखें।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय १८

देवयन्तः आपः

वैदिक विज्ञान में ईश्वर की मूल आद्या भौतिक शक्ति को जो त्रिकाल सत् है अदिति प्रतीक से प्रतिष्ठित किया गया है। सृष्टि उत्पत्ति की ईश्वरीय कामना को वहन करने हेतु जब मूल आद्या शक्ति रचना के प्रथम चरण में नियोजित होती है तो उसकी वैदिक संज्ञा अप् या आपः है इस प्रकार वैदिक विज्ञान में सृष्टि रचना हेतु नियोजित मूल शक्ति का प्रथम रूप या परिणाम आपः कहा गया है। ऋचाओं में इस आप को देवयन्तः अर्थात् देवों को प्राप्त करने कि इच्छा वाला कहा गया हैं। इसका तात्पर्य यह है की देव प्रकृति की अवस्थाएँ हैं जो उत्पत्ति धर्मी होने से उत्पत्ति के पूर्व सत्ता में नहीं थीं तब मूल प्रकृति के उद्वेलित स्वरूप आपः ने प्रकृति की इन अवस्था रूप देवों की उत्पति की इच्छ की तथा उस इच्छा के अनुरूप इन्हें यथासमय उत्पन्न किया। यह भाव ऋचा के इस पद देवयन्तः आपः में निहित है। यह देवयन्त : आपः देवों का उपादान कारण है अर्थात् सृष्टि विकास क्रम में प्रकृति का मूल द्रव्य अनेक अवस्थाएँ धारण करता है जो देव संज्ञा से विभूषित हुई हैं। इस देवयन्तः आपः को कदाचित कोई जल महाभूत समझ लें तो वैदिक विज्ञान का अध्याय बंद का बंद ही रहेगा।

1 देवयन्तः आपः— इस अनुच्छेद में प्रकृति के इस मूल उद्वेलित स्वरूप के संबंध में मंडल ७ की ऋचाओं से प्रकाश डाला जाता है। सूक्त ४७ का ऋषि मैत्रावरुणिः वसिष्ठः है देवता आपः है। सूक्त की प्रथम ऋचा हैं (क्र. २५२)

आपो यं वः प्रथम देवयन्त इन्द्रपानमूर्मिकृण्वतेलः।
तं वो वयं शुचिमरिप्रमद्य घृतप्रुषं मधुमन्तं वनेम ॥

भाषार्थ— देवयन्तः आपः हे देवों को प्राप्त करने की इच्छावाले आपः मूल आद्या शक्ति वः आपका इन्द्रपानम् ईश्वर के द्वारा सृष्टि में नियोजित करने के लिये यं जो प्रथमं सर्वप्रथम, आदि सृष्टि काल के इडः मूल जीवनरूप आधारभूत अन्न रूप अर्थात् पोंषक तत्त्व के ऊर्मिम् तरंग के प्रवाह को अकृण्वत् तैयार किया था वः आपके तम् उस शुचिम् पवित्र अरिप्रम् अविकृत, जो यौगिक नहीं, मूल स्वरूप को (घृत प्रुषं, आग्नेयं वै घृतं शत. ब्रा.) तेज से ओत प्रोत मधुमन्तं अमृतमय 1 अक्षय रूप को वयं हम अद्य आज वनेम प्राप्त करें, जानें।

'मधु' पद अक्षय मूल तत्त्व के लिये आता है।

* 1 सत्य त्री पूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वध्या मदन्ति। ऋ. १/१५४/४

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर ने देवों की उत्पत्तिको इच्छा वाले अर्थात् सामर्थ्य वाले आपः तत्त्व को अपने देहभूत आकाश में एकत्र किया था। वह तत्त्व विशुद्ध एवं विकार रहित था अर्थात् वह किसी कारण का परिणाम नहीं था वरन् वह स्वयं मूल कारण था। ईश्वरेच्छा से वह तत्त्व सर्वप्रथम उद्वेलित हुआ था तथा वह ही देवों, प्रकृति की अवस्थाओं का कारण बना। इस वैदिक ज्ञान को हम जान सकें। आगामी ऋचा है, (क्र. २५२)

तमूर्मिमापो मधुमत्तमं वोऽपां नपादवत्वाशुहेमा ।
यस्मिन्निन्द्रो वसुभिर्मादयाते तमश्याम देवेयन्तो वः अद्य ॥

भाषार्थ— आपः हे मूल शक्ते आपः वः आपका तम् उस नपात् कभी पतन को प्राप्त न होने वाले मधुमत्तमं अत्यन्त अक्षय आशुहेमा तीव्रगामी ऊर्मिम् प्रवाह के अपां अप् रूप की इन्द्र अवतु रक्षा करे। यस्मिन् जिस रूप में इन्द्रः वसुभिः वसुओं सहित [1] इन्द्र मादयाते हर्षित हुआ है तम् देवयन्तः उस देवों को उत्पन्न करने की सामर्थ्य वाले वः आपके अप् रूप को हम अद्य आज अश्याम प्राप्त करें।

ध्यान रहे कि यह सजे महिमा जल महाभूत की नहीं गायी गई है। जल तो पृथ्वी पर सर्वत्र उपलब्ध है उसकी प्राप्ति की कामना नहीं की गयी है।

आठ वस्तु अष्ठवर्गी मौलिक कण हैं इन्हीं मौलिक कणों में ईश्वर अपने सृजन की योजना की प्रतिष्ठा मूल ऊर्जा के सौजन्य से करता है यह कहा गया है। उस रूप एवं कार्य का ज्ञान हम मानवों को हो यह कामना की गई है। आगामी ऋचा है। (क्र, २५३)

शतपवित्राः स्वधया मदन्तीर्देवीर्देवानामपि यन्ति पाथः ।
ता इन्द्रस्य न मिनन्ति व्रतानि सिन्धुभ्यो हव्यं घृतवज्जुहोत ॥

भाषार्थ— शत पवित्रः सहस्रों रश्मियों से पवित्र हुई स्वधया मदन्तीः स्वधारणा शक्ति से मदमत्त हुई देवीः दिव्य आपः देवानाम् पाथः देवों के मार्ग को अपि यन्ति ही प्राप्त होती हैं अर्थात् मूल स्वरूप की परिणति देवों के रूप में, प्रकृति की अवस्थाओं के रूप होती है। ताः वे दिव्य आपः- इन्द्रस्य व्रतानि ईश्वर के नियमों को न मिनन्ति नहीं तोड़तीं। उन मूल सिन्धुभ्यः प्रवाहों के लिये तुम घृतवत् जैसे किरणों की हव्यं आहुति को जुहोत करो।

---

* [1] वसु मूल तत्त्व के प्रथम आठ मौलिक कण हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिव्य मूल तत्त्व के प्रवाह सैकड़ों प्रकार की रश्मियों से संयुक्त हैं वे प्रवाह स्वधारणा शक्ति से युक्त स्वयं में पूर्ण सामर्थ्य वाले हैं। इन प्रवाहों की परिणति अन्ततः अनेक अवस्थाओं अर्थात् प्राकृतिक देव रूपों में होती है ये प्रवाह ईश्वर की योजना का उल्लंघन नहीं करते अपितु उसकी योजनानुसार ही वर्तते हैं, विकासरत रहते हैं। वे मूल प्रवाह किरणमय हैं आहुति देकर उस ईश्वरीय शक्ति का सम्मान करो। यह तथ्य ऋचा में कहा गया है। दिव्य मूल शक्ति के प्रवाह की चर्चा चली आ रही है। सूक्त की अन्तिम ऋचा है– (क्रमां. २५४)

या: सूर्यो रश्मिभिराततान याभ्य इन्द्रो अरदद् गातुमूर्मिम्।
ते सिन्धवो वरिवो धातना नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥

भाषार्थ— या: जिन अप् तत्त्वों को, मूल सत्ता को सूर्यः सूर्य रश्मिभिः आततान किरणों से आकाश में फैलाया है याभ्यः जिन मूल तत्त्वों के लिये इन्द्रः ईश्वर नेऊर्मिम् गातुम् प्रवाह का मार्ग अरदत् बनाया ते वे सिन्धवः मूल तत्त्व के प्रवाह नः हमारे वरिवः धारण करने योग्य श्रेष्ठ वस्तुएँ धातना देवें। हे मूल प्रवाहो यूयं आप सदा सदैव स्वस्तिभिः कल्याणकारी द्रव्यों से नः पात हमारी रक्षा करो।

जिस मूल ऊर्जा का प्रवाह आदि सृष्टिकाल में ऊठा था उसी ऊर्जा को सूर्य नित्य अपनी किरणों से फैलाता है अर्थात् सूर्य की संरचना में वही नाभिक ऊर्जा की उत्पत्ति वाला घटना क्रम चल रहा है जो आदि सृष्टि काल में हुए घटना क्रम का संक्षिप्त रूप है। ईश्वर ने अपनी योजना के अन्तर्गत मूल आदि अवस्था में स्थित मूल शक्ति के लिये मार्ग बनाया जिससे मूल शक्ति रूपान्तरित होती हुई जगत् रूप में अभिव्यक्त हो गयी। हम अपने आप को इस प्रकार का बनावें, कि ईश्वर की उन योजना का मार्ग हम तक पहुँचे और हम उसकी कल्याणकारी योजना के सहभागी हों। इस प्रकार इस सूक्त की ऋचाओं में ईश्वरीय आदि शक्ति प्रकृति के सृष्टि में नियोजित रूप को दिव्य आपः की संज्ञा से प्रतिष्ठित कर उसकी महिमा का विस्तार किया गया है।

2 आपो देवीः माम् अवन्तु— इसी मंडल के सूक्त ४९ में भी दिव्य अप् तत्त्व की महिमा गाई गयी है अब उन ऋचाओं की व्याख्या से विषय पर और प्रकाश डाला जाता है। सूक्त का ऋषि वसिष्ठ है और देवता आपः है। सूक्त की प्रथम ऋचा है (क्र. २५५)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात् पुनाना यन्त्यनिविशमानाः ।
इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद् ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥

भावार्थ— समुद्र ज्येष्ठाः आकाशस्थ सूक्ष्म स्थूल भूतों के विस्तार में सर्वश्रेष्ठ सलिलस्य मध्यात् मूलतत्त्व के मध्य से उठे हुए अनिविशमानाः कहीं न ठहरने वाले अर्थात् गतिशील आपः पुनाना यन्ति पवित्र करते हुए आते हैं। वृषभः वज्री इन्द्रः वर्षणशील वज्रधारी इन्द्र ने याः जिसके लिये (रराद्, √रद की लिट् ल.) मार्ग का खनन किया ताः देवीः आपः वे दिव्य अप् तत्त्व इह माम् अवन्तु यहां हमारी रक्षा करें।

समुद्र शब्द वेदों में समस्त आकाश को घेरकर स्थित हुए मूल तत्त्व के फैलाव को कहते हैं (देखिये अ. ११ अनु. ५) तथा शत. ब्राह्मण

अयं वै समुद्रो यूयं वायु पवत, एतस्मात वै ।
समुद्रात् सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि च समुद्रवन्ति ॥

समुद्र वही है जो वायु की तरह प्रवाहशील हो। इस कारण ज्योतिर्पिण्डों तथा सूक्ष्म स्थूल भूतों से भरा आकाश समुद्र कहलाता है।

आकाश में जो सूक्ष्म स्थूल भूतों का विस्तार है उनमें अप् तत्त्व श्रेष्ठ है क्योंकि यह प्रकृति का सृष्टि में नियोजित प्रथम स्वरूप है। यह मूल आद्या शक्ति के मध्य से उद्भूत हुआ अत्यन्त गतिशील तत्त्व है मूल आद्या शक्ति के अधीक्षक इन्द्र ने ही इस तत्त्व की वर्षा की है अतः वह वृषभ संज्ञा से कहा गया है वज्र सधान अर्थात् ऊर्जाओं की नियोजित टक्कर के द्वारा ही इन्द्र परमात्मा ने वृत्त नामक अवरोधक को हटाकर अप् तत्त्व को इच्छित गति प्रदान कर उस के लिये मार्ग प्रशस्त किया है जिससे योजनाबद्ध तरीके से सृजन के क्रम में विकास हुआ है। वे दिव्य अप् तत्त्व अपनी उस सार्वभौमिक योजना के अन्तर्गत हम मानवों की भी, जो उसके ईश्वरीय इच्छा को वहन करने वाले स्वरूप के ज्ञान से परिचित हैं, रक्षा करें अपनी योजना में स्थान देकर। सूक्त की आगामी ऋचा है (क्र. २५६)

या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा याः स्वयञ्जाः ।
समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥

भावार्थ— याः दिव्याः जो दिव्य अर्थात् ब्रह्म शक्ति रूप आपः मूल तत्त्व हैं उत वा और जो स्रवन्ति बहते हैं अर्थात् जल जैसे नीचे बहता है वैसे ही उच्च अवस्थित मूल स्वरूप से अपेक्षाकृत स्थूल रूपों में रूपान्तरित होकर नीचे की अवस्थाओं में उतरते हैं उत वा स्वयं जाः और जो स्वरूप से नित्य वा स्वयंभू

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खनित्रमा परिश्रम से जैसे जल खोदकर प्राप्त किया जाता है वैसे ही जो ईश्वर द्वारा ररादवज्र के आघात से खनन कर प्राप्त किये गये हैं। याः जो आपः शुचयः पावकाः विशुद्ध रूप पवित्रकारी देवीः आपः दिव्य मूल तत्त्व समुद्रार्थाः सूक्ष्म भूतों से भरे विस्तार को उत्पन्न करने हेतु प्रकट हुए वे इह माम् अवन्तु यहां हमारी रक्षा करें।

मूल तत्त्व सृष्टि में कितने प्रकार के रूपों में नियोजित हैं इसका विवरण इस ऋचा में दिया गया है प्रथम वर्ग में वे मूल तत्त्व हैं सृष्टि में नियोजित होने पर जिनके स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है इस वर्ग के तत्त्व सृष्टि में अपने मूल स्वरूप में विद्यमान हैं इस वर्ग को दिव्य या ब्रह्मशक्ति एवं स्वयं जाः अर्थात् स्वयं स्वशक्ति से विद्यमान स्वयभू कहा गया है। विज्ञान के महा- के अनुसार कास्मिक इनर्जी सृष्टि में उसी रूप में विद्यमान है जिस रूप में वह विस्फोट के समय थी। विज्ञान के अनुसार भी जगत् में ऐसे कण (particles) और इनर्जी विद्यमान है जो महाविस्फोट काल का अवशेष है।

मूल तत्त्व का दूसरा वर्ग वह है जो समुद्रार्थाः सूक्ष्म और स्थूल भूतों के रूप में अवस्थान्तरित होता हुआ जगत् की आधारभूत सत्ता के रूप में विद्यमान है। इस वर्ग में नियोजित मूल तत्त्व ने जल की तरह उच्च अवस्थित धरातल रूप मूल स्वरूप से निम्न धरातल रूप स्थूल रूपों को धारण करने हेतु प्रयाण किया है।

ऋचा में कहा गया है कि मूल तत्त्व स्वरूप से स्वयंभू एवं नित्य हैं ईश्वर ने इनकी रचना नहीं की वरन् जैसे मानव धरती में विद्यमान जल को खोदकर प्रकट करता है वैसे ही ईश्वर ने पूर्व से विद्यमान मूल आद्या शक्ति को वज्र प्रहार से उद्वेलित कर जगत् रचना हेतु प्रत्यक्ष प्रकट किया। आगामी ऋचा है। (क्र. २५७)

यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम्।
मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु॥

भावार्थ— यासां जिनके माध्यम से सत्यानृते अवपश्यन् सत्य असत्य को देखते हुए राजा वरुणः जगत् नियन्ता परमात्मा जनानाम् मध्ये याति मनुष्यों के बीच में आता है। मधुश्चुतः मधुर रस टपकाने वाले याः जो शुचयः विशुद्ध रूप पावकाः पवित्रकारी हैं ताः वे देवीः आपः इह माम् अवन्तु दिव्य मूल तत्त्व यहां मेरी रक्षा करें।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृष्टि रचना में नियोजित मूल तत्त्व आपः के माध्यम से ही परमात्मा इस लोक में जगत् रूप में अपनी रचना के द्वारा प्रकट हुआ है। समस्त उत्पन्न जीवों में मानव ही एकमात्र जीव है जिसका सत्य असत्य व्यवहार से संबंध है शेष जीव कर्मफल से मुक्त हैं। परमात्मा की दिव्य मूल आद्या शक्ति अप् ने ही इस मधुर रस रूप जगत् को टपकाया है वह दिव्य शक्ति जगत् का उपादान कारण है जिसमें सृजन के अपने कौशल से ईश्वर ने जगत् के सुन्दर रूप को निर्मित किया है। ईश्वरीय कौशल को वहन करने वाली वह दिव्य शक्ति हमारी रक्षा करें, हमें सद्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दें। सूक्त की अन्तिम ऋचा है, (क्र. २५८)

यासु राजा वरुणो यासु सोमो विश्वे देवा यासूर्जं मदन्ति ।
वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥

भा.— **यासु** जिन मूल तत्त्वों पर **राजा वरुणः** कणों में श्रेष्ट वरुण **यासु** जिन पर **सोमः** विकिरण शक्ति **यासु** जिन पर **विश्वे देवाः** समस्त सूक्ष्म स्थूलभूत **ऊर्जम्** बल प्राण को प्राप्त कर **मदन्ति** शक्ति से मदमत्त होते हैं **यासु** जिनकी शक्ति पर **अग्निः** अग्नि, ऊर्जा **वैश्वानरः** मानव हितकारी रूप से **प्रविष्टः** प्रविष्ट हुआ है **ताः** – – वे दिव्य मूल तत्त्व यहां मेरी रक्षा करें।

जगत में प्रकृति मौलिक कणों, विकिरण, सूक्ष्म स्थूलभूत, ग्रह नक्षत्र आदि जिन रूपों में विद्यमान है वे सब रूप मूल आद्या शक्ति में ही स्थित हैं उन सब का द्राव्यिक कारण आद्या शक्ति है जो अप् रूप से सृजन में नियोजित होती है। वही शक्ति वैश्वानर अग्नि रूप से सूर्य से प्रवाहित हो मानव जीवन का आधार बनी है। इस प्रकार इस सूक्त में दिव्य ब्रह्म शक्ति रूप मूल आद्या प्रकृति के स्वरूप का गुणगान है। जल के लिये दिव्य विशेषण का प्रयोग अर्थहीन है न ही जल की महिमा गाई गयी है। वरुण, सोम, विश्वे देवा और वैश्वानर अग्नि, जल से न तो ऊर्जा ग्रहण करते हैं न ही जल के अस्तित्व पर सूर्य से वैश्वानर अग्नि प्रसारित होती है। इन्द्र और वज्र का भी जल से कोई सरोकार नहीं है अतः दिव्य आद्या शक्ति अप् के स्वरूप को यथावत जान लेने से ही दिव्य आपः के ऋचोक्त विवरण को समझा जा सकता है।

ऋचा (७/३४/२) में स्पष्ट कहा गया है —

विदुः पृथिव्या दिवो जनित्रं शृण्वन्त्यापो अधः क्षरन्तीः ।

दिवः जनित्रं द्युलोक की उत्पत्ति को **पृथिव्याः जनित्रं** पृथ्वी की उत्पत्ति **अधः क्षरन्तीः आपः** नीचे की ओर बहने वाली आपः के प्रवाह **शृण्वन्ति** सुनते हैं अर्थात् जानते हैं **तत् विदुः** इस रहस्य को जानो।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उच्च स्थित मूल आद्या स्वरूप से प्रकृति नीचे की अतेक्षाकृत स्थूल अवस्थाओं में अवस्थान्तरित होती है तब वह सभी अवस्थाओं से निष्क्रमण करती है अत: वह सभी अवस्थाओं को धारण करने हुए विकसित होने के कारण सभी अवस्थाओं से परिचित है। वह मूल शक्ति अपने अन्तिम रूप द्युलोक और पृथिवी में परिणत होती है अत: उनकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई यह घटना उसी मूल तत्त्व पर घटित हुई है। इस तथ्य को समझ लेना आवश्यक है इस प्रकार अप् तत्त्व का प्रयोग सृजन में नियोजित मूल प्रकृति के लिये हुआ है यह इस अध्याय में देखा गया।



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय १९

प्रकृति के स्वरूप का रोचक विवरण

मूल प्रकृति अनादि स्वरूपा है। मूल प्रकृति ईश्वर की आद्या शक्ति है मूल प्रकृति जगत् का उपादान कारण है सृष्टि रचना हेतु नियोजित होने पर प्रकृति अतिशय उद्वेलित हो उग्र स्वरूपा हो जाती है प्रकृति के उस स्वरूप की वैदिक संज्ञा अप् तत्त्व है। आदि सृष्टि में उग्र स्वरूप प्रकृति से महदग्नि पिण्ड की उत्पत्ति होती है जिसका विवरण अध्याय ९ में दिया जा चुका है। अनन्तर उद्वेलित अप् तत्त्व में तीव्र गति से वर्तुलाकार प्रसार होता है। इस क्रिया का प्रतीक मात रिश्वन् है।

मूल प्रकृति त्रिवर्गी है वरुण और मित्र प्रकृति के मौलिक धनात्मक व ऋचात्मक कणों के संघात हैं और सोम विवरण ऊर्जा है। यह ऊर्जा ही सर्व प्रथम उद्वेलित होती है अनन्तर वह उद्वेलित ऊर्जा वरुण, मित्र कणों के समुदाय को उद्वेलित करती है इस प्रकार सृष्ट्यारंभ होता है। कालान्तर में विकास के चरण में सप्तवर्गी परमाणु उत्पन्न होते हैं। जिन्हें सप्त ऋषि कहा गया है। ऋषि शब्द स्वादि ऋष्=वेग से जाना धातु से व्युत्पन्न है तथा गतिशील कणों के लिये उपयुक्त है। यह प्रकृति ईश्वर के सकाश से बार बार जगत् रचती है और बार बार जगत् को लय करके पुनः मूल स्वरूप को प्राप्त होती है। यह समस्त विव रण ऋग्वेद मंडल १० के सूक्त १०९ में अति सुन्दर ढंग से आया है इस विवरण को प्रस्तुत करना ही इस अध्याय का प्रमुख लक्ष्य है।

सूक्त की प्रथम ऋचा है (क्र, २५९)

तेऽवदन्प्रथमा ब्रह्म किल्विषेऽकूपारः सलिलो मातरिश्वा।
वीलहरास्तप उग्रो मयोभूरापो देवीः प्रथमजा ऋतेन॥

भा.— ते प्रथमा वे आदिकाल में हुए अकूपारः महासूर्य अर्थात् महदग्नि पिण्ड सलिलः आपः मातरिश्वा मातरिश्वन् ने ब्रह्म किल्विषे प्रकृति की विकृतियों के विषय में अवदन् बताया ऋतेन् सत्य मूल कारण से या स्वभाविक प्रवाह से प्रथम जाः सबसे पूर्व उत्पन्न होने वाले वे तीनों वीडुहराः आगे ले जाने वाली दृढ़ रचना उग्रः तपः उग्र रूप से प्रज्वलित महदग्नि पिण्ड देवीः आपः दिव्य क्रियात्मक मूल तत्त्व अप् तथा मयः भूः कल्याणकारी मातरिश्वन् हुए।

सर्व प्रथम अप् का महामण्डल उद्भूत हुआ। अनन्तर यह मण्डलाकार अग्नि काण्ड से संयुक्त हो गया। जिसे वेद में हिरण्डगर्भ और विज्ञान में विग बैंग

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा गया है। इस अग्नि काण्ड के परिणाम स्वरूप जो ऊर्जा उत्पन्न हुई उससे मूल तरल चारों ओर प्रसारित होने लगा। वेद में इस स्थिति को मातरिश्वन् कहा गया। आदिकाल में इन तीन सत्ताओं अप्, महदग्नि पिण्ड एवं मातरिश्वा ने सृष्टि रचना की प्रारंभिक नींव स्थापित की। सूक्त की दूसरी ऋचा में यह बताया गया है कि त्रिवर्गी प्रकृति के किस अंश ने सर्वप्रथम मूल तत्त्व को आन्दोलित किया। ऋचा है (क्र. २६०)

सोमो राजा प्रथमो ब्रह्म जायां पुनः प्रायच्छदहृणीयमाना।
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय ॥

भा.— राजा सोमः सर्वोच्च सत्ता अर्थात् मूल तत्त्व सोम प्रथमः आदिकाल में पुनः प्रलय के अनन्तर फिरसे (अ-हृणीयमानः √हृ हि = लज्जित होना) तत्पर होकर ब्रह्मजायाम् ईश्वर की पत्नी प्रकृति को प्रायच्छत् अच्छी प्रकार उत्तेजित किया। (अनु = पीछे, अर्तिता = अर्द (गतौ) + क्तिन् + तल्) गतिशीलता में पिछड़े मित्रः वरुणः असीत् दिव्यांश मित्र वरुण थे। अग्निः शक्ति रूप इस सोम होता प्रमुख सृष्टि यज्ञ कर्ता अर्थात् संगतिकरण संपादन कर्ता ने हस्तगृह्य प्रकृति को मानो हाथ से पकड़कर आ निनाय शक्ति पूर्वक आगे किया।

प्रकृति के द्रव्य भाग (matter part) अपेक्षाकृत कम उद्वेलित थे। विकिरण सोम ने उन्हें अतिशय उद्वेलित किया। इस प्रकार मूलतत्त्व के द्रव्य भाग और विकिरण के मध्य मंथन आरंभ हो गया। इस मंथन की क्रिया में सोम विकिरण का वर्चस्व था। (compare modern cosmology)
आगामी ऋचा है (क्र. २६१)

हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेयमिति चेदवोचन्।
न दूतस्य प्रमे तस्थ एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य ॥

भा.— अस्याः इस प्रकृति का (आधिः = धरोहर, कोश) धरोहर वाला अर्थात् मूल स्वरूप (जो ईश्वर के पास धरोहर रूप से नित्य हैं) हस्तेन एव ग्राह्य व्यापक ईश्वरीय बल व इच्छा शक्ति से हाथ के समान ग्रहण करने योग्य है इयम् ब्रह्म जाया इति च इसे विद्वानों ने परमेश्वर की पत्नी के समान अवोचन् कहा है। एषा यह दूताय किसी प्रतिनिधि (प्र-हृये, √हि का तुम. कृ.) प्रेरणा के लिये न तस्थे विद्यमान न थी अर्थात् स्वयं ईश्वर के अतिरिक्त किसी अन्य के न तो वश में थी न ही किसी अन्य से प्रेरणा ग्रहण करती थी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा क्षत्रियस्य राष्ट्रं तथा राजा के आधीन जैसे राष्ट्र संपत्ति सुरक्षित रहती है वैसे ही वह प्रकृति गुपितम् संरक्षित हुई गुप्त रूप से ईश्वराधीन विद्यमान थी।

मानव का जैसे उसकी देह पर अधिकार है वह जब इच्छा करता हैं उसका हाथ उसको इच्छानुरूप गति करता व कार्य करता है जब इच्छा नहीं करता उसका हाथ शान्त रहता है इसी प्रकार प्रकृति ईश्वरीय हाथ की तरह उसकी इच्छा के वशीभूत है। मूल प्रकृति ईश्वर की धरोहर अर्थात् निधि है एतदर्थ नित्य हैं विद्वान् प्रकृति को ईश्वर की पत्नि ही कहते हैं जिसका अर्थ यह है कि प्रकृति ईश्वर की नित्य शक्ति है वह प्रकृति ईश्वर के अतिरिक्त उसके किसी प्रतिनिधि से कतई संचालित नहीं है ऋचा ने इस वाक्य में चेतन देवों की सत्ता को नकारा है कोई भी चेतन देव ईश्वर का प्रतिनिधि व सहायक नहीं है क्योंकि प्रकृति ईश्वर के अतिरिक्त किसी अन्य की इच्छा से व बल से संचालित नहीं है। जैसे राष्ट्र के अभाव में राजा की कल्पना साकार नहीं हो सकती वैसे ही प्रकृति रूप ईश्वरीय गुप्त शक्ति के अभाव में ईश्वर का प्रभुत्व किस पर होगा, प्रकृति की सत्ता में ही ईश्वर की ईश होना सार्थक है। आगामी ऋचा है— (क्र. २६२)

देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्त ऋषयस्तपसे ये निषेदुः।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन् ॥

भा.— ये एतस्याम् पूर्वे जो इनमें पूर्व के सप्त ऋषयः सात तत्त्व [1], सप्त महाज्ञानी पुरुष तपसे निषेदुः अग्निदाह में थे, तप के लिये बैठे देवाः उन तत्त्वों ने, उन ऋषियों ने अवदन्त बतलाया कि ब्राह्मणस्य जाया ईश्वरीय शक्ति प्रकृति (उपनीता √नी का क्तान्त नीत) सृष्टि रचना हेतु आगे आती हुई भीमा अति भयानक हो जाती है उस दुर्धा असहनीय दुर्धर विशाल प्रकृति को परमे व्योमन् सर्व व्यापी ईश्वर ही दधाति धारण करता है।

---

1 सप्त ऋषय पद सप्त वर्गी प्राकृतिक तत्त्वों के लिये आता है। अथर्ववेद में इसका स्पष्ट उल्लेख है—

अग्ने जायस्वादितिर्नाथितेयं ब्रह्मौदनं पचति पुत्रकामा।
सप्त ऋषियो भूतकृतस्ते त्वा मन्थन्तु प्रजयासहेह ॥

हे अग्ने प्रकट हो। यह याचिता मूल मातृ शक्ति परिणामों को इच्छा वाली ब्रह्म के अंगभूत शाश्वत उपादान कारण रूप अन्न को पकाती है। महभूतों को बनाने वाले सात ऋषयः प्रकृतिक तत्त्व वे तुझे हे अग्ने, तेरी सह शक्तियों सहित अवश्य मन्थन करें। आज्ञार्थ होने से इसमें इतिहास का पूर्ण निषेध है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृष्टि उत्पत्ति के क्रम में सप्तवर्गी परमाणु (सप्तार्ध गर्भा भुवनस्यरेतो ऋ. १/१६४/३२) उत्पन्न होते हैं उन परमाणुओं ने साक्षी होने से यह बताया (यह रूपक प्रयोग है) अथवा पूर्व के सप्त महाज्ञानी ऋषियों ने तपस्या से यह रहस्य जाना कि सृष्टि में नियोजित होते ही प्रकृति अत्यन्त भयंकर एवं दुर्घष रूप धारण कर लेती है जिसे केवल सर्वव्यापी ईश्वर ही धारण कर सकता है ।

इस ऋचा में पुनः एक ईश्वरवाद की प्रतिष्ठा हुई है और यह स्पष्ट कहा गया है कि प्रकृति के अति दुर्दमनीय भयानक रूप को परमव्योमवत व्यापक ईश्वर के अतिरिक्त धारण करने में कोई अन्य समर्थ नहीं है वैदिक चेतन देवताओं की कल्पना सर्वथा निराधार एवं वेद की आन्तरिक साक्षी के प्रतिकूल है । अतः यह सिद्ध होता है कि वेद के देवता प्रकृति की अवस्था विशेष के सूचक हैं और जब वे चेतन की तरह कहे गये हैं तब वे प्रकारान्त से ईश्वर के ही सूचक हैं। आगामी ऋचा है (क्र. २६३)

ब्रह्मचारी चरति वेविषद्विषः स देवानां भवत्येकमङ्गम् ।
तेन जायामन्वविन्दद् बृहस्पतिः सोमोन नीतां जुह्वं न देवाः ॥

भा.— ब्रह्मचारी ब्रह्माण्ड में विचरण करने वाला विकिरण सोम (विषः वेविषत्, √विष्=सक्रिय होना का शत्रन्त) सक्रिय तत्त्वों को (सूक्त की २ री ऋचा के वरुण मित्र को) और अधिक सक्रिय करता हुआ चरति सर्वत्र गति करता है । सः वह सोम देवानाम् देवों का एकं एक, अभिन्न (अङ्गम्=संपूरक, मन, कोश) संपूरक भवति होता है । नीतां जायाम अगुवाई करती हुई प्रकृति की बृहस्पति लोकों के अधीश्वर ने तेन सोमेन उस सोम के द्वारा वैसे ही अनु अविन्दत प्राप्त कर लिया जुह्वं न देवाः जैसे यज्ञाग्नि में जलकर सूक्ष्म हुए द्रव्यों को सूक्ष्म स्थूलभूत पा लेते हैं ।

आदिकाल में सोम विविरण मूल तत्त्वों को उद्वेलित करता है । द्रव्यों की उत्पत्ति में सोम का योगदान है ऊर्जा देवों की उत्पत्ति में संपूरक है । ऊर्जा के माध्यम से ही ईश्वर प्रकृति को वश में करता है ।

आध्यात्म में सोम ईश्वरीय ईक्षण शक्ति है उसी के माध्यम से ईश्वर देवों की उत्पत्ति करता है वह देवों के स्वरूप का अभिन्न ईश्वरीय मन हैं । इन प्रकार देव भौतिक रूप में प्रकृति की अवस्थाएँ हैं और आध्यत्मिक रूप में ईश्वर का स्थानापन्न रूप है । आगामी ऋचा है (क्र. २६४)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या उत ।
राजानः सत्यं कृण्वाना ब्रह्मजायाम् पुनर्ददुः ॥

भा.— देवाः देवों ने वै निश्चित ही पुनः फिरसे अददुः स्वरूप को दे दिया अर्थात् त्याग दिया उत और मनुष्याः मानव भी पुनः फिर से देह त्याग पुनर्जन्म में प्रवृत्त हुए । सत्यं कृण्वानाः सत्य, नित्य स्वरूप को धारण किये हुए राजानः सर्वोच्च तत्त्व मित्र, वरुण, अर्यमन् ने ब्रह्मजायाम् ईश्वर की प्रकृति को पुनः फिर से ददुः सृजन में नियोजित करने हेतु अपनी शक्ति दी ।

देव सृजन काल में अपने स्वरूप को खोकर मूल प्रकृति में लय को प्राप्त होते हैं । इसी प्रकार मानव भी देह त्याग करके फिरसे पुनर्जन्म में देह की प्राप्त करते हैं । किन्तु मूल तत्त्व सदैव एकसे रहते हैं । मित्र, वरुण, अर्यमन् त्रिवर्गी प्रकृति के तीन नित्य वर्ग हैं । आदि सृष्टि काल में ये तत्त्व अपनी शक्ति से सृजन को आरंभ करते हैं । इस प्रकार जगत् का मूल उपादान कारण मित्र, वरुण, अर्यमा है । इन्हीं की समग्र सत्ता को प्रकृति या अदिति कहते हैं । सूक्त की अन्तिम ऋचा है (क्र. २६५)

पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वी देवैर्निर्किल्विषम् ।
ऊर्जं पृथिव्या भक्त्वायोरुगायमुपासते ॥

भा.— वे मूल तत्त्व मित्र, वरुण, अर्यमन् ब्रह्मजायां प्रकृति को देवैः निर्किल्विषम् कृत्वी देवों के द्वारा विकारों से रहित करके अर्थात् प्रकृति को अवस्थाओं से मुक्त करके पुनः दाय मूल अवस्था में जिसमें वह आदि काल में थी करके दे दिया । वे मूल तत्त्व ऊर्जं पृथिव्या ऊर्जा को द्रव्य भाग से भक्त्वाय पृथक् करके उरूगायम बहुस्तुत्य ब्रह्म के उप आसते पास जाकर बैठते हैं ।

सृष्टि उत्पत्ति के पूर्व प्रकृति अपने मूल त्रिवर्गी मित्र वरुण अर्यमन् स्वरूप वाली होती है । सृष्टि उत्पत्ति में प्रकृति में अनेक परिवर्तन होते हैं और वह अनेक अवस्थाएँ धारण करती है इस प्रकार प्रकृति विकारों से युक्त हो जाती है । प्रकृति की अवस्थाओं को विभिन्न देव संज्ञा से विभूषित किया जाता है । इस प्रकार देवों की उत्पत्ति होती है और प्रकृति देव सत्ता से युक्त हो जाती है ।

राजानः पद मित्र वरुण अर्यमन् के लिये आता है यथा ता सम्राजा । ऋ १।१३६।१ सम्राजा या घृतयोनि ऋ ५।६८।२ महो राजानः ईशते ऋ ७।६६।६ राजानौ अनभिद्रुहा ऋ ।२।४१।५ राजाना मित्रवरुणा: १०।६४-।५ मित्रो राजाना अर्यमापोधुः। ७।७०।४

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रलय काल में[1] प्रकृति के विकार प्रकृति की मूल सत्ता में लय हो जाते हैं अर्थात् देवों की सत्ता का अन्त हो जाता है तब प्रकृति फिरसे मूल स्वरूप में हो जाती है प्रकृति अपने मूल स्वरूप में त्रिवर्गी है वरुण मित्र प्रकृति के द्रव्य भाग के दो वर्ग हैं तथा अर्यमन् या सोम प्रकृति का ऊर्जा भाग है। ऋचा में द्रव्य भाग को पृथ्वी कहा गया है और ऊर्जा भाग के लिये ऊर्जा शब्द का ही प्रयोग है इस प्रकार प्रलय काल में प्रकृति अपने दो भागों ऊर्जा और द्रव्य में विभक्त हो ब्रह्म शक्ति के रूप में ब्रह्म का ही अंश हो स्थित हो जाती है। यही बात ऋचा में कही गयी है।

इस प्रकार प्रकृति अपने मूल स्वरूप से निर्गमन करती हुई किस प्रकार जगत् रूप में आती है तथा जगत् रूप से वापिस अपने मूल रूप में प्रलयावस्था में पुनः कैसे जाती है इस सब परिवर्तन का रोचक विवरण सूक्त में दिया गया है।



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय २०

मूल कणों की परस्पर स्वभावगत क्रिया ऋभु शक्ति

वैदिक देवता ऋभु किस प्राकृतिक शक्ति के प्रतीक हैं इस रहस्य का उद्घाटन इस अध्याय में ऋग्वेद मंडल १ सूक्त १६१ को ऋचाओं से किया गया है। इस सूक्त का ऋषि दीर्घतमा है और देवता अर्थात् विषय ऋभवः है। इस सूक्त में अग्नि और ऋभुओं का वैयक्तीकरण कर उनके मध्य रोचक संवाद के माध्यम से पदार्थ विज्ञान के एक महत्वपूर्ण पक्ष पर प्रकाश डाला गया है।

ऋभु शक्ति मौलिक कणों के मध्य आकर्षण की क्रिया है जो कणों की स्वाभाविक सत्ता का आन्तरिक मौलिक गुण है जो मूल कणों की भांति ही नित्य है। यह क्रिया वेद के अनुसार चार प्रकार से कार्य करती है। इन क्रियाओं के फलस्वरूप ही परमाणु रचना होती है और चार प्रकार के बल (Force) उत्पन्न होते हैं। परमाणु रचना में चार प्रकार की क्रिया इस प्रकार कार्य करती है। प्रथम आकर्षण धनात्मक कणों के मध्य होता है जिससे धनात्मक प्रोटान कण परस्पर युक्त होते हैं। ध्यान रहे धनात्मक कणों को परस्पर प्रत्याकर्षण (repsulion) करना चाहिये। किन्तु जब कणों के मध्य की दूरी अत्यन्त अल्प (१०^{-7} to १०^{-3}) रहती है तब शक्तिशाली परस्पर क्रिया (strong interaction) नाम का आकर्षण कार्यरत होता है जिससे धनात्मक कण धनात्मक को और ऋणात्मक कण ऋणात्मक को आकर्षित कर सयुक्त हो जाते हैं। दूसरे प्रकार के आकर्षण से उदासीन (न्यूट्रल) कण न्यूट्रान नाभिक से युक्त हो जाता है जिससे परमाणु की नाभिक बनती है तीसरे प्रकार का आकर्षण धनात्मक और ऋणात्मक विरूद्ध चार्ज्ड कण प्रोटान और इलेट्रान के मध्य होता है जिससे इलेक्ट्रान अणु के (atomic outer shell) बाह्य घेरे में आबद्ध होता है। और चौथे प्रकार का क्रिया इस प्रकार होती है कि ऋणात्मक चार्ज्ड कण इलेक्ट्रान परस्पर के प्रत्याकर्षण (repulsion) का उलंघन करके भी बाह्य घेरे में बने रहते हैं।

इसी प्रकार चार प्रकार के आकर्षण क्रमशः शक्तिशाली क्रिया (strong interaction), कमजोर क्रिया (week reaction) चुम्बकीय आकर्षण (magnetic force) और गुरुत्वाकर्षण (gravitational attraction) हैं जिनसे चार प्रकार के क्षेत्र (field) बनते हैं। इनमें प्रथम दो बल सीमित क्षेत्र में कार्यरत होते हैं और पीछे के दो असीमित क्षेत्र में कार्यरत होते हैं। ऋभु देवता

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन चार प्रकार को क्रिया शक्ति की प्राकृतिक गुण-शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है।

सूक्त की दूसरी ऋचा में अग्नि ने ऋभुओं से कहा कि मूल तत्त्व को चार प्रकार से संयुक्त करो अर्थात् कणों के संयोग में चार प्रकार के बल कार्य-रत रहते हैं। दो बल सीमित क्षेत्र वाले होते हैं और दो बल असीमित क्षेत्र वाले होते है। चारों प्रकार के बल प्रकृति के जिस गुण से उत्पन्न होते हैं उस प्राकृतिक गुण को ऋभु शक्ति या देवता कहा गया है। सर्व प्रथम ऋभुओं ने एक युग्म अर्थात् दो प्रकार के बलों की उत्पत्ति की। पुनः अश्व को अर्थात् शक्ति को तैयार किया। चार प्रकार के बलों से देवों की उत्पत्ति हुई अर्थात् मूल प्रकृति से पदार्थ की विभिन्न अवस्थाओं की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार एक ही शक्ति से **अन्या नामानि कृण्वते** अनेक नाम रूप धारी हो जाती है।

ऋभु शक्ति कणों में परस्पर संगतिकरण करती है अर्थात् आकर्षण बल द्वारा उन्हें संयुक्त कर कणों को यौगिक रूप प्रदान करती है ऋभुओं ने आकाश में आवरण रहित मूल कणों को उद्वेलित किया तथा शक्ति से शक्ति को प्रादुर्भूत किया। इस प्रकार सृष्टि रथ को संयुक्त किया। ऋचाओ के इस कार्य में सोम विकिरण का योगदान रहता है (क्र. २७२-७३) ऋभु शक्ति लोकों को चारों ओर ओर से आच्छादित करके गति करती है। यह ऋभु शक्ति आदि सृष्टि काल में कार्य आरम्भ करती है इसे ऋभुओं का जागना कहा गया है।

ऋभुओं का प्रमुख लक्षण बल के क्षेत्र की रक्षा करना है। यह तथ्य ऋचा क्रमांक २७६ में कहा गया है। ऋभु शक्ति चार प्रकार के बलों को उत्पन्न करती है। इनमें से दो बल जो असीमित क्षेत्र में कार्य करते हैं क्रमशः विद्युत बल और गुरुत्वाकर्षण बल हैं। असीमित क्षेत्र में कार्यरत बलों का वैदिक प्रतीक मरुत देवता है जिसकी विस्तृत विवेचना अध्याय १३ और १५ में की गयी है। ऋचा में कहा गया है कि ऋभुओं को पाने की इच्छा वाले मरुतों का क्षेत्र आकाश है (क्रमांक २७६) जिसका तात्पर्य यह है कि मरुत शक्ति (tends to Rivoo Shakti) ऋभु शक्ति में संयुक्त हो जाती है सूर्थात् चारों प्रकार के बलों का स्रोत एकाश्रयी है जो बलों की अन्ततः अभिन्नता का सिद्धान्त है (ultimately tend to a unified field theory) अग्नि भूमि से संचार करती है अर्थात् गुरुत्वाकर्षण ज्योतिर्पिण्डों से कार्यरत होता है। चार प्रकारों के बलों के क्षेत्र की अभिन्नता का विचार अत्याधुनिक विज्ञान है किन्तु यह अभी सिद्ध नहीं हुआ है। वेद के ऋभु प्रतीक में चारों प्रकार के बलों का प्रतिनिधित्व करने वाली

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति या क्षेत्र का सिद्धान्त निहित है। इनमें से दो प्रकार के बल जो असीमित क्षेत्र में कार्यरत रहते हैं मरुत प्रतीक में निहित माने गये हैं। इस प्रकार मरुत बल ऋभु शक्ति का विस्तार है। इस अध्याय में सूक्त की सभी १४ ऋचाओं की व्याख्या है जिनमें आये विज्ञान तत्त्व को संबंधित ऋचा के अन्तर्गत कहा गया है।

१ ऋभुः शब्द का निर्वचन— ऋभुः शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में कहा गया है (हला. कोश) ऋ स्वर्गे देवमातुरदिते र्वा भवति यः। जिसका स्पष्ट अर्थ यह है कि ऋभु देवता देवों को जननी अदिति नाम्ना मूल आद्या शक्ति प्रकृति का ही नित्य गुण है स्वरूप गुण है नित्य कण समूह का स्वभावगत परस्पर आकर्षण (interaction) है। इस व्युत्पत्ति का आशय यह है कि जिस प्रकार चित्रकार से चित्रकारी अभिन्न है वैसे ही ऋभु शक्ति माता प्रकृति का अभिन्न गुण है। मौलिक कणों की यही स्वभावगत क्रिया शक्ति चार प्रकार के बलों के उद्भव का कारण है उद्गम का स्रोत है। इसी स्वभाविक गुण में चार प्रकार के बल (force) निहित हैं। इस प्रकार वेद के अनुसार चार प्रकार के बलों का (like enegy) स्रोत एकाश्रयी होने से बलों का परस्पर आदान प्रदान होना अर्थात् एक से दूसरे की उत्पत्ति और एक का दूसरे में विलय अत्यन्त स्वाभाविक निष्कर्ष है। इस कारण चार प्रकार के बल एक ही क्षेत्र के चार रूपान्तर (differt forms of the same unifiedfield) हैं।

ऋभुओं को देवों का देव कहा गया है।

ऋभवो नाम तत्रान्ये देवानामपि देवताः।
तेषां लोकाः परतरे यान्यजन्तीह देवताः। महाभारत—

उन ऋभुओं का आवास (परतः=परे, ऊपर कोशः) परे है जहाँ वे देवों की रचना करते हैं।

ऋभुओं के संबंध में जो वैदिक प्राचीन धारणा रही होगी उसकी अभिव्यक्ति इस श्लोक में पाई जाती है। इसका तात्पर्य यह है कि

ऋभु शक्ति की सत्ता देवों की सत्ता जिस लोक में है उसके परे है अर्थात् देवों की उत्पत्ति नीचे के लोक में होती है अर्थात् सृष्टि उत्पत्ति क्रम में पीछे के चरणों में होती है और ऋभु शक्ति का प्रादुर्भाव उच्च लोक में अर्थात् सृष्टि उत्पत्ति के प्राथमिक चरण में होता है। इस प्रकार ऋभु शक्ति (या देवता) ही अन्य देवताओं, अर्थात् भौतिक स्थितियों को प्रादुर्भूत करने वाली है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि ऋभु शक्ति मूल प्रकृति का स्वरूप गुण है जो सृष्टि उत्पत्ति के प्रथम चरण में कार्यरत हो जाता है यही बात इस शास्त्र वचन (हरिवंश) में है—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आद्याः प्रभूता ऋभवः पृथुकाश्च दिवौकसः ।
सर्वप्रथम उद्भुत हुए पुत्रीरूप ऋभुओं का आवास आकाश है या दिव्य है । अर्थात् ऋभु शक्ति मूल मातृ शक्ति है इस कारण दिव्य कही गयी है ।

निरुक्त (११/१५) ने इस प्रकार निर्वचन किया है—
ऋभव उरु भान्तीति वा । ऋतेन भान्तीति वा । ऋतेन भवन्तीतिवा ।
ऋभवः इसलिये कि ये (उरु + √भा) विस्तार से चमकते हैं । ये प्राकृतिक रूप से स्वभाव से (ऋत + √भा) चमकते हैं । ये (ऋत + भू) स्वभाव से विद्यमान है प्राकृतिक प्रवाह में इनकी विद्यमानता है ।

इन सभी निर्वचनों से ऋभुओं का प्रकृति के स्वाभाविक गुण विद्युत रूप चुम्बकीय आकर्षण शक्ति होना सार्थक है । भासमान होने का अर्थ गुण की अभिव्यक्ति से हैं ।

२.— ऋभु चार प्रकार के आकर्षण के प्रतीक—

सूक्त की प्रथम ऋचा है– (क्र. २६६)

किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठो न आगमन्किमीयते दूत्यं कद्यदूचिम ।
न निन्दिम चमसं यो महाकुलोऽग्नेभ्रातर्द्रुण इद्तिमूदिम ॥

भा.— (नः आगमन् √गम् लिट् प्र. म. पु. एक व.) हमारे पास जो तू आया किम् उ श्रेष्ठः क्या श्रेष्ठ ही है किम् यविष्ठः अथवा छोटा है । किम् दूत्यम् ईयते किस कारण से दूत कर्म को प्राप्त हुआ (कत् यत् ऊचिम √वच् लिट् ल. प्र. पु.) हम लोगों ने जो कुछ कहा चमसं यः महाकुलः पात्र जो महाकुल उत्पन्न है न निन्दिम उसकी निन्दा न करें ।

भ्रातः अग्ने हे भरण पोषण करने वाले अग्ने द्रुणः भूति ऊदिम शीघ्र गति से जाने वाले की प्रसंसा करते हैं ।

ऋभुओं ने अग्नि से कहा कि क्या तू सर्वोच्च शक्ति है प्रत्युत ऐसा ही है अग्नि मूल ऊर्जा का प्रतीक है । अग्नि ने किस कारण से दूत कर्म करना स्वीकार किया । अग्नि सर्वश्रेष्ठ तत्त्व है वह ब्रह्म का अंग है वह आदि सृष्टि काल में ईश्वर का संदेश लाया कि जगत् का सृजन करना है । उसने यह संदेश ऋभुओं को दिया ऋभुओं ने जब यह जाना कि यह अग्नि ईश्वरीय संदेश लाया है तब उन्होंने उसे ग्रहण किया । आगामी ऋचा में अग्नि ने कहा– (क्र. २६७)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकं चमसं चतुरः कृणोतन तद्वो देवा अब्रुवन्तद्र आगमम् ।
सौधन्वना यद्येवा करिष्यथ साकं देवैर्यज्ञियासो भविष्यथ ॥

भा.— हे (सौधन्वना, धन्व = अन्तरिक्ष, निघ.) अन्तरिक्ष वासी ऋभुओं एकं चमसं चतुरः कृणोतन एक ही पात्र को चार भागों में करो तत् वः देवाः अब्रुवन् ऐसा तुम लोगों को देवों ने कहा तत् वः आगमम् उसको तुम लोगों से कहने मैं अग्नि आया हूँ। यत् ऐवा करिष्यथ यदि तुम लोग ऐसा ही करोगे तो देवैः साकं यज्ञियासः भविष्यथ देवों के साथ संगतिकरण करने वाले हो जाओगे।

भावार्थ— पात्र चमसं शब्द मूल तत्त्व के लिये आया है अग्नि ने ऋभुओं से कहा कि एक ही मूल तत्त्व को चार प्रकार से संयुक्त करो। यदि ऐसा करोगे तो इससे देवों की उत्पत्ति होगी अर्थात् मूल तत्त्व की चार प्रकार से संगति करने से यौगिकों की उत्पत्ति होती है जो देव सज्ञा से विभूषित हैं।

जब विद्युत वहन करने वाले कण अत्यधिक समीप होते हैं तो समान विद्युत वहन करने वाले कण परस्पर आकर्षित होते हैं इसको (strong reaction) शक्तिशाली आकर्षण कहते हैं धनात्मक चार्ज्ड कणों का परस्पर आकर्षण तथा ऋणात्मक चार्ज्ड कणों का परस्पर आकर्षित करना। जब कणों के मध्य कुछ दूरी होती है तो परस्पर विरोधी कण एक दूसरे को आकर्षित करते हैं किन्तु समान चार्ज्ड कण प्रत्याकर्षण (repel) करते हैं इस प्रकार दो प्रकार की क्रिया होती है और दो प्रकार के बल असीमित क्षेत्र में गुरुत्वाकर्षण बल और विद्युत बल के रूप में कार्य करते हैं इस प्रकार चार प्रकार के बल ऋभु शक्ति से उत्पन्न होते हैं।

३. ऋभुओं द्वारा एक युग्म की उत्पत्ति—

आगामी ऋचा में ऋभुओं द्वारा एक युग्म की उत्पत्ति कही गयी है सूक्त की आगामी ऋचा में अग्नि ने आगे कहा—(क्र. २६८)

अग्निं दूतं प्रति यदब्रवीतनाश्वः कर्त्वो रथ उतेह कर्त्वः ।
धेनुः कर्त्वा युवशा कर्त्वा द्वा तानि भ्रातरनु वः कृत्व्येमसि ॥

भा.— हे ऋभुओं तुमने दूतं अग्निं प्रति यत् अब्रवीतन दूत अग्नि के प्रति जो यह कहा कि अश्वः कर्त्वः शक्ति को तैयार करना है उत् इह रथः कर्त्वः तथा सृष्टि रथ तैयार करना है (धेनुः, धेनुः = पृथ्वी कोश) पृथ्वी कर्त्वा तैयार करना

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है द्वा युवशा कृत्वी दो युवा (कण प्रतिकण या धनात्मक कण व ऋणात्मक कण या दो प्रकार के सीमित क्षेत्र के बल) तैयार करना है तानि कृत्व्या उन सब कार्यों को करके भ्रातः हे भाई वः अनु एमसि तुम्हारे पीछे आते हैं।

ऋभु मूल घटकों को संयुक्त करने वाली शक्ति अर्थात् घटकों को आकर्षण में बांधने वाली शक्ति है। ऋभु शक्ति के द्वारा ही जगत् उत्पादक सामर्थ्य तैयार होती है उसीसे प्रकृति के दो महत्वपूर्ण बल बनते हैं इन बलों का कार्य मौलिक कणों का संयोग करना है। एक प्रकार के बल से समान विद्युत वहन करने वाले कणों का परस्पर संयोग होता है जिससे परमाणु का नाभिक तैयार होता है और दूसरे प्रकार के बल से परस्पर विरुद्ध विद्युत वहन करने वाले कण परस्पर संयोग करते है इससे परमाणु का बाहरी भाग बनता है। आगामी ऋचा में ऋभुओं ने पूछा– (ऋ. २६९)

चक्रवांस ऋभवस्तदपृच्छत क्वेदभूद्यः स्य दूतो व आजगन्।
यदावाख्यच्चमसाञ्चतुरः कृतनादित्त्वष्टा ग्नास्वन्तन्यौनजे॥

भा.— चक्रवांसः ऋभुवः तत् अपृच्छत उद्यमी, कार्यशील ऋभुओं ने यह पूछा कि यः दूतः स्य नः आजगन् यह जो दूत होकर हमारे पास आया कव इत् अभूत् वह कहां जन्मा था।

यदा त्वष्टा चतुरः कृतान चमसान् जब ईश्वर ने मुख्य चार किये गये पात्र को, क्रिया के चार विभागों को अव अख्यत् पूर्ण रूपसे प्रकाशित किया आत् इत् तब ही दूत ग्नासु अन्तः नि आनजे दिव्य शक्तियों के अन्तस् में प्रकाशित हुआ।

भावार्थ— ऋभुओं ने अग्नि की उत्पत्ति का रहस्य पूछा। ईश्वर के साकाश से मूल तत्त्व में प्रारंभिक शक्ति का उदय होता है जिसे अग्नि या दक्ष कहा गया है। मूल कणों के मध्य चार प्रकार के क्रियाएँ होती हैं ये चार प्रकार के बल ही दिव्य शक्तियों अर्थात् देवों की उत्पत्ति के हेतुभूत हैं। आगामी ऋचा है (ऋ. २७०)

हनामैनाँ इति त्वष्टा यदब्रवीच्चमसं ये देवपानमनिन्दिषुः।
अन्या नामानि कृण्वते सुते सचाँ अन्येरेनान्कन्या नामाभिः स्परत्॥

भा.— त्वष्टा यत् अब्रवीत् त्वष्टा ने ऐस कहा कि ये देवपानम् चमसं अनिन्दिषुः जो देवों के द्वारा भोग्य शक्ति के निन्दक हैं एनान् हनाम उन्हें हम

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मारें। अर्थात् सृष्टि उत्पत्ति क्रम में जो वृत्रादि प्राकृतिक अवरोध हैं उनका उच्छेद करें। सुते सचान् सोम। विकिरण को संयुक्त कर ऋभु अन्या नामानि कृण्वते अन्य शक्तियों को, यौगिकों को, अवस्थाओं को बनाते हैं। कन्या अक्षत योनि मूल शक्ति (एनान् अन्यैः नामभिः स्परत् √स्पृ = जीतना की लेट् ल.) इन्हें दूसरे नामों से प्राप्त करें।

भावार्थ— अक्षय योनि मूल शक्तियां सोम विकिरण को संयुक्त कर अनेक यौगिक एवं अवस्थाओं को प्रकट करती हैं अर्थात् उनको प्राप्त कर उन पर विजय करती हैं। आगामी ऋचा है (क्र. २७१)

इन्द्रो हरी युयुजे अश्विना रथं ब्रह्स्पतिर्विश्व रूपामुपाजत।
ऋभुर्विभ्वा वाजो देवाँ अगच्छत स्वपसो यज्ञिम् भागमेतन ॥

भा.— इन्द्रः हरी युयुजे इन्द्र ने दो शक्तियों कण प्रतिकण को संयुक्त किया अश्विना रथं उन दो शक्तियों को सृष्टि रथ के संयुक्त किया। ब्रह्स्पतिः विश्व रूपाम् उप आजत वृहत् पालक देव ने समस्त लोकों को, समस्त भूतों को गतिमान किया हे वाजः ऋभुः विभ्वा देवान् अगच्छत व्यापक बलवान् ऋभु तुम लोग देवों के पास जाओ अर्थात् व्यापक संगतिकरण क्रिया देवों को उत्पन्न करें, संयुक्त करें। सुअपसः यज्ञियम् भागम् एतन उत्तम कर्म से तुम लोगों ने (हे ऋभुओं) सृष्टि यज्ञ के हिस्से को प्राप्त किया।

भावार्थ— इन्द्र की हरि प्रकृति द्रव्य भाग के वर्ग हैं जिन्हें विज्ञान में कण प्रतिकण (particle Anti particle) अथवा धनात्मक चार्ज्ड कण (Hadrons) वा ऋणात्मक चार्ज्ड कण (Leptons) कहते हैं। इन दो शक्तियों ने गमनशील सृष्टि रथ को संयुक्त किया। ऋभु शक्ति, जो पूर्व ऋचानुसार कणों को चार प्रकार के बलों से आकर्षण में बांधती है, कणों के परस्पर व्यापक संगतिकरण एवं संयोग करने वाली आधारभूत शक्ति है। यह तथ्य आगामी ऋचा में कहा गया है।

४. ऋभु आकाशवर्ती शक्ति— यह आगामी ऋचा में कहा गया है (क्र. २७२)

निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिर्यो जरन्ता युवशा ताकृणोतन।
सौधन्वना अश्वादश्वमतक्षत युक्त्वा रथमुप देवान् अयातन ॥

भा.— हे सौधन्वनाः अन्तरिक्ष वासी ऋभुओ तुमने धीतिभिः प्रयत्नों से, बुद्धि पूर्वक कर्मों से (निश्चर्मणः गाम् अरिणीत, √रि लङ्. ल.) चर्म रहित, बाह्य आवरण रहित मूल शक्ति को प्रवाहित किया। या जरन्ता जो सुस्त हो गये थे ता उसको आप लोगो ने युवशा अकृणोतन क्रियावान् बनाया, अश्वात् अश्वं

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतक्षत शक्ति मे शक्ति को उत्पन्न किया उस शक्ति से **रथं युक्त्वा** सृष्टि रथ को संयुक्त कर **देवान् उप अयातन** देवों के पास आ गये।

ऋभु आकास्थ मूल तत्त्व में कार्यरत शक्ति है जिसका कार्य क्रियाहीन तत्त्वों को क्रियाशील करना है तथा नित्य तत्त्वों, कणों में विद्यमान शक्ति से शक्ति को प्रकट करना है जिससे सृजन का कार्य तीव्र गति से चल पड़ता है तथा यथासमय प्रकृति में उपयुक्त अवस्थाओं का विकास होता है। इस प्रकार इस ऋचा में स्पष्ट रूप से ऋभुओं के गुण धर्म को प्रकाशित किया गया है कि ऋभु मूल कणों को परस्पर संयुक्त करके आकर्षण के नियमानुसार यौगिक बनाने वाला बल है यौगिक की रचना के लिये सर्वप्रथम नाभिक (Nucleus) की रचना आवश्यक है। नाभिक में समान चार्ज्ड धनात्मक कणों को एक साथ बाँधने वाला बल कार्य करता है इसे (Strong interaction) परस्पर आकर्षण करने वाली शक्ति शाली क्रिया कहते हैं नाभिक बन जाने के अनन्तर नाभिक में ऋणात्मक चार्ज्ड कण इलेट्रान संयुक्त होते हैं जिसके लिये दूसरे प्रकार के बल का योगदान होता है। इस प्रकार ऋभू शक्ति से यौगिक रचना होती है। आगामी ऋचा है (क्र. २७३)

इदमुदकं पिवतेत्यब्रवीतनेदं वा घा पिबता मुञ्जनेजनम्।
सोधन्वना यदि तन्नेव हर्यथ तृतीये घा सवने मादयाध्वै॥

भा.— हे **सौधन्वना** आकाशचारी शक्तियों। इति **अब्रवीतन** आपने ऐसा कहा था कि **इदं मुञ्जनेजनम् वा घा पिबत** इस घर्षण के द्वारा पवित्र करने वाले को अवश्य पियो। **यदि तत् न एव हर्यथ** यदि वह तुम्हें परितुष्ट नहीं करता तो **तृतीये सवने** तीसरे पेय सोम से **मादयाध्वै** परितुष्ट होने के लिये **इदं ऊदकम् पिवत** इस तरल का पान करो।

ऋचा में तीन प्रकार के पेयों की बात है। द्रव्य के दो भाग ऋणात्मक कण और धनात्मक कण जिन्हें मित्र वरुण कहा गया है दो प्रकार के तरल बनाते हैं तीसरे प्रकार का तरल सोम विकिरण है ऋभुओं अर्थात् आकर्षण के द्वारा बाँधने वाली शक्तियों का काम इन्हीं तीन प्रकार के मौलिक तरलों में होता है।

५. प्रकृति के भागों में कार्य विभाजन—

आगामी ऋचाओं में प्रकृति के भागों में कौन सर्वश्रेष्ठ है इस प्रश्न को उठाकर यह दर्शाया है कि सभी वर्गों के योगदान से सृष्टि रचना होती है अतः कोई गौण नहीं है। सूक्त की आगामी ऋचा है (क्र. २७४)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपो भूयिष्ठा इत्येको अब्रवीदग्निर्भूयिठ इत्यन्यो अब्रवीत् ।
वर्धयन्तीं बहुभ्यः प्रेको अब्रवीदृता वदन्तश्चमसां अपिंशत ॥

भा. एकः इति अब्रवीत् एक ने ऐसा कहा आपः भूयिष्ठाः कि आपः सर्वश्रेष्ठ है, अन्यः इति अब्रवीत् दूसरे ने ऐसा कहा कि अग्निः भूयिष्ठः अग्नि ही सर्वश्रेष्ठ है एकः प्र अब्रवीत् एक ने ऐसा प्रवचन किया कि वर्धयन्तीम् बहुभ्यः बहुतों के द्वारा विस्तार करने वाली प्रकृति ही सर्वश्रेष्ठ है। ऋता वदन्तः सत्य का प्रवचन करते हुए सभी ने (चमसान अपिंशत √पिश=सजाना) शक्ति को सजाया है शक्ति के विभागों के एशवर्य का वर्णन किया है।

भावार्थ— आदि काल में सर्वप्रथम प्रकट प्रकृति का सृष्टि में नियोजित रूप अप् अथवा ऊर्जा रूप अग्नि अथवा विस्तार को पाने वाली प्रकृति में कौन सर्वश्रेष्ठ है यह प्रश्न असंगत है क्योंकि प्रकृति के सभी प्रकार के रूपों का अपना-अपना योगदान है अतः सभी प्रकार के विभाग महत्वपूर्ण हैं सभी ने प्रकृति को सजाकर जगत् रूप में रखा है आगामी ऋचा है, (क्र. २७५)

श्रोणामेक उदकं गामवाजति मांसमेकः पिंशति सूनयाभृतम् ।
आ निम्रुचः शकृदेको अपाभरत्किं स्वित्पुत्रेभ्यः पितरा उपावतुः ॥

भा.— एकः एक पुत्र आपः श्रोणां गां उदकं अव अजति पुष्ट कूल्हे वाली गाय को जल की ओर हाँकता है। एकः सूनया आभृतं मांसं पिंशति एक पुत्र (अग्नि) अच्छी प्रकार ले जायी गयी गाय को अच्छी प्रकार धारण किये गये मांस से रूपवान् बनता है एकः निम्रुचः शकृत अप अभरत् एक पुत्र अस्त होते हुए सूर्य के समय गाय के गोबर को उठाकर फेंका है पुत्रेभ्यः ऐसे पुत्रों से पितरा किम् स्वित् उप अवतुः माता पिता और किस प्रकार रक्षित हों, अर्थात् और क्या अपेक्षा करें।

पूर्व ऋचा में प्रकृति के रूपों की चर्चा है उसमें यह कहा गया है कि प्रकृति के सभी रूपों का अपना अपना महत्व है कोई श्रेष्ठ और कोई गौण नहीं है। प्रकृति के रूपों के कार्य के विभाजन को इस ऋचा में उदाहरण देकर समझाया गया है कि जैसे लोक में किसी माता पिता के तीन पुत्रों में से एक गाय को जल पिलाता है एक चारा खिलाकर पुष्ट करता है और तीसरा गाय के गोबर को फेंकता है तीनों का ही बराबर-बराबर योगदान है अतः तीनों ही माता पिता की बराबर सेवा कर रहे हैं। इसमें कोई श्रेष्ठ और कोई हीन नहीं है। ऐसे ही प्रकृति के तीन रूपों का योगदान है ऋचा में सृष्टि को गौ कहा गया है तीनों पुत्र इस गाय की सेवा करते हैं इनके योगदान से सृष्टि रचना चलती है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति का—प्रथम रूप आपः आदि सृष्टि काल में क्रियात्मक होकर सृष्टि सृजन का आरंभ (Sets the ball of creation rolling) करता है। प्रकृति का रूप अग्नि हिण्यगर्भ रूप में प्रकट होता है जिसकी परिणति सूर्यादि प्रज्वलित लोकों में होती है। ऋचा में कहा गया है कि प्रथम रूप सृजन रूप गाय को पानी पिलाता है इस सृष्टि सृजन रूप गाय का पानी अप् तत्त्व है जो सर्व प्रथम रचना में नियोजित होता है। महाविस्फोट (हिरण्यगर्भ) की स्थिति के अनन्तर प्रसारित हुआ द्रव्य ही इस सृजनरूप गाय का चारा है यही द्रव्य ताप गिरने पर जगत् को स्थूल बनाता है। लोकों को उत्पत्ति हो जाने पर ब्रह्माण्ड में द्रव्य भाग बढ़ जाता है यही जगत् रूप गाय को मांसल करना है। प्रकृति का तीसरा रूप ऊर्जा का है अन्तोगत्वा सम्पूर्ण जगत् शनैः शनैः ऊर्जा रूप में परिवर्तित हो जाता है जो सृष्टि रचना के लिये अयुक्त होता है यह सूर्यास्त काल है अर्थात् जगत् विनष्ट होकर लय को प्राप्त होता है। इस प्रकार प्रकृति के तीनों रूपों का अपना-अपना योगदान है जिससे जगत् सत्ता में आता है।

६. शक्ति के महत्वपूर्ण विभागों का विवरण—

आगामी ऋचाओं में प्राकृतिक शक्तियों के महत्वपूर्ण विभागों का विवरण है ऋचा में कहा गया है कि ऋभुओं के वास स्थल अति गोपनीय हैं। ऋभु शक्ति से चार प्रकार के बल उत्पन्न होते हैं इन बलों से कालान्तर में सूर्य की तरह नक्षत्र एवं पृथ्वी की तरह ग्रहादि आकर्षण में आबद्ध हो अपने-अपने मार्गों पर स्थित होते हैं आगामी ऋचा है, (क्र. २७६)

उद्वत्स्वस्मा अकृणोतना तृणं निवत्स्वपः स्वपस्यया नरः।
अगोह्यस्य यदसस्तना गृहे तदद्येदमृभवो नानु गच्छथ॥

भा.— नरः ऋभवः श्रेष्ठ ऋभुओं, तुमने सु अपस्यया अपने उत्तम कर्म से उद्वत्सु ऊँचे स्थलों पर अस्मै तृणं अकृणोतन इस गाय के लिये चारा उत्पन्न किया नि वत्सु अपः नीचे स्थलों पर अप् एकत्र किया। (यत् अगोह्यस्य, गोह्य = गोपनीय) जब तक तुम लोग गुप्त न रहने के योग्य गृहे असस्तन घर में रहोगे तत् अद्य तब तक इदं न अनुगच्छथ तुम लोग इसको (इस ऐश्वर्य रूप जगत् को) नहीं पा सकते।

भावार्थ— हे ऋभुओ, तुमने सूर्य की तरह उच्च अधिष्ठित नक्षत्रों में स्थित हुए जगत् रूपी गाय के लिये पोषक तत्त्व एकत्र कर रखे हैं जिन्हें नित्य प्रति प्रदान करते हो तथा पृथ्वी की तरह निम्न स्थानी ग्रह रूप लोकों में जल एकत्र किया है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे ऋभुओं जब तक तुम लो अपनो शक्ति से अपने रहने के लिये गुप्त स्थलों का निर्माण न करोगे तब तक जगत् रूप ऐश्वर्य को पाना, इसका निर्माण करना कठिन है। ऋभुओ के वास स्थल अति गोपनीय हैं।

मौलिक कणों में परस्पर आकर्षण का स्वभाविक गुण है उसे हो ऋभु शक्ति कहते हैं। इस शक्ति के द्वारा ही परमाणु के अन्तर्भ की संरचना में मौलिक कण परस्पर आकर्षण में आबद्ध हुए परमाणु रचना करते हैं। फिर परमाणु से अणु बनते हैं अनन्तर इकाई द्रव्य (Elements) बनते हैं फिर इनसे अन्य यौगिक बनते हैं इन प्रकार रासायनिक जगत् की उत्पत्ति ऋभु शक्ति के कारण हुई है। नाभिक (Nuclear) क्रियाओं से लेकर, अणु (Molecule), इकाई द्रव्य (elements) एवं यौगिकों तक के स्तर की रासायनिक रचना में तथा वैद्युत (electrical) एवं गुरुत्वाकर्षण (gravitational) संबंधी समस्त क्रियाओं के सम्पन्न होने में चार प्रकार के बल उत्पन्न करने वाली ऋभु शक्ति की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसी शक्ति के कार्य रूप बलों से पृथ्वीवत् प्राणिजीवन से युक्त लोकों के पोषण के लिये सूर्यादि की तरह पोषक शक्तियुक्त लोक उत्पन्न होते हैं तथा बल से युक्त पृथ्वीवत् लोक की तरह प्राणिवास हेतु आवास तयार होते हैं सूर्य से पृथ्वीवत् लोकों को चारा रूप पोषक तत्त्व ऊर्जा प्राप्त होती है और पृथ्वीवत् लोक पर जल के उपलब्ध होने से प्राणप्रद वायु (आक्सीजन) का होना संभव होता है जिसले प्राणि जीवन संचालित होता है। इस प्रकार जगत् रूप गाय के आवास हेतु उपयुक्त गृह निर्मित होता है यह बात ऋचा में यही गयी।

७. ऋभु शक्ति के व्यापक कार्य से द्रव्यों की उत्पत्ति—

ऋभु शक्ति से चार प्रकार के बल उत्पन्न होते हैं इनमें दो प्रकार के बल मौलिक कणों के मध्य आकर्षण उत्पन्न करते हैं कणों के मध्य दूरी अत्यधिक अल्प होने पर समान विद्युत वहन करने वाले कण परस्पर आकर्षण में आबद्ध होते हैं इसपे परमाणु के नाभिक की रचना होती है किन्तु कणों के मध्य दूरी अपेक्षाकृत कम अल्प होने पर दूसरे प्रकार का बल कार्य करता है तब समान विद्युत वाहक कण प्रत्याकर्षण (repel) करते हैं तथा विपरीत विद्युत वाहक कण परस्पर आकर्षण में बंधते हैं इससे परमाणु की नाभिक से ऋणात्मक विद्युत वाहक इलेक्ट्रान संयुक्त होते हैं। इस प्रकार परमाणु रचना होती है पुनः परमाणु के मध्य आकर्षण से अणु बनते हैं इस प्रकार द्रव्य रचना होती है।

सूक्त की आगामी ऋचा है (क्र. २७७)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समील्य यद् भुवना पर्यसर्पत क्व स्वित् तात्या पितरा वः आसतुः
अशपत यः करस्नं व आददे यः प्राब्रवीत् प्रो तस्मा अब्रवीतन ॥

भा.— **संमील्य यत् भुवना** हे ऋभुओ। एकत्र होकर जब लोकों को **तात्या** आच्छादित किये **परि असर्पत** चारों ओर विचरण करते हो तब **वः पितरा क्व स्वित् आसतुः** तुम्हारे माता पिता (माता प्रकृति व पिता ईश्वर) कहाँ रहते हैं। **यः वः करस्नं आददे** जो तुम्हारे हाथों को रोका **तस्मै अशपत** उसके लिये आप लोगों ने शाप दिया **यः प्र अब्रवीत्** जिसने तुम्हारे प्रति अनुकूल वचन कहे **तस्मै प्र अब्रवीतन** उसके लिये आशीर्वचन किया।

भावार्थ— ऋभु शक्ति लोकों को चारों ओर से आच्छादित करके गति करती है। माता रूप मूल प्रकृति जगत् का उपादान कारण और पिता रूप ईश्वर जगत् रचना का निमित्त कारण है।

ऋभु शक्ति घटकों के मध्य परस्पर आकर्षण का संचार कर उन घटकों को परस्पर आकर्षण में आबद्ध रखती है। ऋभु शक्ति के अनुरूप जिस द्रव्य के घटक कार्य नहीं करते घटकों के मध्य परस्पर आकर्षण के अभाव में उस द्रव्य के घटक संयुक्त नहीं रह पाते और वह द्रव्य शीघ्र नष्ट हो जाता है किन्तु जिस द्रव्य के घटक ऋभु शक्ति के अनुरूप कार्यरत रहते हैं वह द्रव्य स्थिर रहता है यह ऋचोक्त विद्या है।

८. ऋभु शक्ति के जागरण का काल—

आगामी ऋचा में यह बताया गया है कि ऋभु शक्ति का कार्यारंभ कब होता है ऋचा है (क्र. २७८)

सुषुप्वांस ऋभवस्तदपृच्छतागोह्य क इदं नो अबूबुधत्।
श्वानं वस्तो बोधयितारमब्रवीत् संवत्सर इदमद्या व्यख्यत –

भा.— **ऋभवः** हे ऋभुओ **सुषुप्वांसः** सोते हुओं ने **अगोह्य** गुप्त न होने अर्थात् प्रकट होकर, जागकर **तत् इदं अपृच्छत** इस बात को पूछा कि **नः कः अबूबुधत्** हमें किसने जगाया। **वस्तः** सबको बसाने वाले (ईश्वर) ने **श्वानं** होने वाले कल को अर्थात् प्रलय रात्रि के उपरान्त होने वाले सृष्टि काल को **बोधयितारम्** जगाने वाला **अब्रवीत्** कहा। **संवत्सरे** प्रलय कल्प पूर्ण होने पर **अद्य** आज **इदं आ वि अख्यत** इस जगत् को नित्य की भांति व्यवस्थानुसार या विशेष रूप से प्रकाशित किया।

भावार्थ — प्रलयकाल में स्थूल जगत् एवं मध्यवर्ती सत्ताएं मूल सत्ता प्रकृति में

CC-0. Gurukul Kangri Collection, H...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवेश करके विलीन हो जाती हैं तब केवल मूल प्रकृति अस्तित्व में रह जाती है उस समय प्रकृति के मूल कणों के मध्य परस्पर आकर्षण के अभाव में कणों की संयुक्तरूप में सत्ता नही होती वरन कणों को पृथक्-पृथक् सत्ता होती है तब ऋभु शक्ति के कार्य का अभाव होता है इसे ऋभुओं का सो जाना कहा गया है। प्रलय-काल की अवधि सृष्टि काल के बराबर होती है इस प्रकार इस प्रलय काल रूप संवत्सर के समाप्त हो जाने पर ऋभु शक्तियां पुनः कार्यरत हो जाती हैं अर्थात् प्रकृति के मूल कणों के मध्य परस्पर आकर्षण आरंभ हो जाता है जिससे मूल कणों से यौगिक बनना आरंभ हो जाता है इसे ही ऋभुओं का पुनर्जागरण कहा गया है। ये शक्तियां आदि सृष्टि काल में क्रियाशील होती हैं इस प्रकार इनको जगाने वाला संवत्सर अर्थात् प्रलयकाल का अन्त या सृष्टि काल का आरंभ हो है।

६. ऋभुओं का प्रमुख लक्षण बल का संचार—

आगामी ऋचा में यह दर्शाया गया है कि ऋभुओं का प्रमुख लक्षण बलों की उत्पत्ति करना है। ऋचा है (क्र. २७६)

दिवा यान्ति मरुतो भूम्याग्निरयं वातो अन्तरिक्षेण याति।
अद्भिर्याति वरुणः समुद्रैर्युष्माँ इच्छन्तः शवसो नपातः॥

भा.— शवसा नपातः हे बल को न गिरने देने वाले ऋभुओं। युष्मान् इच्छन्तः तुम्हें पाने की इच्छा करते हुए मरुतः दिवा यान्ति मरुत गण आकाश से जाते हैं। अग्नि भूम्या अग्नि भूमि से जाती है। अयं वातः अन्तरिक्षेण याति यह वायु अन्तरिक्ष से चलता है तथा वरुणः समुद्रैः अद्भिः याति वरुण सूक्ष्म भूतों के तरलों द्वारा आता है।

भावार्थ— इस ऋचा में ऋभुओं के लक्षण संबंधी महत्वपूर्ण विचार निहित है। बल (force) की उत्पत्ति विद्युत आकर्षण से या गुरुत्वाकर्षण से या कणों के (interaction) परस्पर आकर्षण से होता है। ऋभु बल को न गिरने देने वाले अर्थात् बल को उत्पन्न करने वाली प्राकृतिक स्थिति है। मरुत आकाश में व्याप्त शक्ति है जिसका कार्य ऋभुओं को पाना अर्थात् बल को न गिरने देना या बल का सन्तुलन करना है। मरुत शक्ति आकाश में व्यापक कही गई है अर्थात् मरुत शक्ति व्यापक बल का नियंत्रण करती है जिसका क्षेत्र (range) व्यापक या असीम है। अतः मरुत शक्ति विद्युत बल एवं गुरुत्वाकर्षण बल से संबंधित है। अतः ऋभु शक्ति मौलिक कणों के मध्य आकर्षण करने वाला स्वाभाविक गुण है।

अग्नि पृथ्वी में संचार करती है अर्थात् गुरुत्वाकर्षण बल कार्यरत होता है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वायु अन्तरिक्ष में चलता है और वरुण अर्थात् धनात्मक कण या विद्युत जल कणों के द्वारा अथवा सूक्ष्म भूतों द्वारा अर्थात् परमाणुओं के द्वारा प्रवाह करती है। ताप के संचार में, वायु की गति में (molecular motion) या जल में विद्युत प्रवाह जैसा बादलों में उत्पन्न विद्युत से होता है इन विकिरण (energy) के संचार वाली सभी क्रियाओं में मौलिक कणों के मध्य परस्पर आकर्षण का (internal inter action between fundamental particles plays the role) महत्वपूर्ण भूमिका है।

असीमित क्षेत्र में कार्यरत विद्युत व गुरुत्वाकर्षण बल का प्रतिनिधित्व मरुत शक्ति करती है। इन ऋचा के इस कथन में कि मरुत गण ऋभुओं को पाने की इच्छा करते हैं यह व्यक्त किया गया है कि ऋभु शक्ति और मरुत शक्ति के मध्य घनिष्ट संबंध है आधुनिक विज्ञान के अनुसार जो चार प्रकार के बल हैं उनके मध्य घनिष्ट संबंध एवं एकत्व के विचार का उद्भव अति आधुनिक है इस सिद्धान्त के अनुसार यह सोचा जा रहा है कि चार प्रकार के बल एक ही स्रोत से उत्पन्न क्रिया गुण के विस्तार हैं अतः वास्तव में इनके क्षेण में एकत्व एवं अभिन्नता है इस सिद्धान्त को (unified field theory) कहते हैं जो अभी पूर्णरूप से सिद्ध नहीं हो सका है।

वेद में असीमित क्षेत्र में कार्यरत दो बल विद्युत एवं गुरुत्वाकर्षण का प्रतिनिधित्व मरुत गण करते हैं यह तथ्य अध्याय १३ और अध्याय १५ में विस्तार से प्रकाश में लाया गया है। ऋभु शक्ति से चार प्रकार के बल उत्पन्न होते हैं जिनमें से असीमित क्षेत्र में कार्यरत दो बल वेद के मरुत नाम के वर्ग में विशेष रूप से कहे गये हैं ऋभुओं से अन्य जो दो प्रकार के बल उत्पन्न होते हैं वे कणों के मध्य संयोग करने वाले बल हैं जो सीमित क्षेत्र में कार्य करते हैं ऋभु शक्ति कणों के मध्य संयोग करने की स्वभाविक शक्ति (natural bond to unite) है इस शक्ति से ही चार प्रकार के बल उत्पन्न होते हैं अतः चार प्रकार के बलों का स्रोत वेद की ऋभु शक्ति कही गयी है। वेद के इस सिद्धान्त में चार प्रकार के बलों का स्रोत अनन्य है एकाश्रयी है इस प्रकार चार प्रकार के बलों का एकत्व अर्थात् क्षेत्र परिवर्तन एक ही गुण का चार प्रकार से विस्तार है इसमें अनन्तोगत्वा चार बलों के क्षेत्र के एकत्व के (unified field theory) सिद्धान्त का प्रतिपादन है।



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय २१

वेदों में अनन्त की कल्पना एवं आधुनिक विज्ञान

वेदों का मुख्य विषय सृष्टि उत्पत्ति संबंधी रहस्य का उद्घाटन करना है। अन्य विषय गौण ही हैं। सृष्टि क्या है कहां से आई, कैसे आई, क्यो आई, इसके पीछे कौन-कौन सी शक्तियां कार्यरत है उनका स्वरुप क्या है इन गूढ़ विषयों पर विचार करने के तारतम्य में सृष्टि उत्पत्ति में निहित आधारभूत तत्वों पर विचार करना आवश्यक हो जाता है। इन आधारभूत तत्वों के स्वरूप से शाश्वत होने के कारण इनके लक्षण सामान्य द्रव्यों को कोटि में नहीं आते वरन् विशिष्ट गुण धर्म वाले होते हैं। इन विशिष्ट गुण धर्म को समाहित करने के लिये विशिष्ट शब्दावलि की आवश्यकता पड़ती है। वेदों में अनेक गंभीर अर्थपूर्ण शब्द आये हैं इन शब्दों के भाव की गहराई में दर्शन एवं विज्ञान का रहस्य छिपा हुआ है। इन शब्दों में निहित भाव को यदि प्रकाश में लाया जावे तो ऋषियों की रहस्य-मयी भाषा की अन्तरत्तम गुहा में छिपा अभूतपूर्व ज्ञान प्रकट हो सकता है ऐसा लेखक का विनम्र मत है।

वेदों में असीम से संबंधित अनेक शब्द आये हैं इन शब्दों का संक्षिप्त विव-रण नीचे दिया जा रहा है।

१ अनन्त = अन्त रहित असीम (ऋ. १।१११।५, ऋ.)

२ अनारम्भ = आरम्भ रहित (ऋ. १।११६।५)

३ अज = जन्म रहित, उत्पत्ति धर्म रहित (ऋ. १०।६४।४, १०।८२।६)

४ अमृत = मृत्यु धर्म रहित immortal (ऋ, १।२४।१,२, ऋ. १।५८।१)

५ अजर = जीर्णतारहित, सदा एक रस (ऋ. १।५८।२,४ ऋ १।११३।१३ ऋ. १।१६४।२ आदि)

६ अमर्त्य = मृत्यु धर्म रहित immortal (ऋ १।४४।१, १।५८।३, १।१६४।३०,३८)

७ अक्षर = अविनाशी (ऋ. १।१६४।३६)

८ सत् = eternal (ऋ. १।६६।७, ऋ. २।२२।१,३)

९ नित्य = abiding, eternal ऋ. १।१४४।२। ऋ. ३।२५।५)

यह सूची सभी शब्दों और संदर्भों को रिक्त (exhaust) नहीं करती जो शब्द सरलता से उपलब्ध हुये उन्हें ही दिया गया है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१० स्वधावान् = स्व सामर्थ्य से विद्यमान, स्वधारणा शक्ति युक्तः
(ऋ. १।६५।४, ऋ. १।११३।१३, १।१६४।३० - -)
११ स्वयंभू = अपने आप विद्यमान self existing
(ऋ. १०।८३।४)
१२ सनात् = सदा, स्थायी, ध्रुव, beginningless
(ऋ. १।६५।८, १०, ११, १२, १३, ऋ. १।१६४।१३)
१३ शश्वतः = सदा से वर्तमान eternal
(ऋ. १।७२।१, १।११६।६, १।११३।८, ऋ. १।१६४।३८)
१४ अदितिः = अखड indestructable (ऋ. १।११३।१६)

उपरोक्त उल्लिखित शब्दावलि का प्रयोग वैदिक ऋषियों की कल्पना-शीलता के विषय में पर्याप्त प्रकाश डालता है और यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि वेद में दर्शन के गम्भीर विचार विद्यमान हैं। आदि रहित, अन्त रहित, अखंड स्वयंभू आदि ऐसी परिकल्पनायें हैं जो मानव सभ्यता के इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं और अत्यन्त उच्चकोटि के दार्शनिक भी इनके वास्तविक महत्व को आंकने में पूर्ण समर्थ नहीं हैं। ग्रीस और चीन के प्रख्यात दार्शनिक भी असीम के इतने घनिष्ठ वर्गीकरण एवं भेद से अनभिज्ञ थे। इतनी विशिष्ट शब्दावलि के होते हुये भी यह धारणा कैसे बना ली गई कि वेद में दर्शन नहीं हैं जबकि उपरोक्त शब्दावलि दर्शन के मूल्यों को चरम सीमा तक पहुँचा रहे हैं। वास्तव में वेद के मन्त्रों में निहित विचार आज तक भी ठीक से समझे नहीं जा सके हैं यही कारण है कि उनमें निहित ज्ञान के अनावरण के अभाव में मनमानी व्याख्या एवं विचार वेद पर लादे गये हैं जो परकीय है वेद के आन्तरिक भाव से उनका कोई संबंध नहीं है। इस अध्याय में हम ऐसे महत्वपूर्ण विषय पर प्रकाश डाल रहे हैं जो न केवल दर्शन वरन् आधुनिक गणित एवं विज्ञान शास्त्र की अत्यन्त सूक्ष्म एवं गूढ़ कल्पना से संबंध रखता है।

भारतीय दर्शन में अनन्त का प्रयोग तीन प्रकार से किया गया है। काल की की दृष्टि से असीमित, दिक् (space) 'अर्थात' व्यापकता की दृष्टि से असीमित तथा संख्या अर्थात गणना की दृष्टि से असीमित। दर्शन की इस परम्परा की आदि ऋंखला वेद में विद्यमान है जैसा कि वेद की शब्दावलि को देखने से तत्क्षण ज्ञात होता है। भारतीय मनीषियों की अनन्त की परिकल्पना दर्शन के मूल्यों को तो समाहित करती ही है वह आधुनिक गणित शास्त्र के दृष्टिकोण को भी आत्म सात करती है। अनन्त की कल्पना का दर्शन में प्रयोग यह दर्शाता है कि भौतिक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगत् के विश्लेषण एवं मीमांसा में तथा शाश्वत तत्वों के विवेचन में असीमितत्व एक वास्तविक लक्षण है। सर्व प्रथम हम असीमित के काल के संबंध से हुये वैदिक प्रयोग पर विचार करेंगे।

१ काल के संबंध से असीमित का वैदिक दर्शन —

काल के संबंध से असीमित का तात्पर्य यह है कि इस लक्षण से युक्त सत्ता काल से, काल के प्रवाह से, काल की गति से अप्रभावित रहती है। इस सत्ता को साधारण भाषा में काल के परे या अकाल कह सकते हैं। सर्वप्रथम यह उपयोगी होगा कि हम काल से परे सत्ता के स्वरूप का निरूपण वैदिक दृष्टाओं के दृष्टिकोण एवं दर्शन के प्रकाश में करें। यहां यह ध्यान रखना है कि विज्ञान में काल के संबंध से असीमित की सजीव कल्पना आज तक भी नहीं हो सकी हैं।

हम जिस भौतिक जगत से परिचित हैं उसमें सभी द्रव्य उत्पत्ति धर्मी एवं परिवर्तनशील हैं। यह दृष्टिकोण जहां जन सामान्य का है वहां यह विज्ञान का भी है। विद्यमान (मौजूद existing) (सत्तात्मक) की जब उत्पत्ति हुई हो उस काल को वस्तु का उत्पत्ति काल कहते हैं और उस वस्तु को आदि वाला या सादि (with biginning) कहते हैं आदि वाली वस्तु का भूतकाल में उत्पत्ति काल होना आवश्यक है चाहे वह कितना भी सूदूर भूतकाल में क्यों न हो। इसके विपरीत क्या यह संभव नहीं है कि इस नियम का अपवाद हो अर्थात कोई सत्ता ऐसी हो जो उत्पत्ति धर्म वाली न हो अर्थात भूतकाल में कोई भी ऐसा काल निर्धारित नहीं किया जा सकता जब वह सत्ता अस्तित्व में आई हो और उस काल के पूर्व वह (मौजूद) विद्यमान न हो। वेद के अनुसार ऐसा तत्व सत्ता में है उसे अनादि कहा गया हैं अर्थात वह ऐसी है जिसका आरम्भ या उत्पत्ति (beginning, birth) कभी नहीं हुई। इस लक्षण को दर्शाने के लिये वेद में अज, अनारम्भः, अनादि आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है।

परिवर्तनशील जगत में हम द्रव्यों को निरन्तर नष्ट होते देखते हैं। जो वस्तु विद्यमान है उसका विनाश कालान्तर में अवश्यम्भावी है चाहे वह कितने भी सुदूर भविष्य में क्यों न हो। आज विज्ञान ने भी यह बात मान ली है कि वर्तमान जगत् की उत्पत्ति १० से २० अरब वर्ष पूर्व हुई थी और इसका विनाश कुछ अरब वर्ष बाद अवश्य होगा। सूर्य प्रतिदिन अपनी ऊर्जा को खो रहा है सुदूर भविष्य में सूर्य में कुछ भी शेष न रहेगा। वेद के अनुसार इन परिवर्तनशील और विनाश धर्मी द्रव्यों के बीच कोई ऐसा तत्व, कोई ऐसी सत्ता भी है जो विनाश धर्म के परे है। भविष्य में कोई ऐसा समय आने वाला नहीं है जब उस सत्ता का अस्तित्व न रहे

CC-0. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस सत्ता का अन्त हो सके ऐसा कभी भी होने वाला नहीं है। ऐसी सत्ता को काल के संबंध से अनन्त की संज्ञा से विभूषित किया गया है और उसके लिये अमृत, अमर्त्य आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है ।

अब यह बात निश्चित है कि विनाश धर्म से परे जो सत्ता है वह क्षय स्वभाव वाली नहीं होती अर्थात् उसमें धीरे-धीरे कम होना, ह्रास होना नहीं होता। यदि उसमें धीरे-धीरे क्षय होता रहे तो एक दिन वह नष्ट हो जावे तब वह अन्त वाली होगी अनन्त न होगी फलतः अनन्त लक्षण सत्ता क्षय स्वभाव वाली नहीं होगी वह जीर्ण, क्षीण नहीं होती। सत्ता के इस लक्षण को दर्शाने के लिये वेद में ऐसे तत्त्व को अक्षय, अक्षर, अजर, अव्यय आदि संज्ञाओं से विभूषित किया गया है

अब यह विचार करना है कि कोई द्रव्य उत्पत्ति विनाश धर्मी क्यों है। उत्पत्ति धर्मी द्रव्य अवयवी अर्थात् अवयव वाला, घटकों वाला (*having constituents*) होता है वास्तव में किसी द्रव्य की उत्पत्ति उसके अवयवों का मात्र मेल ही तो है(*Creation of a Substance is a mere union of its Constituents*) और किसी द्रव्य का विनाश भी उसके घटकों का विघटन ही तो है (*Destruction of a Substance is the dissociation of the Constituents of which it is made*) यह तथ्य पूर्णरूप से विज्ञान समर्थित है। तो बात यहां पहुँची कि जो द्रव्य अवयवी है वही उत्पत्ति धर्मी है क्योंकि उसके अवयवों का मेल कभी न कभी भूतकाल में हुआ ही होगा। वही उसका उत्पत्ति का काल है। और जब अवयवों का संयोग हुआ है तो उनका विघटन भी कभी न कभी अवश्य होगा। अतः उत्पत्ति धर्मी द्रव्य विनाश धर्मी होता है।

इस उपसंहार से हम इस परिणाम पर पहुंचते है कि जो तत्त्व निर्-अवयव है घटकों से रहित है अवयव वाला नहीं (without constituents) है वह उत्पत्ति धर्मी नहीं क्योंकि जिसमें अवयव ही नहीं हैं तो उसके अवयवों के मेल होने का, संयोग होने का प्रश्न ही नहीं उठता। अतः उत्पत्ति धर्म से रहित अनादि तत्व का प्रमुख लक्षण है उसको निरवयवी होना, अवयव रहित होना, उसमें घटकों का न होना और जिसमें घटक ही नहीं हैं उसके विघटित होने की कोई संभावना भी नहीं है। इस प्रकार यह निश्चय हुआ कि अनादि तत्त्व निरवयवी होता है वह अखंड होता है अतः वह अन्त रहित या अनन्त भी होता है। जो अनादि है वह अनन्त भी हैं जो अनादि नहीं है वह अनन्त भी नहीं हो सकता। अनादि -अनन्त तत्व घटकों से रहित अर्थात् अखंड होता है वेद में ऐसे तत्व को अदिति कहा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। अतएव अनादि सत्ता घटकों से रहित निर् अवयवी होती है इसी कारण वह अखंड होती है अखंड का खंड अर्थात् विनाश कल्पनातीत है। यदि अनादि सत्ता घटकों वाली हो तो उन घटकों का संयोग भूतकाल में अवश्य हुआ होगा और जो कभी संयोग से बनी है वह उत्पत्ति धर्मी है आदि वाली है हमारी प्रतिज्ञा के विपरीत अनादि नहीं है। तो अनादि सत्ता घटकों वाली हो नहीं सकती यह निश्चय हुआ। और जो घटकों से रहित है वह अखंड है उसका अन्त हो नहीं सकता फलतः अनादि सत्ता काल के संबंध से अनन्त भी होती है। अनादि अनन्त सत्ता कालजयी काल से निरपेक्ष, काल से अप्रभावित व काल से असंबंधित, अपरिणामी, होती है तथा जीर्ण क्षीण होने, जराक्षय होने से मुक्त होती है सदा एक रस, सदा एक सी रहती है। वेद ने इस लक्षण को दर्शाने के लिये सत्, नित्य, सनात्, शाश्वत और स्वयंभू आदि अनेक विशेषणों का प्रयोग किया है।

आज बीसवीं सदी में वैज्ञानिकों को यह अनुभूति हुई है कि भौतिक पदार्थ सत्ता के मूल में कोई अखंड तत्त्व स्थित है उस तत्त्व की अनवरत खोज जारी है और उस तत्त्व को (Fundamental particles बुनियादी कण, मौलिक कण, अन्ततम अवयव (uetimate Constituent) ऐसे कहा गया है। वैदिद्रष्टाओं ने हजारों वर्ष पूर्व बुनियादी तत्त्व के होने की संभावना व्यक्त की थी और उसे अदिति नाम से पुकारा था।

२. व्यापकत्व के संबंध से अनन्त की वैदिक कल्पना—

वैदिक सिद्धान्तानुसार ईश्वरीय शक्ति अर्थात् प्रकृति अनन्त हैं।

ऋचा (१।११५।५) में कहा गया है—(क्र.२८०)

अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः स भरन्ति।

(अस्य रुशत् पाजः अनन्तम्) उस ईश्वर का प्रकाशवान् तेजोमय सामर्थ्य असीम हैं अर्थात् प्रकृति अनन्त सामर्थ्य वाली हैं शक्ति में फैलाव में कणों की, किरणों की संख्या में।

(अन्यत् कृष्णम् अनन्तम्) अंधकार के अनुरूप प्रलय करने वाला सामर्थ्य भी असीम है जिसको [हरितः सं भरन्ति] किरणमयी प्रकृति सम्यक धारण करती है। प्रकृति (both in Content and extent) परिणाम एवं विस्तार दोनों में अनन्त है।

दिक् (Space) की व्यापकता को अनन्त कहा गया है और ईश्वर को दिक् से महान् दर्शाने के लिये उसे परम व्योम कहा गया है।

इसी प्रकार तैत्तिरीयोपनिषद् [१।६।२] में कहा गया है-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकाश शरीरं ब्रह्म ।

इस श्रुति में आकाश को ब्रह्म का शरीर कहकर आकाश में नित्यत्व और विभुत्व प्रतिपादित किया है ।

आधुनिक विज्ञान में अनन्त की परिकल्पना-

आधुनिक विज्ञान में अनन्त का ज्ञान अधिक से अधिक १७ वीं सदी का है उन्होंने संख्या को दो भागों में विभक्त किया । सीमित राशियां (Fiuite quan tities) और अनन्त राशियाँ (inf inite quantities), सान्त अनुक्रम (f inite sequence), अनन्त अनुक्रम (infinite sequence), सान्त श्रेणी (f inite series), अनन्त श्रेणी (inf inite series), अनन्त को इस इस प्रकार परिभाषित किया गया- कितनी बड़ी से बड़ी संख्या क्यों न ली जावे वह अनन्त से छोटी होगी । उस समय अनन्त की कल्पना गणित शास्त्र के आधार पर केवल संख्याओं तक सीमित थी, भौतिक जगत् में अनन्त का कोई उदाहरण विज्ञान के पास नहीं था ।

डालटन के पूर्व रसायन शास्त्र का ज्ञान इकाई द्रव्य (elements) तक सीमित था उस समय इकाई द्रव्यों की ज्ञात संख्या ९५ से अधिक न थी । तब विज्ञान की यह धारणा थी कि यह भौतिक जगत् इन्हीं ९५ तत्त्वों और उनके यौगिकों से बना है । डालटन के परमाणुवाद के सिद्धांत की घोषणा के बाद यह निश्चय हुआ कि परमाणुओं की संख्या अनन्त (अपरिमित) है । यह गणितीय परिकल्पना से हटकर भौतिक जगत में अनन्त की परिकल्पना का सर्वप्रथम प्रयोग था ।

४ गणित संबंधी अनन्त के लक्षण का वैदिक दृष्टिकोण-

काल एवं दिक् (time & space) के संबंध में अनन्त की वैदिक परिकल्पना पर पूर्व अनुच्छेदों में प्रकाश डाला जा चुका है। भारतीय दर्शन में दिक (Space) की असीम की कोटि में रखा गया है और उसे विभु, सर्वव्यापक, अपरिच्छिन्न आदि विशेषणों से युक्त किया है । दर्शन की इस परंपरा की आदि शृंखला वेद में विद्यमान है वेद में प्रकृत के विस्तार को अनन्त माना गया हैं । इस तथ्य को प्रकाश में लाने हेतु यजुर्वेद के इस मन्त्र (४०।१९) पर विचार करना होगा- मन्त्र है— (क्र. २८१)

---

१ ऋचो अक्षरे परमे व्योमनि..... १ ऋ. १।१६४।३९
त्वम् अस्य पारे रजसो व्योमनः १ ऋ. १।५२।१२
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् १ ऋ, १०। १२९।७

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

भावार्थ- वह भी पूर्ण है यह भी पूर्ण है। पूर्ण से पूर्ण की उत्पत्ति हुई है ऐसा कहा जाता है। पूर्ण में से पूर्ण निकाल देने पर जो शेष बचता है वह भी पूर्ण है।

हम सब यह जानते हैं कि सान्त राशियों (finite numbers) का यह गुण है कि यदि एक सान्त राशि में से उससे छोटी सान्त राशि घटाई जावे तो जो शेष बचेगा वह पूर्व राशि से छोटा होगा और यदि एक सान्त राशि में से वही राशि घटाई जावे तो शेष शून्य होगा। अतः, पूर्ण में से पूर्ण घटा देने पर जो पूर्ण ही शेष बचता है यह क्रिया सान्त राशियों पर घटित नहीं होती।

गणित विषय के जानकार यह जानते हैं कि यदि अनन्त में से अनन्त घटा दिया जाय तो परिणाम (indeterminate) परिगणना के योग्य न होगा अर्थात् परिणाम का निश्चय अनन्त के (order of infinity) वर्ग पर निर्भर करता है तदनुसार अनन्त में से अनन्त घटा देने पर दो ही प्रकार की परिस्थिति हो सकती है या तो शेष अनन्त होगा या सान्त होगा।

अतः जब पूर्ण में से पूर्ण घटाने पर पूर्ण बचता है तो इस प्रक्रिया में अनन्त राशियों का समावेश (invoelvement) हुआ है। सुदूर भूतकाल में अनन्त राशियों के इस पक्ष की कल्पना एक महान् आश्चर्य का विषय है और वैदिक द्रष्टाओं की कल्पना शक्ति का परिचायक है। वैदिक ऋचाओं मंत्रों को बचकाना पन की पराकाष्टा से मंडित कहना वेद की विषयवस्तु के नितांत अज्ञान का द्योतक है।

मंत्र के अनुसार ब्रह्म अनन्त है उस ब्रह्म में से निकला यह जगत भी अनन्त है ब्रह्म में से जगत निकल जाने के अनन्तर जो प्रकृति का भाग शेष बचता है वह भी अनन्त हैं। मूल प्रकृति अनन्त है प्रकृति से निकला हुआ यह भौतिक जगत भी अनन्त है और शेष बचा हुआ मूल प्रकृति का भाग भी अनन्त है यह वैदिक कल्पना है।

इस प्रकार वैदिक परिकल्पनानुसार प्रकृति का विस्तार अनन्त है और प्रकृति के कणों की संख्या भी अनन्त है अर्थात् प्रकृति परिमाण और विस्तार (both quantitative and dimensionally infinite) अनन्त है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५- दिक् (space) संबंधी वैज्ञानिक परिकल्पनाएं—

सर आईन्सटीन ने विश्व का जो माडल बनाया उसमें दिक् (space) को सीमित (finite बताया और उसे वर्तुलाकार (spherical) बताया। यह एक स्थिर, स्थैतिक (static model) प्रतिमान था। इस स्थिर माडेल के संतुलन (equilibrium) के लिये (Lamaitre) लामाटे ने सामान्य समीकरण (General equation) में एक स्थिर राशि (cosmological constant) के जोड़ने की सलाह दी जिसका यह अर्थ था कि भौतिक पिण्डों के बीच (repulsive forces between celestial bodies) प्रत्याकर्षण करने वाले बलों की कल्पना करना पड़ी जो कल्पना कालान्तर में अनुचित पाई गयी।

सर आईन्सटीन और डेसिटे ने विश्व की परिधि की गणना की और कहा कि प्रकाश की किरण को विश्व का एक चक्कर लगाने में एक अरब या १०० करोड़ वर्ष लगेंगे। प्रकाश की किरण १ लाख ८० हजार मील प्रति सेकेंड चलती है। इस पर विचार करते हुए प्रसिद्ध ब्रिटिश ज्योतिर्विद (astronomer) प्रो. एडिंगटन ने कहा था– "क्या हम यह दावे से कह सकते हैं कि जिस दिक् (space) को हम अपने विश्व के संबंध से जानते हैं उतना ही सम्पूर्ण अस्तित्व है यहां हम तत्त्व दर्शन की सीमा में प्रवेश करते हैं जो हमारी पहुँच के बाहर है। कहीं यह सान्त दिश्व (जिसे हम जानते हैं) सच में एक समग्र परिवर्तनशील सृष्टि का एक भाग ही तो नहीं है"।

कुछ समय के लिये ऐसा लगा कि वैदिक द्रष्टाओं ने आकाश को अनन्त कहकर गलती की है। कुछ समय बाद रशियन गणितज्ञ फ्रीडमान ने बताया कि आई-

---

1 But even if the space we know in association with our universe, can we venture to say that it exhausts the whole of reality. Here we enter intc meta-physical regions which are beyond our depth, but may not this finite universe be but a part indeed of a transient manifestation of the whole.
modern cosmology by Sir Edington p. 126

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्सटीन द्वारा प्रस्तावित विश्व का स्थिर (model) प्रतिमान (dynamically unstable) गति के नियमानुसार अस्थिर होगा जो जरा भी भड़क जाने पर सिकुड़ने लगेगा या फैलने लगेगा। तभी एडविन पी हबल की खोज ने एक नये सत्य का उद्घाटन किया कि यह समग्र विश्व जिसमें अरबों गैलेक्सीज की आबादी है एक त्वरित गति से प्रसार की प्रक्रिया में है जिसमें दो निकटवर्ती गैलेक्सी एक दूसरे से तेज गति से दूर जा रहे हैं। विश्व के प्रसार के इस सिद्धान्त को अनेक प्रकार से प्रायोगिक परीक्षा हो चुकी है और यह सिद्धान्त अब पूर्णरूप से मान्य हो चुका है।

इस सिद्धान्त के परिणाम स्वरूप वैज्ञानिकों को यह स्वीकार करना पड़ा कि सृष्टि सदैव से अनन्त थी और है ? तथा यह भी कि 'यह सत्य कि अनन्त आकाश को व्यापन कर रहे भौतिक पदार्थ को सिकुड़न या फैलाव की स्थिति में लाया जा सकता है फिर भी वह अनन्त आकाश भौतिक पदार्थ से व्याप्त ही रहेगा रिक्त नहीं होगा यह अनन्त का एक विरोधाभास है।"

प्रसिद्ध जर्मन गणितज्ञ हिलबर्ट ने अनन्त के विरोधाभास को एक उदाहरण द्वारा अच्छी तरह समझाया है। वे कहते हैं कि कल्पना करो कि एक होटल में असंख्य कमरे हैं जो सभी भरे हैं और असंख्य व्यक्ति कमरों की मांग के लिए प्रतीक्षारत हैं। होटल का मुंशी नहीं चाहता कोई प्रतीक्षार्थी निराश हो वह एक योजना कार्यान्वित करता है जिसमे असख्य प्रतीक्षार्थियों को स्थान मिल जाता है।

वह कमरा न. १ के व्यक्ति को कमरा न. २ में स्थानांतरित करता है कमरा न. १ रिक्त हो गया। कमरा न. २ के व्यक्ति को कमरा न. ४ में रखता है। कमरा न. ३ के व्यक्ति को कमरा न. ६ में और कमरा न. ४ के व्यक्ति को

---

1 But the universe is and was always infinite creation of universe by Ge rge Gamow p 28

2 The fact that material occupying an infinite space can be squeezed or expanded and still occupy the same infinite space is one of the paradoxes of infinity . same reference

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमरा न. ८ में तथा कमरा न. ५ के व्यक्ति को कमरा न. १० में स्थानांतरित करता है कमरा न. ६ के व्यक्ति को कमरा न. १२ में। इस प्रकार प्रत्येक कमरे के व्यक्ति को नये कमरे में इस नियम से स्थानांरित करता है कि उसको जिस नये कमरे का अधिग्रहण करना है उसका नम्बर उसके पूर्व अधिग्रहीत कमरा नम्बर का दूना होगा।

इस प्रक्रिया से सभी ऊने नम्बर वाले कमरे १, ३, ५, ७, ९, ११....खाली हो जावेंगे- अर्थात् ऊने नम्बर के कमरों का अनन्त क्रम रिक्त हो जावेगा जिनमें अनन्त प्रतीक्षारत व्यक्ति रखे जा सकेंगे।

ध्यान रहे कमरों की संख्या १, २, ३, ४, ५ का क्रम अनन्त है यदि इसमें से ऊने नम्बर (odd natural numbers) का अनन्त क्रम १, ३, ५, ७ .... निकाल दिया जाय तो शेष बचा हुआ (sequence of even natural numbers) सम संख्या का क्रम २, ४, ६, ८, १० .... भी अनन्त है।

इसी प्रकार अनन्त दिक् space) में प्रकृति के अनन्त कण व्याप्त है इन अनन्त कणों को एक स्थान पर (महा विस्फोट के समय) सघन पिण्ड के रूप में एकत्र करने पर अनन्त दिक् प्रकृति के कणों से रिक्त नहीं होता वरन् वह अनन्त कणों से भरा ही रहता है। जब हम वेद के इस वचन को कि अनन्त में से अनन्त घटा देने पर जो शेष बचता है वह भी अनन्त है विज्ञान के इस वस्तुनिष्ठ उदाहरण में प्रयुक्त हुआ देखते हैं तो हम वैदिक द्रष्टाओं की कल्पना शक्ति की भूरि-भूरि प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते।

वास्तव में दिक् और द्रव्य (space & matter) पृथक पृथक सत्ता वाले हैं किंतु वैज्ञानिक इनके वास्तविक भेद से अवगत हुए प्रतीत नहीं होते। वास्तव में भौतिक पदार्थ सत्ता और दिक् के बीच कोई संबंध प्रस्थापित करने वाला सिद्धांत विज्ञान में नहीं है। भौतिक पदार्थ दिक् के बिना नहीं ठहर सकता वह कुछ न कुछ आयतन (volume) अवश्य घेरेगा अर्थात् पदार्थ तीन आयाम (Dimension) वाला होता है यह पदार्थ का गुण है पर दिक् बिना पदार्थ के भी हो सकता है जिसे रिक्त स्थान (void or empty space) कहते है अतः जहां जहां दिक् की सत्ता है वहां वहाँ भौतिक पदार्थ सत्ता होना ही चाहिए यह नियम नहीं है और यदि है तो यह भी अनिवार्य होना चाहिए कि एक घन आयतन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Cubic Volume) में कम से कम भौतिक पदार्थ की मात्रा होना अनिवार्य है पर ऐसा कोई नियम अभी तक ज्ञात नहीं है। (The Converse is not True That a cubic Volume Must hold a given mass Of Mattcr)कि एक घन आयतन मे द्रव्य की निर्धारित मात्रा होना ही चाहिये।

यह कहा गया है कि हम जिस विश्व की बात करते हैं उसकी त्रिज्या २.५ अरब प्रकाश वर्ष है। जो पेलोमर आबजर वेटरी के २०० इंच टेलिस्कोप द्वारा प्रदत्त ज्ञान पर निर्भर हैं। इसके बाहर क्या हो रहा है वह हमारे प्रायोगिक ज्ञान के बाहर हैं। (Creation of Universe p 38)

इस संदर्भ में स्वीडिश ज्योतिर्विद सी व्ही. एल चारलियर का मत जानने योग्य है इसे असीमित जटिलता की परिकल्पना (Hypothesis of unLimited Complexity)कह सकते हैं। वे कहते है जिस प्रकार सूर्य को घेरे हुये अनेक तारे हमारी गैलेक्सी के अंग हैं। उसी प्रकार अनेक गैलेक्सियें मिलकर एक बहुत बड़ा फैलाव (जिसे एक बादल कह सकते है।)जिसका कुछ भाग ही टेलिस्को द्वारा दर्शनीय है।

इस प्रकार जो यह गैलेक्सियों का विशाल बादल बना वह इस सृष्टि मे अकेला (Unique) ही नहीं है किन्तु अति दूरस्थ आकाश में ऐसे अनेक बादल होंगे! गैलेक्सियों का समूह एक बादल और अनेक बादलो का समूह एक बड़ी इकाई होगा। इस प्रकार यह कम असीमित ही हो सकता है।

पाठको यह ध्यातव्य हैं कि वैदिक परिकल्पनानुसार दिक् का फैलाव अनन्त है। सर आईन्सिटीन और डेसिटे ने इसके सीमित होने की थियोरी प्रतिपादित की थी किन्तु वह थियोरी बड़ते हुए वैज्ञानिक अनुसंधान के समक्ष न टिक सकी और फिरसे दिक् केअनन्त विस्तार वाला सिध्दान्त अनेक वैज्ञानिकों को मान्य हुआ हैं। इस प्रकार अनन्त आकाश की वैदिक कल्पना विज्ञान की बदलती हुई परिकल्पनाओं के बीच स्थिर सत्य सिद्ध हुई है।



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ प्रश्न और उनका समाधान

वैदिक सृष्टि उत्पत्ति रहस्य भाग १ और वर्तमान कृति भाग २ में मेरे द्वारा वैदिक विज्ञान और आधुनिक विज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने तथा वैदिक प्रतीकों में निहित विज्ञान के उद्घाटन से संबंधित कुछ प्रश्न उठते हैं जिनके समुचित समाधान का अभाव किसी भी विद्वान् को खटकना स्वाभाविक है यहां ऐसे दो महत्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर दिया गया है।

प्रथम प्रश्न है— यदि विज्ञान ने अपनी मान्यताओं में फेरबदल किया तो वेद मन्त्रों के ये भाष्य अर्थहीन हो जावेंगे अथवा इसमें भी सुधार की आवश्यकता पड़ेगी ?

इस प्रश्न का उत्तर यद्यपि आंशिक रूप से प्रस्तावना में दिया जा चुका हैं तथापि विषय की गुरुता को देखते हुए इस पर यहां पुनर्विचार किया जा रहा है। वास्तव में इस प्रश्न की उपज द्विविध भ्रान्ति का परिणाम है। प्रथम भ्रान्ति लेखक द्वारा प्रस्तुत वेद भाष्य सम्बन्धी है और द्वितीय भ्रान्ति विज्ञान के स्वरूप के संबंध में है।

यह सामान्य धारणा कि लेखक ने विज्ञान के सिद्धान्तों को, तथ्यों को एक के बाद एक लेकर उन्हें वेद मन्त्रों में ढूंढ़ने का उपक्रम किया है और जहाँ भी अवकास मिला वहाँ उसे प्रतिरोपित कर दिया गया वस्तु स्थिति के सर्वथा विपरीत है। इस प्रकार वेद में विज्ञान खोजना वसा ही होगा जैसा कि किसी पर्वत पर हीरा, सोना, चांदी की खोज की निष्फलता अवश्यभावी है। ऐसे अन्वेषण के स्थायित्व के सबंध में उक्त शंका संदर्भ रहित नहीं है।

वैदिक सृष्टि उत्पत्ति रहस्य का अन्वेषण उपरोक्त कोटि का नहीं है वरन् अनूठा ही है। वेद की स्वकीय विज्ञान है जो प्रतीक प्रहरियों से आरक्षित है वेद की विज्ञान में परस्पर संधि है सम्पूर्ण विषय एक शृंखला की तरह परस्पर संबद्ध है। प्रतीकों के ऋचोक्त गुण, धर्म, स्वभाव के आधार पर प्रतीकों के स्वरूप का निर्धारण किया गया है तथा इसकी पुष्टि परंपरागत वैदिक साहित्य (ब्राह्मण ग्रन्थ, निघण्टु, निरुक्त) से की गयी है। वेद की विज्ञान का प्रबंध (आयाजनं) स्वतन्त्ररूप से किया जा सकता है किन्तु आधुनिक संदर्भ में समझने की दृष्टि से विज्ञान के दर्पण में उसे देखा गया है। यदि वेद की विज्ञान का आधुनिक विज्ञान से तालमेल है तो ठीक है यदि नहीं है तो भी वेद की विज्ञान अपने स्थान पर है भाष्य में संशोधन करने की आवश्यकता किञ्चित भी नहीं है केवल विज्ञान से तालमेल

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैठाने के लिये, हाँ अन्य किसी दृष्टिकोण से भाष्यों में सुधार के लिये सदैव द्वार खुला रहना चाहिये जैसा कि महामना सायण के अनन्तर दृष्टिकोण में निरन्तर परिवर्तन होता जा रहा है। हाँ, तो यह धारणा मूलरूप में ही दोषयुक्त है कि विज्ञान को प्रतिरोपित करने की दृष्टि से भाष्य किया गया है वरन् सत्य यह है कि ऋचाओं के भाष्य से जो विज्ञान प्रकाश में आयी उसे प्रकाशित किया गया अतः विज्ञान की भान्यताओं में परिवर्तन विज्ञान की आन्तरिक व्यवस्था है अन्तरंग विषय है इससे वेद का विषय प्रभावित नहीं होता।

आधुनिक विज्ञान का ज्ञान सागर की तरह अपार है विज्ञान के किस नियम को लेकर वेद में खोज की जाय इसका निर्णय ही अन्वेषक की मति में विभ्रम उत्पन्न करने के लिये पर्याप्त है। अतः यह धारणा (Prima facie) प्रथम दृष्टि में ही निर्मूल सिद्ध होती है कि विज्ञान के सिद्धान्त की खोज वेद में की गयी है। वैदिक देवता मूल प्रकृति से सृष्टि विकास के तारतम्य में प्राकृति के विभिन्न चरणों में उदभूत हुए प्राकृतिक बल, रूपादि विभिन्न आयामों का प्रतिनिधित्व करते हैं उसकी एक स्थूल रूप रेखा वेद मन्त्रों में प्रस्तुत की गई है जो प्रमुख रूप से सृष्टि विकास के आधारभूत स्वरूप को और उससे संबंधित मौलिक सिद्धान्तों को अपनी स्तुत की हुई परिकल्पना में समाहित करते हैं यदि यह परिकल्पना सत्य है, तो श्चित है तथा स्वाभाविक है कि विज्ञान का उससे तालमेल होगा। अनन्तोगत्वा ज्ञान कोई चमत्कार नहीं है प्रकृति का व्यवस्थित अध्ययन ही तो है। सत्य, यदि दो स्रोतों से उपलब्ध हो तो स्रोतों की भिन्नता सत्य के एकनिष्ठ स्वरूप को प्रभावित नहीं करती।

अभी वैशेषिक दर्शन के अणु सम्बन्धी विचार मेरे देखने में आये। उसमें द्वि अणुक और त्रिसरेणु की जो कल्पना है वह विज्ञान के अणु (molecule) की बनावट के अति निकट है। दो अणु मिलकर एक द्वि अणुक बनाते हैं। वैशेषिक के अणु को विज्ञान का परमाणु मान लें तो दो उदजन (hydrogen) के परमाणुओं से जैसे हाइड्रोजन का अणु (molecule) बनता है ऐसे ही अणु से द्वि अणुक की कल्पना है इसी प्रकार आक्सीजन, कार्बन और कई अणु (molecule) बनते हैं और जैसे तीन परमाँणुओं से पानी (water molecule H_2O) बनता है ऐसे ही त्रिसरेणु की कल्पना की गयी हैं। विज्ञान की मालीकुलर थियोरी यथेष्ट विकसित है फिर भी उस अतीत काल में कणाद की परिकल्पना अत्यन्त आश्चर्य जनक है ही। ऐसे ही आश्चर्यजनक वेद की विज्ञान भी है।

विज्ञान एक निरन्तर विकसित हो रहा ज्ञान है किसी किसी विषय में वैज्ञानिक भी यह नहीं जानते कि अन्ततः वे कहाँ पहुँच जावेंगे किन्तु इसका तात्पर्य यह

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है कि सम्पूर्ण विज्ञान अविश्वस्यनीय है तथा पूरी की पूरी विज्ञान विकास की प्रक्रिया में है यदि ऐसा होता तो वैज्ञानिक अन्वेषण का आधार ही लोप हो जाता पुनः विज्ञान कैसे पृथ्वी के उपग्रह स्थापित करता, चन्द्रमा पर मानवीय अभियान तथा अमानवीय अभियान में पृथ्वी (रशिया) से नियंत्रण कर मात्र निर्देशों से चन्द्र धरातल की मिट्टी के लाने जैसे चमत्कार कैसे करता। विज्ञान प्राप्त से अप्राप्त की ओर, ज्ञात से अज्ञात की ओर बढ़ती है अज्ञात के विषय में जो थ्योरी (परिकल्पना) बनाई जाती है उसमें फेर बदल की संभावना रहती है किन्तु यह बात ज्ञात के विषय में नहीं कही जाती इस कारण विज्ञान की जानकारियों को वैज्ञानिक चार प्रकार के वर्गों में रखते हैं-

सिद्धान्त (Principles). वे भौतिक सत्य हैं जो विज्ञान की पृष्ठभूमि बनाते हैं और जिनकी सत्यता सार्वभौमिक व सार्वकालिक होती है तथा जो परिस्थितियों पर निर्भर नहीं करते जैसे शक्ति संरक्षण का सिद्धान्त

नियम (Laws)- वे भौतिक सत्य हैं जिनकी सत्यता परिस्थितियों पर (Conditional) निर्भर करती है जैसे न्यूटन के गति संबंधी प्रथम दो नियम। प्रस्थापित परीक्षित परिणाम (Experimentally Established results) वे प्रयोग सिद्ध परिणाम जिनके विषय में कोई भ्रान्ति नहीं है।

मत या परिकल्पना (Hypo thesis) किसी प्राकृतिक क्रिया (Phenomenon) को समझाने के लिये ज्ञात विज्ञान के आधार पर बनाई गयी परिकल्पना। यह तब तक हिपोथसिस रहती है जब तक कि इसका प्रायोगिक परीक्षण होकर प्रस्थापित परिणाम की श्रेणी में न आ जावे। वेद का अधिकांश विज्ञान मत (hypo thesis) को कोटि का नहीं है फिर भी जो कुछ हिपोथथिस। मत की कोटि का है उसकी अभिव्यक्ति को मात्र इस आंशंका से स्थगित करना कहां तक उचित होगा कि भविष्य में विज्ञान की मान्यताओं में फेर बदल की संभावना है यदि ऐसा करें तो इसका सीधा अर्थ यह होगा कि हम विज्ञान के प्रमाणित सिद्धान्तों को लेकर उन्हें वेद में स्थान देना चाहते हैं इसका अर्थ होगा कि हम विज्ञान से वेद का भाष्य करना चाहते हैं न कि वेद में निहित विज्ञान की अभिव्यक्ति। विशेषकर ब्राह्माण्ड की उत्पत्ति सबंधी विज्ञान को महाविस्फोट की परिकल्पना, जो वेद के हिरण्यगर्भ के प्रतिरूप है विज्ञान में अभी हिपोथसिस की अवस्था में है यह सिद्धान्त प्रथमबार मेरे द्वारा खोजा हुआ नहीं है वरन् समस्त प्राचीन हिन्दू शास्त्र (उदाहरणार्थं गीता अ. ७ व ८) यह उद्घोष कर रहे हैं कि सृष्टि उत्पत्ति प्रलय एक अनादि अनन्त क्रम है सृष्टि काल ब्रह्मा का एक दिन १००० चतुयुगी (१ चतुर्युगी = ४३२०००० वर्ष) है तो इतने दीर्घकाल में प्रकृति का अवस्थान्तरित होकर जगत् रूप में विकसित होना शास्त्रों का एक मान्य सिद्धान्त है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले वैज्ञानिक जगत् को उत्पन्न हुआ मानते ही नहीं ये तब भी हिन्दू दार्शनिक वैदिक साहित्य के आधार पर जगत् उत्पत्ति लय के अनादि क्रम के सिद्धान्त को प्रस्ताचित करते थे। परमाणु की आयु के निर्धारण हो जाने पर विज्ञान जगत् की आयु को मानने लगा परिणाम स्वरूप जगत को विकसित हुआ मानना पड़ा। ताप गति विज्ञान (thermo dynamics) के दूसरे नियम से द्रव्य के विकिरण में परिवर्तित हो जाने को एनट्रापी कहते हैं। जगत् में द्रव्य निरन्तर विकिरण में परिवर्तित हो रहा है किन्तु विकिरण का परिवर्तन द्रव्य में नहीं होता। इस प्रकार द्रव्य (ठोस, द्रव्य, गैस) के निरन्तर उन्मूलन से द्रव्य और विकिरण के मध्य का सन्तुलन विकिरण के पक्ष में झुक रहा है इस सत्य के अवलोकन ने विज्ञान को यह सोचने के लिये बाध्य किया है कि यदि सम्पूर्ण जगत् का नहीं तो सूर्य पृथ्वी आदि का अन्त सुदूर भविष्य में अवश्यमभावी है। इस प्रकार विज्ञान अब जगत् के आंशिकलय के सिद्धान्त को भी मानने लगा तदनुसार सूर्य का अस्तित्व कब तक रहेगा इसकी वैज्ञानिक कल्पना की जाने लगी। जगत् की उत्पत्ति और आंशिक लय की वैज्ञानिक मान्यता ने विज्ञान को वैदिक सिद्धान्त के पास ला दिया। अब यह देखना है कि आगामी मान्यता कहां ले जाती है।

इस आशंका से कि भविष्य में विज्ञान ने यदि अपनी मान्यताओं में फेर बदल किया तो वैदिक मान्यताएं प्रभावित होंगी वैदिक मान्यताओं को तब तक स्थगित करने का औचित्य समझ के परे है जब तक विज्ञान अपनी पूर्णता को प्राप्त न कर ले। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के अत्यन्त गूढ़ एवं गोपनीय विषय पर मात्र चिन्तन के आधार पर की गयी भविष्यवाणी में विज्ञान की सर्व सम्पन्न प्रयोगशालाओं किये गये सतत प्रयास के फलस्वरूप प्राप्त ज्ञान का आंशिक सत्य भी हो तो कम आश्चर्य की बात नहीं है। इसका दूसरा पक्ष यह भी तो है कि महाविस्फोट से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के सिद्धान्त को यदि विज्ञान प्रमाणिक रूप से स्वीकार करले तो उन द्रष्टाओं को जिन्होंने मात्र चिन्तन के आधार पर विश्व उत्पत्ति के रहस्य का उद्घाटन किया दैवी प्रेरणा से अनुप्रणित हुआ कौन नहीं मानेगा।



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक परंपरा संबंधी प्रश्न पर विचार–

दूसरा प्रश्न यह उठता है कि मेरे द्वारा जो ऋचाओं की विज्ञान-परक व्याख्या की गई हैं उसका वैदिक परम्परा में आधार क्यों नहीं है ?

जब तक यह सिद्ध नहीं हो जाता कि उपरोक्त व्याख्या का आधार वैदिक परम्परा में नहीं है तब तक यह प्रश्न उपयुक्त नहीं है वरन् इस व्याख्या का आधार वैदिक परम्परा में है अथवा नहीं है यह एक साध्य ही है।

वैदिक परम्परा में ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषद्, कल्प सूत्र निरुक्त,निघण्टु तो हैं ही, पुराण महाभारतादि ग्रन्थों के चुने हुए प्रकरण भी आंशिक रुप से सन्निहित हैं। वैदिक परम्परा में निरुक्त और निघण्टु का महत्वपूर्ण स्थान है। लेखक ने कुछेक अपवादों को छोड़कर निरुक्त और निघण्टु का सर्वत्र ही आश्रय लिया है तथा सभी अध्यायान्तर्गत विषयों पर अपने मन्तव्य की पुष्टि के लिये ब्राह्मण ग्रन्थों से प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। विस्तृत विचार के लिये ब्राह्मण ग्रन्थों में शोध की आवश्यकता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में विज्ञान विद्यमान है यह तथ्य यहां प्रस्तुत विषयवार झलक से प्रस्थापित हो जाता है।

१. अखंड मूल तत्त्व का प्रतीक अदिति–
(अ) ऐतरेय ब्राह्मण की आख्यायिका– पृष्ठ ४७ भाग १ में उद्धृत
(ब) गोउथ ब्राह्मण पूर्व भाग (प्रपाठक२)– अदिति की सृष्टि रचना के दृष्टान्त से भौतिक यज्ञ की रचना - नाम की कण्डिका –पृष्ठ २०४-२०६ प्रथम भाग में उद्धृत।

(स) अन्नं वै श्रीर्विराड् अक्षरीयां विराजम्। गो. ब्रा. उ. मा. १,१६ अन्न ही श्री है विराट् है विराज् अर्थात् अविनाशी है इस कारण मूल प्रकृति वाच्य हैं। भाष्यकार पं. क्षेमकरण त्रिवेदी

(द) लेखक द्वारा 'अदिति' शब्द का यह निर्वचन किया गया था।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(प्रथम भाग पृष्ठ) किन्तु इसका उस समय कहीं कोई प्रमाण उपलब्ध न हुआ था। अभी बृहदारण्यकोपनिषद् (२/५) में पाया कि वही व्युत्पत्ति वहां दी है यथा– स यद्यदेवासृजत तत्तदत्तुमध्रियत सर्वं वा अत्तीति, तददितेरदितित्वं। उसने जिस-जिस देव को उत्पन्न किया उस-उस को खाने का विचार किया वह सबको खाती है वह अदिति का अदितित्व है।

(इ) अब यहां कुछ शोधकर्ताओं के विचार दिये जाते हैं -
म्यूर ने अदिति को सर्वव्यापी विश्व प्रकृति का प्रतिरूप माना है। १
प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् मेक्समूलर के अनुसार -
"उर्वशी को उषा माना गया है। अनन्तता या अमरत्व की प्रतिरूप अदिति भी उषा का ही पुरातन नाम है।" २
"वेद में प्रकृति" का परिभाषिक नाम अदिति है" तथा
'वाक्, माया और अदिति वेद में ये तीन नाम प्रकृति या शक्ति के हैं'३

२. मूल तत्व की क्रियाशील अवस्था अप्

(अ) ऐतरेय ब्राह्मण की आख्यायिका जिसमें सभी देवों को प्रसन्न करने के हेतुभूत उद्देश्य से प्रजापति द्वारा प्रातरनुवाक के लिये आपो रेवती ऋचा "आपो वै सर्वा देवता"
(ऋ- १०/३०/१२) का दर्शन करना व इस पर सायण भाष्य पृष्ठ ५० प्रथम भाग

(ब) गोपथ ब्राह्मण पूर्व भाग (प्र. १/क. १)
ब्रह्म द्वारा तप से शरीर के रोम छिद्रों से स्वेद धारा का प्रवाह व ब्रह्म का संकल्प -
आभिः वै अहं इदं सर्वम् आप्स्यामि (आप्लृ व्याप्तौ लृट् व्याप्स्यामि यत् इदं किञ्च इति तस्मात् आपः अभवन्।
पृष्ठ ५० - ५२ भाग १

(स) स्मृति प्रमाण - पृष्ठ ५३-५४ भाग १

१, २ वैदिक अध्ययन, पृष्ठ ६८,७२,६७
३. वैदिक दर्शन (पृष्ठ ३१) डॉ कुवरलाल जैन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ङ) अप् संबंधी बृहदारण्यक उपनिषद् प्रमाण–
नैवेह किञ्चनाग्र आसीन्मृत्युनैवेदमावृतमासीदशनायया । .....
सोऽर्चन्नचरत् तस्यार्चत आपोऽजायन्तार्चते वै मे कमभूदिति ।
(अध्याय१ / ब्राह्मण २/ क. १)
भाष्य - (अग्रे इह किञ्चन न एव आसीत्) सृष्टि के पूर्व यहां कुछ नहीं ही था ।

(अशनायया मृत्युना एव इदं आवृतम् आसीत्) बुभुक्षा स्वरूप (अद् + इति) सबको अपने में लय करने वाला (मूल सत्ता मूल तत्व सहित ईश्वर) मूल सत्तात्मक तत्व यहां आकाश को आवृत किये स्थित था । हि अशनाया मृत्युः तन् मनः अकुरुत आत्मन्वी स्याम इति) क्योंकि मृत्यु वाच्य परमेश्वर ने उस संकल्प को किया कि मैं प्रयत्नवान् होऊं । (सः अर्चन् अचरत्) उसने (प्रकृति का) सत्कार करते हुए (प्रकृति को) गति दी, संचालित किया (तस्य अर्चतः आपः अजायन्त) सत्कार करते हुए उस ईश्वर के पास आप्लृ व्याप्तौ व्यापक कार्यभूत अप् तत्व उत्पन्न हुआ । यहां भाष्यकार टिप्पणी करते हैं - आप्लृ व्याप्तौ व्यापकः कार्यभूत आकाशोऽजायत । तत्रापि प्राथमिक सूक्ष्मावस्था लक्षको ऽप् शब्दः सर्वत्र सृष्टि प्रकरणे प्रयुज्यते आप्लृ धातुर्हि तदर्थमवगमयितुं समर्थः ।

प्रथम जल की उत्पत्ति हुई यह किसी शास्त्र का सिद्धांत नहीं है यहां 'आप' शब्द को देखधर टीकाकारों ने जल अर्थ करके ऋषियों के अर्थ को कलुषित कर दिया है आकाश का अर्थ यहां आकाश नहीं है एक अत्यन्त सूक्ष्म सर्वव्यापक पदार्थ है जिसके द्वारा सृष्टि के सब कार्य हो रहे हैं। आप्लृ धातु से बने अप् शब्द का व्याप्ति अर्थ में प्रयोग हुआ है अर्थात् सृष्टि की सूक्ष्म प्रथमावस्था का नाम "आप" है । इस प्रकार सत्कार करते हुए मेरे लिये यह ब्रह्माण्ड हुआ ।
आपो व अर्कस्तद्यदपां शर आसीत्तत् समहन्यत। सा पृथिव्यभवत्तस्याम श्राम्यत्तस्य श्रान्तस्य तपस्य तेजोरसो निरवर्त्तताग्निः। अ. १/ ब्रा. २/ क. २

अनुवाद – निश्चय ही आप अर्क है अर्थात् तेज है[1]
आपः की जो (शरः) उपमर्दिका शक्ति थी वह (समहन्यत = संघातमापद्यते सम्मिलितमभूदित्यर्थ :) सब एकत्र हुई वह पृथिवी (यह पृथिवी नहीं) हुई (अप् सकाशात् स्थूलतरो विस्पष्टो ऽवस्थान्तर विशेषः पृथिवी शब्द वाच्यः) वह सम्मिलित शक्ति आपः से कुछ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थूल और विस्पष्ट अवस्थान्तर विशेष का नाम पृथिवी है क्योंकि पृथिवी शब्द भी आकाश के नामों में पठित है (निघण्टु)
(तस्याम्) मूल व्यापक तत्व की अग्रिम सूक्ष्मतर अवस्था होने पर उत्तरोत्तर विकास के लिये (अश्राम्यत्) ईश्वर ने श्रम किया। तस्य श्रान्तस्य तप्तस्य) श्रान्त और तप्त हुए उस परमात्मा से (अग्निः तेजोरसः निरवर्तत) अग्नि रूप तेजो रस उत्पन्न हुआ। (भाष्यकार पं. शिवशंकर शर्मा)

अब लेखक द्वारा दिये गये वैदिक सृष्टि विकास (एवं इसी पुस्तक के वैज्ञानिक क्रम पृष्ठ १०६) से तुलना करें तो विदित होगा प्रथम यह कि आप् तत्व प्रकृति की उद्वेलित अवस्था है क्योंकि पूर्व कण्डिका में 'अचरत्' पद में प्रकृति को गति देने का तात्पर्य निहित है द्वितीय यह कि मूल तत्वों के सम्मिलन से अवस्थान्तरित हुआ द्रव्य वेद प्रोक्त वज्र है। तृतीय यह कि वह सम्मिलित शक्ति अत्यन्त कठोर होने से पृथिवी ऐसे कही गयी। विज्ञान ने जिसे सघनतम अवस्था प्लाज्मा (प्रतिघन से. मी. ४ हजार तक मेट्रिक टन) कहा है चतुर्थ यह कि इससे तेजोमय अग्निमय अवस्था अर्थात् हिरण्यगर्भ प्रकट हुआ।

(५) अप् संबंधी शतपथ ब्राह्मण प्रमाण—
वज्रो हि वा आपः। वस्तुतः आपः वज्र है (वै व्याकरण पृ. ३३३) यह प्रमाण इस विषय में निर्णायक है जल वज्र हो नहीं सकता क्योंकि वज्र की परिभाषा विपरीत अर्थ की प्रतिपादक है। विज्ञान से हमें ज्ञात होता है कि पदार्थ जैसे-जैसे सूक्ष्म होता जाता है उसका घनत्व बढ़ता जाता है और सर्वाधिक सूक्ष्म द्रव्य सर्वाधिक सघन होगा।

वज्र की कल्पना भी यही है कि वह कठोरतम द्रव्य है उससे कठोर किसी अन्य द्रव्य की होने की कल्पना की नहीं जा सकती। इससे यह सिद्ध हुआ कि वज्र जिस तत्व का बना हुआ होता हैं वह सर्वाधिक सूक्ष्म होता है। हम यह देख आये हैं कि वैदिक अप् तत्व सृष्टि आरंभ में प्रकट हुआ कहा गया है जो कि पदार्थ की सूक्ष्म प्रथमावस्था कहा गया है। इस न्याय से अप् तत्व या उससे निर्मित (या उसका समानार्थी) द्रव्य वज्र वैज्ञानिक सृष्टि उत्पत्ति में कहे गये आदि काल के द्रव्य के समतुल्य ही होगा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब ऐतरेय ब्राह्मण के इस सूत्र कि (२।१।१) कि
अष्टाश्रिर्वै वज्रः ।

आठ धार अर्थात् वज्र आठ तत्वों का बना था, हमें यह सोचने के लिये पर्याप्त आधार प्रदान करता है कि वज्र का आश्रयभूत द्रव्य प्लाज्मा ही था इस समता से कि महाविस्फोट के समय उद्भूत प्लाज्मा भी अष्टवर्गी था।

शतपथ ब्राह्मण ने इस तथ्य की पुष्टि इस सूत्र में की है
तावश्विनौ च सरस्वती च अपां फेनं वज्रमसिञ्चन् ।
अश्वनौ और सरस्वती ने आपः के झाग को वज्ररूप में परिवर्तित कर दिया (वै. व्या. पृ. ३८० से उद्धृत ।

(अ) सोम संबंधी ब्राह्मण प्रमाण (गो. ब्रा. उ. भा. प्र. २/कं ४)
देवाः वै घृतं वज्रं कृत्वा सोमम् अध्यन–
देवों ने घृत को वज्र को बनाकर सोम (विकिरण) को पीड़ित किया। वज्र का आधारभूत द्रव्य घृत कहा गया है जिसका तात्पर्य यह है कि 'घृत' शब्द यहां वहतीः आपः के प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुआ है १ वज्र अष्ट वर्गी प्लाज्मा का बना था अतः घृत यहां तरल प्लाज्मा का प्रतीक है आदि काल में वज्र प्रहार से प्रकृति के द्रव्य भाग (प्लाज्मा) और विकिरण (सोम) के मध्य मंथन होता है।
यही तथ्य यहां सूत्र में कहा गया है।
आग्नेयं वै घृतम् (श. ब्रा.)

(ब) सोम संबंधी ऐतरेय ब्राह्मण (१।४।८) प्रमाण—
देवताओं ने जो बाण (वज्र) बनाया उस बाण का अग्निरनीकमासीत् सोमः शल्यो विष्णुस्तेजनं वरुणः पर्णानि । अग्नि मुख हुआ, सोम लोहे वाला शल्य भाग था विष्णु तेज और वरुण बाण के मूल पर स्थापित पंख हुए।
स्पष्ट है कि सोम दिव्य बाण के मुख्य भाग पर लौह आवरण कहा गया है जिसका सहज निष्कर्ष यह है कि सोम कोई लता का रस नहीं है। वरन् कोई प्राकृतिक महत्वपूर्ण द्रव्य है पुनश्च आगामी खण्ड में कहा गया है–

घृतेन हि वज्रेणेन्द्रो वृत्रमहन् ।
घृतरूप वज्र से इन्द्र ने वृत्र को मारा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(स) ऋग्वैदिक सोम विश्व में नियोजित विकिरण है—
ऐतरेय ब्राह्मण (सूत्र १/४/६) प्रमाण व सायण भाष्य– यः सोमो राजा एष द्यावापृथिव्योरेव गर्भ। जो सोम राजा है वह द्यु और पृथ्वी का गर्भ है, सायण।
यह विचारणीय है कि द्युलोक पृथिवी में व्यापक सोम क्या है?

(ड) अपने निज स्वरूप वाले सोम को गायत्री द्वारा द्युलोक से लाये जाने संबंधी ऐतरेय ब्राह्मण वचन (१/३/२) और उस पर सायण भाष्य (पृष्ठ १२७, भाग १) में उद्धृत) यह सिद्ध करता है कि द्युलोक से लाया जाने वाला सोम पेय नहीं है वरन् विकिरण ही है। यज्ञ में सोम लता लाये जाने की क्रिया आकाश में सोम किरण लाये जाने की अनुकृति है।

(इ) शतपथ ब्राह्मण प्रमाण—
दिवि वै सोमो आसीत्।(१३/२/४)
आकाश में अवस्थित सोम कोई पेय नहीं है वरन् ऊर्जा ही है

(ई) गोपथ ब्राह्मण (पूर्वभाग, प्रपा. ५/क० १४) प्रमाण—
सः यत् आह स्वर असि इति सोम वै एतत् आह–
वह जो कहता हैं कि तू शब्द है इससे वह सोम को ही कहता है
एषः ह वै सूर्यो भूत्वा अमुष्मिन् लोके स्वरति–
यह ही निश्चय से सूर्य होकर उस लोक में प्रकाश करता है
तत् यत् स्वरति तस्मात् स्वरः तत् स्वरस्य स्वरत्वम् २
जो वह प्रकाश करता है इससे ध्वनि रुप है वही उस ध्वनि का ध्वनिपना (ध्वनि का इनर्जी रूप होना) है।

यहां कहा गया हैं कि सोम (स्वरः) ध्वनि तरंग रूप है और उसीसे प्रकाश रूप सूर्य की उत्पत्ति होती है तथा ध्वनि व प्रकाश रूप में अभिव्यक्त इनर्जी में एकत्व का व्याख्यान है ध्यातव्य है कि द्रव्य से विकिरण का सबसे बड़ा विभेदक लक्षण तरंगवत् होना है। यहां सोम को सीधे ही सूर्य रूप में उद्भूत होना तथा ध्वनि रूप होना कहा है जो विकिरण ही हैं। आगे कहते हैं
एषः ह वै चन्द्रमाः भूत्वा सर्वान लोकान् गच्छति।
यह वह (सोम) ही चन्द्रमा होकर सर्व लोकों में व्यापता है
तत् यत् गच्छति तस्मात् गयः, तद् गयस्य गयत्वम् ३।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सो भी वह व्यापता है वही उस व्यापक की व्यापकता है।

प्रसिद्ध है कि चन्द्रमा सर्वव्यापक नहीं है यहां सर्वव्यापक नहीं है यहां चन्द्रमा से प्रकाश के सौम्य रूप का सर्वव्यापी होकर व्यापना कहा गया है यह विज्ञान प्रोक्त कस्मिक किरण या विकिरण है जो सूक्ष्म मान वाला होकर सर्वव्यापक है।

आगामी कण्डिका में इस विषय पर और प्रकाश डाला गया है—
पृथिवी (भर्गः) तेज है अन्तरिक्ष (महः) व्यापक है (द्यौः) प्रकाशित लोक (यशः) कीर्ति है और (अपः एव सर्वम्) आपः ही सब है अग्नि भर्ग है वायु व्यापक है आदित्य यश है चन्द्रमा एव सर्वम् चन्द्रमा ही सब है अर्थात् चन्द्रमा उपरोक्त अप् तत्व की तरह व्यापक कहा जाने से सूक्ष्म विकिरण ही है।

४. अग्नि सोम क्रमशः सम्पूर्ण प्रकृति व विकिरण अंश हैं—
ऐतरेय ब्रा. (१/२/३) —
अग्निः सर्वा देवता सोमः सर्वा देवता।
अग्नि ही सब देवों का वास्तविक रूप है सोम भी ऐसे ही हैं।
अग्निषोसौ वै देवनां मुखं। (गोपथ ब्रा. उ भाग १/२०)
अग्नि सोम देवों के मुख है। देवों का आन्तरिक स्वरूप अग्नि सोम है अग्नेः आस्यं किंचन नहि हिनस्ति। गो. ब्रा. (उ. मा.१/२०) अग्नि के मुख को कोई नष्ट नहीं कर सकता।स्पष्टतयः यह शक्ति (इनर्जी) संरक्षण का सिद्धांत है।

अग्निः वै सर्वाः देवताः विष्णुः यज्ञः। गो. ब्रा. (उ. मा. १/१२)
अग्नि सर्व देवरूप मूल उपादन कारण और विष्णु संगतिकरण कर्ता निमित्त कारण हैं।

पुनः गो. ब्रा. (उ. मा. प्र. २ क. ७)
सः अग्निः देवयोनिः। वह अग्नि ही देवों का बीजरूप कारण है गोपथ ब्रा. उत्तरभाग (प्रपा १/क. १७) में एक रूपक में कहा गथा है कि देवता औषधि के पकने पर भोजन करते हैं इसका तात्पर्य यह है कि सृष्टि विकास हो जाने पर ही देव सत्ता में आते हैं आगे कहा गया है कि इन्द्र और अग्नि में स्पर्धा हो गयी कि औषधि को कौन पहले जीतेगा।तब

उन औषधियों को अग्नि ने जीता उनको इन्द्र ने जीता। अर्थात्

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्र (ईश्वर) और अग्नि (मूल उपादन कारण) दोनों का सम्मिलित कार्य यह जगत है।
गोपथ ब्रा. (उ. भा. १/२२)
बलं तेजः वै इन्द्राग्नी।

इन्द्र ईक्षण रूप बल और अग्नि मूल शक्ति रूप तेज है। वेद में सोमतत्व एक गम्भीर रहस्य का विषय है समस्त सृष्टि के उपादान कारण अग्नि और सोम है।?
५. अश्व शक्ति का प्रतीक है– गोपथ ब्राह्मण की आख्यायिका (भाग१, पृष्ठ७७-८०) देखें।
६. आदित्य मित्रावरुणौ– ऐतरेय ब्राह्मण व सायण भाष्य (भाग १, पृ. १०६-७) में देखें एवञ्च गोपथ ब्रा. (पू. भा. ४/क. २३) में एक रूपक है कि आदित्य और अङ्गिरस में स्वर्ग पहले पहुंचने के लिये स्पर्धा आरंभ हुई। तब

ते आदित्याः लघुभिः सामभिः चतुर्भिः स्तोमैः द्वाभ्यां पृष्ठ्याभ्यां स्वर्गं लोकम् अभ्यप्लवन्त। आदित्य मूल तत्व वरुणमित्र अर्यमा है वे आदित्य (मित्र वरुण अर्यमन्) चार स्तोम वाले सूक्ष्म साम (ध्वनि या रूप) द्वारा और दो पृष्ठ्यों द्वारा कूदकर स्वर्ग पहुंच गये अर्थात् आदित्य चार प्रकार के बलों द्वारा सूक्ष्म रूप व तरंगों से चले। दो पृष्ठ यहां आदित्यों में दो प्रकार के कण (धनात्मक ऋणात्मक) के होने का संकेत है। तथा (अङ्गिरसः गुरुभिः सामभिः सर्वैः स्तोमैः सर्वैः पृष्ठ्यैः स्वर्गं लोकम् अभ्यस्पृशन्त) अङ्गिरस स्थूल साम से सब पृष्ठ्यों से स्वर्ग लोक को छूकर पहुँचे।

इस कथा से अङ्गिरसों के स्वरूप पर प्रकाश पड़ता हैं यह कि अङ्गिरस मूल तत्व वरुणादि से स्थूल किन्तु प्रकृति प्रारंभिक अवस्था है जिसके प्रारंभिक सभी अवयव मूल के निकट के होने से मूल के लोक (जिसे यहां स्वर्ग कहा गया है) को स्पर्श करते हैं अङ्गिरसों के बाद की अवस्था मूल के लोक (स्वर्ग, अदिति के स्वराज्य) से दूर की है। अतः अङ्गिरस अवस्था अप्– अवस्था और बृहतीः आपः की मध्यगामिनी है। जो विज्ञान प्रोक्त क्वार्क सूप अवस्था के समकक्ष कही जा सकती है सूप और रस समानार्थी है। आदित्यों द्वारा कूदकर पहुंचना इस बात का द्योतक है कि स्वर्ग उनका निज लोक है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ब) गोपथ- ब्रा. पूर्व भाग, प्रपा. ५.। कं, २४ व २५
तपस्वी वैश्वानर अपत्यम् ईत्सन् तपसा श्रद्धायां रेतः सिषिचे ततः यज्ञे ऋषेः लोकजित सोमजम्भाः ऋषिः अङ्गिराः सम्बभूव -

सबके नेता तपस्वी ईश्वर ने संतान की इच्छा करते हुए तप से सत्य धारणावती शक्ति से मूल बीजरूप तत्व प्रस्थापित किया उस सत्कर्म से उस ईश्वर ऋषि से लोकों को जीतने वाला सोम भक्षण करने वाला ऋषि अङ्गिरा उत्पन्न हुआ।

मूल बीज रूप तत्व का प्रथम परिणाम अङ्गिरस रूपी तरल है इस तरल की यह विशेषता है कि यह (सोम) विकिरण का भक्षण करता है अथात् प्रकाश रूप किरण इस तरल में जाकर कण प्रतिकण में विभक्त हो जाती है।

आपो (स्थानम्) भृग्वङ्गिरसो स्मृतम् भृगु अङ्गिरसों का स्थान मूल तत्व आपः में है।

वसिष्ठ के स्वरुप संबंधी ब्राह्मण वचन- गोपथ ब्राह्मण (उ. भाग, प्रपा २/ क. १३) में एक आख्यायिका आती है जो इस प्रकार है-
(ऋषयः वैइन्द्रं प्रत्यक्षं न अपश्यन्)

ऋषियों ने निश्चय करके इन्द्र को साक्षात् न देखा। इसका तात्पर्य यह है देवों की तरह ऋषि पितर आदि सृष्टि विकास क्रम में द्रव्य की अवस्था विशेष है। इन्द्र ईश्वर का प्रतीक है और मूल उपादान कारण की समग्र सत्ता के प्रतीक अदिति और आपः हैं तथा मूल कारण संघात के व्यक्तिगत सदस्य मित्र, वरुण और अर्यमन् हैं। सृष्टि में नियोजित होने पर अर्यमा की संज्ञा सोम हो जाती है। इस प्रकार अदिति, आपः, मित्र, वरुण और अर्यमा या सोम (इन्द्र) ईश्वर के साक्षात् लोक के वासी हैं १ किन्तु ऋषि मूल तत्व के परवर्ती

---

१ उत् स्वराजो अदिति रदब्धस्य व्रतस्य ये। महो राजन ईशते॥ ये मित्र वरुण अर्यमन् वहां मूल प्रकृति के स्वधाम, स्वराज्य के नित्य व्रतों के सर्वोच्च सत्ता होकर शासन करते हैं। ऋ.७/६६/६
सोमो राजा प्रथमो ब्रह्म जायाम्.....।
आदिकाल में सोम के साथ मित्र वरुण की स्थिति संबंधी (क्र. २६०) देखें।
राष्ठं गुपितं क्षत्रियस्य। जैसे राष्ट्र राजा के वैसे प्रकृति संरक्षित हुई ईश्वर के पास विद्यमान थी। (क्र. २६१) देखें।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिणाम होने से इन्द्र के साक्षात् लोक के वासी नहीं है इस कारण वे इन्द्र के साक्षात् दर्शन से वंचित रहते हैं
तं वसिष्ठः एव प्रत्यक्षम् अपश्यत्

उनको वसिष्ठ ने ही साक्षात् देखा अर्थात् वसिष्ठ मूल तत्व मित्र वरुण का प्रथम परिणाम होने से मूल सत्ताओं (ईश्वर, मूल प्रकृति से सर्वाधिक निकट है अतः मूल सत्ताओं के साक्षात् संपर्क में उसका होना कहा गया है।

सः अबिभेत् इतरेभ्यः ऋषिभ्यः मा प्रवोचत् इति- वह इन्द्र डरा कि यह वसिष्ठ यह रहस्य पदार्थ की अन्य अवस्थाओं को न बता दे सः अब्रवीत् ब्राह्मणं ते वक्ष्यामि यथा त्वत पुरोहिताः प्रजाः प्रजानिष्यन्ते— इन्द्र ने कहा मैं तुझे (पुरःहिता) सामने रखते हुए या मुखिया रखते हुए प्रजाएं उत्पन्न होंगी। अतः आप अन्य ऋषियों से न कहें
तस्मै एतान् स्तोम भागान् उवाच–

उस वसिष्ठ को इन्द्र ने ये स्तोम भाग बताए।
ततः वसिष्ठ पुरोहिताः प्रजाः प्राजयन्त–
तब वसिष्ठ को आगे करके प्रजायें उत्पन्न हुई।

इस कथा का सार यह है जैसा कि कहा जा चुका है वसिष्ठ मूल तत्वों का प्रथम परिणाम है जो मूल के सर्वाधिक निकट है तथा नाभि रचना का प्रमुख घटक न्यूट्रान है (प्रथम भाग, अध्याय १३)। नाभि रचना के अनन्तर ही (प्र- जाः) अच्छे प्रकार उत्पन्न विविध परमाणु प्र. जायन्ते) अच्छे प्रकार बनते हैं। यही तथ्य यहां इस रूपक का आशय है।

७. हिरण्यगर्भ और मूल तत्व के प्राथमिक स्वरूप का विज्ञान–
(अ) गोपथ ब्राह्मण (उ. भाग, प्रपा. १/१६) का प्रमाण—
(अथ यत् अग्निं मन्थन्ति, प्रजापतिः वै वैश्वदेवं प्रजात्यै एव)— फिर जो अग्नि को मथते हैं प्रजापति (ईश्वर) ने ही वैश्वदेवं समासः) वैश्व देव को, हवियों के संग्रह को अथात् मूल तत्व को प्रजा की उत्पत्ति के लिये ही किया है।

---

१. सप्त ऋषियो भूतकृतस्ते त्वा मन्थन्तु प्रजया सहेह। अथर्व: ११/१/१ भूतों को बनाने वाले सात ऋषि तुझ अग्नि का प्रजासहित अवश्य मन्थन करें।
सप्त ऋषयः प्रतिहिता शरीरे। देह में सात ऋषि स्थित हैं। यजु ३५/५५

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अथ एन दैवं गर्भं प्रजनयति)–
फिर इस दिव्य गर्भ को उत्पन्न को करता है।
आदिकाल में सुरक्षित अग्नि के मंथन से और उसमें मूलं तत्व की हवि से[1] दिव्य गर्भ रूप हिरण्य गर्भ उत्पन्न होता है।
अथ यत् विराजौ संयाज्यै, अन्नं श्रीः वै विराट्। –फिर जो दो विराट् एक साथ (सृष्टि) यज्ञ में आहुत हुए वे विराट् निश्चय ही अन्न और श्री हैं। ये दो विराट् प्रकृति का द्रव्य भाग और प्रकृति का विकिरण भाग है। अन्न स्थूल होता है (श्री-) तेज सूक्ष्म अतः अन्न प्रकृति का द्रव्य भाग और श्री विकिरण भाग है।
अथ यत् नव प्रयाजाः नव अनुयाजाः अष्टौ हवींषि नवमं वाजिनं तत् न अक्षरीयां विराजम् आप्नोति–
फिर जो नव प्रयाज और नव अनुयाज, आठ हवि और नवमी (वाजिन) बलवाली हवि है उससे वह अविनाशिनी विराट् पाता है?

आदि सृष्टि काल में प्रकृति का द्रव्य भाग प्लाज्मा रूप में रहता है जो अष्टवर्गी होती है ये ही आठ आहुति है और विकिरण भाग तेज रूप में रहता है जो बलवाली हवि है। इस प्रकार नव प्रमुख हवियां बनती है जो सृष्टि विकास का अंग होती है। किन्तु समस्त प्रकृति सृष्टि रचना में भाग नहीं लेती। इस कारण इन्हीं का शेष भाग जो सृष्टि यज्ञ में तो भाग लेता है किन्तु सृष्टि रचना में भाग न लेने से गौण हो जाता है नव अनुयाज आहुति बनाता है। इस प्रकार यह हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति तथा अन्न और श्री, अष्टवर्गी प्लाज्मा रूप द्रव्य भाग और विकिरण का विज्ञान है।
८. मरुत के स्वरूप संबंधी वचन–
(गो. ब्रा. उ. भाग प्रपा. १/ क.२२)

बलं तेजः वै इन्द्राग्नी बलं एव तत् तेजसि प्रतिष्ठापयति–
इन्द्र अग्नि निश्चय ही बल और तेज है बल को ही इन्द्र ने तेज में स्थापित किया है। इन्द्र निमित्त कारण है बल (force) का नियन्ता है उसने ही अग्नि रूप मूल कारण तेज में बल की स्थापना की है।
अथ यत वारुणी आमिक्षा, इन्द्रः वै वरुणः, सः उ वै पयोभाजनः जो वरुण का पय (तरल) है क्योंकि इन्द्र ही वरुण है वह ही निश्चय करके पथ का बंटवारा करने वाला है इसलिये वरुण का तरल इन्द्र का ही है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अग्नि तेज के द्रव्य भाग वरुण मित्र जो तरल बनाते हैं वह उसका विभाग करने वाला अधिपति इन्द्र ही है वह ही उसमें बल स्थापित करता हैं अतः वरुणी पयः को इन्द्र का ही कहा जाता है मित्र वरुण अप के अंश हैं जो इन्द्राधीन है (अथ यत् मारुती पयस्या, अप्सु वै मरुतः श्रितः, आपः हि पयः) और जो मारुती वाली ऋचा है वह आपः वाली है क्योंकि आपः ही पय है और मरुत आपः में आश्रित है आपः मूल तत्त्व संघात है मरुत कोई द्रव्य नहीं है क्योंकि वह आपः में ही ठहरा है अतः मरुत बल का प्रतिनिधित्व करते हैं जैसा कि अध्याय १३ और १५ में प्रस्थापित किया गया है।

(अथ इन्द्रस्य वै मरुतः श्रितः, ऐन्द्रं पयः, तस्मात् मारुती पयस्या)- अतएव इन्द्र के ही आश्रय मरुत है क्योंकि इन्द्र ही पय वाला है पय का अधिपति है इसलिये मारुती देव वाली ऋचा आपः वाली ही है क्योंकि इन्द्र आप का अधीश्वर है और मरुत की सत्ता का आधार आपः है अतः मरुत इन्द्र का ही बल कहा गया है मरुत इन्द्र के आश्रयभूत है।



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रो. उदित नारायण सिंह
सदस्य

म. प्र. उच्च शिक्षाअनुदान आयोग
ई -2/84, अरारा कालोनी,
भोपाल-462016

क्रमांक 3525 दिनांक 2 मई, 1988

प्रिय डा. वर्मा जी

सप्रेम अभिवादन। आपकी पुस्तक और 16 अप्रेल का लिखा हुआ पत्र एक साथ मिले। पुस्तक भेजने के लिये अनेक धन्यवाद। आपकी पुस्तक "वैदिक सृष्टि उत्पत्ति रहस्य" भाग- १ मैंने सरसरी तौर पर देखी। आपने बड़े परिश्रम से और बहुत गहरे पैठ कर ऋचाओं के नये अर्थ किये हैं। जहां तक मुझे ज्ञात है इस दृष्टि से लिखी गई आपकी पुस्तक अकेली है। आजकल अत्यधिक कार्य-व्यस्त होने से आपकी पुस्तक पूर्ण रूप से नहीं बढ़ सका। कुछ दिनों बाद इसे पढ़ूंगा। वैसे भौतिकी का मेरा ज्ञान बहुत सीमित है। फिर भी मैं कहूंगा आपने बहुत श्लाघ्य कार्य किया है। इस प्रयास के लिये आपको साधुवाद।

आशा है आप स्वस्थ एवं प्रसन्न है।
विशेष कुशल।

भवदीय,

[उदित नारायण सिंह]

प्रति,

डॉ. विष्णुकांतकांत वर्मा,
इन्द्रप्रस्थ,
सीपत रोड सरकंडा,
बिलासपुर [म प्र.]

निवास: ई- 2/162 अरेरा कलोनी भोपाल 462016 दूरभाष नि 61891
का. 62921 दूरलेख एज्यूयाठस भोपाल

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने में अद्यावधि विज्ञान असमर्थ है, तथा जिनके आधार पर विज्ञान के भावी विकास को दिशा निर्देश मिल सके।

स्वकीय अभीष्ट लक्ष्य की ओर सतत् अग्रसर होते हुए, पथ प्रदर्शक के रूप में डॉ. वर्मा, वेद के अधिभौतिक अर्थ निर्धारण की परंपरा के अग्रदूत बने, यही मेरी हार्दिक शुभकामना है।



डॉ. श्यामा भटनागर
संस्कृत विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
वर्ग संख्या 14 वर्मा - वे आगत संख्या 181386
पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए अन्यथा 50पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब शुल्क लगेगा ।



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY		
	By	Date
Ac	Nmeen	7/11/14
C	Pavan	15/12/14
Tag etc	Pavan	16/12/14
E.A.F.		
Recomm	Donation	Nmeen
Data En	Nmeen	10/12/14
Checked		

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मति

'वैदिक सृष्टि उत्पत्ति रहस्य' वस्तुतः अपने ढंग का अनूठा ही नहीं वरन् एक विशिष्ट ज्ञानवर्द्धक ग्रन्थ है जो सृष्टि उत्पत्ति संबंधी वैदिक एवं आधुनिक वैज्ञानिक निष्कर्षों का सम्यक् विवेचन प्रस्तुत करता है। इसके लेखक डा० विष्णुकांत वर्मा गणित के विद्वान् प्रोफेसर होने के साथ ही वैदिक दर्शन के कुशल अध्येता एवं मीमांसाकार भी हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि हमारे वेदों में ज्ञान और विज्ञान की इतनी सामग्री भरी पड़ी है जिसकी थाह आज तक नहीं मिल सकी है। आधुनिक विज्ञान अपने सम्पूर्ण उपकरणों तथा अन्य साधनों के सहारे जो कुछ जान पाया है वह वैदिक ज्ञान का क्षुद्रांश मात्र है, इसकी पुष्टि प्रस्तुत ग्रन्थ से होती है सृष्टि की उत्पत्ति के संबंध में नवीनतम वैज्ञानिक अनुसंधानों से जो निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं वे आज से सहस्त्रों वर्ष पूर्व वेदों में संकलित ज्ञान की ही पुष्टि करते हैं।

अपने विशद् अध्ययन द्वारा संचित ज्ञान और पांडित्यपूर्ण तर्कों की सहायता से विद्वान् लेखक ने सृष्टि रचनाक्रम में सोम, मित्र, वरुण अर्यमा प्रभृति घटकों का आज के विज्ञान द्वारा प्रोक्त क्रमशः कास्मिक किरण (ब्रह्माड किरण), प्रोटोन, इलेक्ट्रान तथा विकिरण (रेडियेशन) के साथ तादात्म्य स्थापित करके प्राच्य भारतीय दर्शन की महत्ता प्रतिपादित करने का स्तुत्य कार्य किया है। इसी प्रकार 'बृहती आपः' का पदार्थ की चतुर्थ अवस्था 'प्लाज्मा' से तादात्म्य स्थापित कर लेखक ने हमारे आर्षग्रन्थों में वर्णित 'महाप्रलय' और तदनन्तर सृष्टि के पुनर्निर्माण के सिद्धांतों की व्याख्या का एक नया आयाम प्रस्तुत किया है।

विश्वास है कि प्रस्तुत ग्रन्थ सृष्टि उत्पत्ति के वैदिक सिद्धांतों के प्रकाश में आधुनिक विज्ञान को नई दृष्टि प्रदान करने में सहायक होगा। इस स्तुत्य प्रयास के लिए डा. वर्मा निस्संदेह साधुवाद के पात्र हैं।

सुरेशचंद्र गौड़
Senior Research Scholar
of plasma Physics
Published Several papers
in Foreign & Indian journals
of repute

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar